आखिर में कुछ बातें समाज और विकास से अलग साहित्य की। महात्मा गांधी का जीवन और विचार आज भी हमारे दौर का सबसे जरूरी संदर्भ है। यह संदर्भ जहां राष्ट्र और भाषा को लेकर किसी भी तरह के इकहरेपन का विरोध करता है, वहीं यह हमारी बुद्धि, समझ और तरक्की को लेकर भी गंभीर सवाल खड़ा करता है। अर्थ, विकास और राजनीति को छोड़ सिर्फ विचार और साहित्य की भी बात करें तो गांधी को लेकर हमारी समझ अब तक हाथी के पांव छूकर उसकी आकृति बताने जैसी रही है। यही वजह है कि न सिर्फ हिंदी बल्कि विश्व साहित्य की आलोचनात्मक यात्रा में गांधी को जानबूझकर विमर्श के केंद्र से बाहर रखा गया है। इसकी एक वजह तो यही है कि गांधी कला से लेकर मानवता तक को सत्य की एक ही कसौटी के साथ देखते हैं। इस कसौटी को स्वीकार करना साहित्य के सिपाहियों के लिए इसलिए मुश्किल रहा क्योंकि इससे साहित्य के उद्देश्य और उसकी भूमिका को लेकर एक बार फिर से गंभीर विमर्श करने की नौबत आती।

दिलचस्प यह भी कि इस नौबत से बचने के लिए गांधी के जीवन और उनके पूरे संदर्भ को ही एक तरह से असाहित्यक मान लिया गया। पर क्या यह संभव है कि कम से कम 20वीं से लेकर 21वीं सदी के मौजूदा दौर तक साहित्य का कोई विमर्श बिना महात्मा के सत्य से मुठभेड़ किए टिका रह जाए। हिंदी आलोचना में यह संकट इसलिए ज्यादा गहरा है क्योंकि हिंदी के बुद्धिजीवी और आलोचक देश, समाज और राजनीति को लेकर अपनी टेक और टिप्पणियों के लिए तो गांधी की मदद ले रहे हैं, वहीं साहित्य के अपने विमर्श में वे बिना इस मदद के ही अब भी चलना पसंद कर रहे हैं। यह द्वैत महात्मा को लेकर हमारी समझ के स्तर पर तो है ही, यह द्वैत साहित्य के लिए निकष तय करने को लेकर भी है।

स्मरण रहे कि गांधी सत्य के प्रयोग की बात कोई पहले दिन से नहीं करने लगे थे। उनके जिन अनुभवों और ज्ञान ने इसकी प्रेरणा दी, उसमें सबसे बड़ी भूमिका साहित्य की थी। गांधी विश्व साहित्य के क्लासिक्स को पढ़ ही नहीं चुके थे बल्कि इसके बारे में वे नितांत नए आलोचकीय विवेक के साथ बात करते थे। उन्हें जिस साहित्यकार ने सबसे ज्यादा प्रभावित किया, वह लियो टॉल्सटॉय थे। 10 सितंबर, 1928 को साबरमती आश्रम में टॉल्स्टॉय जन्म-शताब्दी समारोह का आयोजन था। इस अवसर पर महात्मा गांधी ने कई सारी बातें कहीं। उनके ही शब्दों में, 'यदि टॉल्सटॉय और रस्किन के बीच चुनाव की बात हो और दोनों के जीवन के विषय में मैं और अधिक बातें जान लूं, तो नहीं जानता कि उस हालत में प्रथम स्थान किसे दूंगा। टॉल्सटॉय के जीवन में मेरे लिए दो बातें महत्वपूर्ण थीं। वे जैसा कहते थे, वैसा ही करते थे। उनकी सादगी अद्भुत थी, बाह्य सादगी तो उनमें थी ही। वे अमीर वर्ग के व्यक्ति थे, इस जगत के सभी भोग उन्होंने भोगे थे। धन-दौलत के विषय में मनुष्य जितने की इच्छा रख सकता है, वह सब उन्हें मिला था। फिर भी उन्होंने भरी जवानी में अपना ध्येय बदल डाला। दुनिया के विविध रंग देखने और उनके स्वाद चखने पर भी, जब उन्हें प्रतीत हुआ कि इसमें कुछ नहीं है तो उनसे उन्होंने मुंह मोड़ लिया और अंत तक अपने विचारों पर डटे रहे। इसी से मैंने एक जगह लिखा है कि टॉल्स्टॉय इस युग की सत्य की मूर्ति थे। उन्होंने सत्य को जैसा माना तद्नुसार चलने का उत्कट प्रयत्न किया। सत्य को छिपाने या कमजोर करने का प्रयत्न नहीं किया। '

अहिंसा और सत्य की अपनी प्रेरणा का श्रेय भी महात्मा विनम्रता के साथ टॉल्सटॉय को ही देते हैं। वे कहते हैं, 'अहिंसा का जितना सूक्ष्म दर्शन और उसका पालन करने का जितना प्रयत्न टॉल्स्टॉय ने किया था, उतना प्रयत्न करनेवाला आज हिंदुस्तान में कोई नहीं है और न मैं ऐसी किसी आदमी को जानता हूं। यह स्थिति मेरे लिए दुखदायक है, यह मुझे नहीं भाती। हिंदुस्तान मेरी कर्मभूमि है। हिंदुस्तान में ऋषि-मुनियों ने अहिंसा के क्षेत्र में बड़ी-बड़ी खोजें की हैं। परंतु पूर्वजों की उपार्जित पूंजी पर हमारा निर्वाह नहीं हो सकता। उसमें यदि वृद्धि न की जाए तो वह समाप्त हो जाती है। '

दिलचस्प यह कि गांधी यह बात 1928 में कह रहे हैं। भारतीय साहित्यिक फलक पर तब प्रेमचंद से लेकर रवींद्रनाथ टैगोर तक कई सितारे जगमगा रहे थे। पर पतित युग सत्य के प्रवाह से अलग, अखंड सत्य के साक्षात्कार लिए गांधी को मलाल के साथ एक रूसी साहित्यकार की शरण में जाना पड़ता है। गांधी का यह मलाल आधुनिक भारतीय साहित्य यात्रा और उसकी उपलब्धियों पर एक बड़ी आलोचकीय टिप्पणी है। गांधी की यह आलोचना आगे के उनके जीवन की तरह अहिंसा को केंद्र में रखता है। पर उनकी इस केंद्रीय कसौटी में जो बातें सिरे से खारिज हैं, वह है अहिंसा की धरती पर हिंसा को लेकर पहले प्रगतिशील और अब सांप्रदायिक ललक। वे कहते हैं, 'जन-साधारण को यह अच्छा लगेगा या नहीं, जिस समाज में वे स्वयं काम करते थे, उस समाज को भला लगेगा या नहीं, इस बात का विचार न करते हुए टॉल्स्टॉय की तरह खरी-खरी सुना देने वाले हमारे यहां नहीं मिलते। हमारे इस अहिंसा-प्रधान देश की ऐसी दयनीय दशा है। हमारी अहिंसा निंदा के ही योग्य है। '

एक ऐसे दौर में जब विचार और करुणा के बीच की दूरी सत्ता की देहरी से लेकर दिमागी खोहरों तक साफ दिख रहा है, उसमें कलम को फिर से कार्रवाई का पहला अस्त्र बनना होगा। खुद गांधी महात्मा ने भी यही किया था। 1909 में वे 'हिंद स्वराज' लिख चुके थे। लिहाजा जब 1917 में चंपारण में उन्होंने 'अहिंसा देवी का दर्शन' किया, तब तक वे मस्तिष्क और हृदय के स्तर पर तमाम द्वैतों को लांघ चुके थे। अपने अनुभवों से गांधी आज भी हमें आगाह करते हैं कि साहित्य और सत्य के साझे का बहाल रहना हर दौर के जरूरी है। इस साझे के दरकने का मतलब कलम की अपेक्षित भूमिका और कार्रवाई का स्थगन है।

***

गांधी का संस्कृति-दर्शन

डॉ. सुधांशु शेखर[26]

गांधी ने देश-समाज की विभिन्न समस्याओं एवं परिस्थितियों को समझते हुए यह निश्चित किया कि भारत को अपनी संस्कृति एवं परंपराओं से तटस्थ होकर, विदेशी सभ्यता व संस्कृति के बहाव में बहने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि उसे आधुनिक युग को ध्यान में रखते हुए भारतीयता के आधार पर ही अपने समाज एवं संस्कृति का आवश्यक परिमार्जन करना चाहिए। उन्होंने कहा, "मैं नहीं चाहता कि मेरा घर चारों ओर से दीवारों से घिरा हो और उसकी सभी खिड़कियाँ बंद हों। मैं चाहता हूँ कि सभी देशों की संस्कृतियों की सुवासित वायु मेरे घर के चारों ओर बहे। लेकिन मैं ऐसी किसी वायु से अपने पाँव नहीं उखड़ने दूंगा। मुझे औरों के घर में दस्तंदाज, भिखारी या गुलाम बनकर रहने से इंकार है। यंग इंडिया, 26 दिसंबर 1924।

गांधी जी ने कहा कि यह बात मेरे मन में दूर-दूर तक नहीं है कि हम ऐकांतिक बन जाएँ या अपने चारों ओर अवरोध खड़े कर लें लेकिन औरों की संस्कृति की सराहना का प्रश्न अपनी संस्कृति की सराहना और उसके आत्मसातीरण के बाद करना उचित है, उससे पहले कदापि नहीं। जो बहुमूल्य रत्न हमारी संस्कृति के पास हैं, वे किसी अन्य संस्कृति के पास नहीं है। पर हमें उनका ज्ञान ही नहीं है; हमें अपनी संस्कृति के अध्ययन का विरोध करने और उसका अवमूल्यन करने की पट्टी पढ़ाई गयी है। परिणाम यह है कि हमने अपनी संस्कृति को जीना लगभग छोड़ ही दिया है। आचरण के बिना कोरा शास्त्रीय ज्ञान एक संलेपित शव के समान होता है, जो देखने में भले ही सुंदर लगे, पर वह प्रेरणा देने या उदात्तीकरण करने वाला सिद्ध नहीं हो सकता।

आगे उन्होंने कहा कि हमारा धर्म मुझे अन्य संस्कृतियों का अनादर अथवा उनकी उपेक्षा करने से बचाता है, लेकिन साथ ही वह मुझसे अपनी संस्कृति को आत्मसात करने और उसे जीने का आग्रह भी करता है, क्योंकि ऐसा न करना हमारे लिए निश्चित रूप से आत्मघाती होगा। भारतीय संस्कृति उन विभिन्न संस्कृतियों का संश्लेषण है, जो इस देश में रच-बस गयी हैं और जिन्होंने भारतीय जीवन को प्रभावित किया है तथा स्वयं इस धरती की आत्मा से प्रभावित हुई है। स्वभावतया इस संश्लेषण का स्वरूप स्वदेशी है, जिसमें हर संस्कृति के लिए उचित स्थान सुनिश्चित है।

भारतीय सभ्यता भिन्न-भिन्न धर्मों का प्रतिनिधित्व करने वाली और अनेक भौगोलिक एवं पर्यावरणों से प्रभावित संस्कृतियों का संगम है। तदनुसार इस्लामी संस्कृति अरब, तुर्की, मिस्र और भारत में एक जैसी नहीं है, लेकिन वह स्वयं इन देशों की परिस्थितियों से प्रभावित हुई है। अतः भारतीय संस्कृति भारतीय है। यह न पूरी तरह हिंदू है, न इस्लामी और न कोई अन्य। यह इन सबका मिलाजुला रूप है और मूलतः

---

[26] सहायक प्रोफेसर, स्नातकोतर दर्शनशास्त्र विभाग, बी.एन.मंडल विश्वविद्धालय, मधेपुरा (बिहार)

पूर्वी है। जो व्यक्ति स्वयं को भारतीय कहता है, उसका यह कर्तव्य है कि इस संस्कृति की आदर करे, इसका न्यासी बने और यदि इस पर कोई आँच आए, तो उसका प्रतिकार करे।

गांधी यह मानते थे कि हमारे युग की भारतीय संस्कृति अभी निर्माणाधीन है। हममें से अनेक लोग उन संस्कृतियों का, जिनके बीच आज टकराव की स्थिति दिखाई दे रही है, एक मिश्रण तैयार करने का प्रयास कर रहे हैं। जो संस्कृति ऐकांतिक रहने का प्रयास करेगी, वह जीवित नहीं रह सकेगी। आज भारत में विशुद्ध आर्य संस्कृति जैसी कोई चीज विद्यमान नहीं है। आर्य लोग भारत के ही मूल निवासी थे या वे यहाँ जबर्दस्ती घुस आए, यह जानने में मेरी कोई विशेष रूचि नहीं है। मेरी रूचि तो इस तथ्य में है कि मेरे बहुत पहले के पूर्वज पूरी स्वतंत्रता के साथ एक-दूसरे से घुल-मिल गये थे और हमारी वर्तमान पीढ़ी उसी मिश्रण का परिणाम है। यह भविष्य ही बताएगा कि क्या हम अपनी जन्मभूमि का और उस छोटी-सी संस्कृति का जो सुंदर मिश्रण तैयार किया गया है, उसे बनाए रखने और सुदृढ़ करने का प्रयास करेंगे या उस दिन की खोज में लग जाएंगे, जब हिंदुस्तान में केवल एक धर्म था और अपने कदम उसी एकांतिक संस्कृति की ओर वापस मोड़ ले जाएंगे। यह भी संभव है कि हम ऐसी किसी ऐतिहासिक तिथि की खोज में सफल ही न हो पाएँ और अगर हो भी जाएँ और अपने कदम वापस मोड़ लें, तो अपनी संस्कृति को किसी कुरूप युग की ओर ढकेल दें। यदि ऐसा हुआ तो दुनिया हमें कोसेगी, जो उचित ही होगा।

गांधी के अनुसार यूरोपीय सभ्यता निस्संदेह यूरोपवासियों के अनुकूल है, लेकिन हम यदि उसके अनुकरण का प्रयास करेंगे, तो बर्बाद हो जाएंगे। कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि उसमें जो कुछ अच्छा और अंगीकार करने योग्य है, हम उसे भी न अपनाएँ, इसका अर्थ यह भी नहीं है कि यूरोपीय सभ्यता में यदि बुराइयाँ पैदा हो गयी हों, तो उन्हें निकालना यूरोपवासियों के लिए लाजिमी नहीं है। भौतिक सुखों के पीछे लगातार दौड़ना और उनमें अंधाधुंध वृद्धि करना ऐसी ही एक बुराई है और यूरोपवासी जिन सुखों के गुलाम हुए जा रहे हैं, अगर उनके भार तले दबकर नष्ट हो जाना नहीं चाहते, तो उन्हें अपने दृष्टिकोण में बदलाव लाना होगा। अगर भारत ने इस स्वर्णमृग के पीछे दौड़ना शुरू कर दिया तो वह निश्चित रूप से मौत के मुंह में चला जाएगा। अतः हमें अपनी संस्कृति से जुड़े रहना चाहिए। गांधी ने स्वयं भी कहा है, "मैंने अपने ऊपर पाश्चात्य संस्कृति के ऋण को खुलकर स्वीकार किया है, पर मैं यह कह सकता हूँ कि इस राष्ट्र की जो भी सेवा मुझसे बन पड़ी है, वह केवल इसलिए कि क्योंकि मैंने प्राच्य संस्कृति का दामन पकड़े रहने की कोशिश की है। मैं अगर अँग्रेजियत को अपनाकर एक विराष्ट्रीय व्यक्ति बन गया होता और भारत की आम जनता के बारे में कुछ न जानता और उनकी चिंता ही न करता तथा उनके तौर-तरीकों, आदतों, विचारों और आकांक्षाओं को तिरस्कार की दृष्टि से देखता, तो मैं उनके लिए बिल्कुल बेकार साबित हुआ होता।" (यंग इंडिया, 5 जुलाई 1928, पृ. 224.)

हमें 'सादा जीवन उच्च विचार' वाले आदर्श वाक्य को अपने हृदय-पटल पर अंकित कर लेना चाहिए। हम लाखों-करोड़ों लोगों को उच्च स्तर का जीवन उपलब्ध नहीं करा सकते और हम मुट्ठीभर लोग जो सर्वसाधारण के हित की बात सोचने का दावा करते हैं, उच्चतर जीवन-स्तर की खोज में तो कामयाब हो नहीं पाएँगे, उच्च विचार के आदर्श को भी खो बैठेंगे।

हमारे लिए हमारी संस्कृति की रक्षा का काम कोई दूसरा नहीं कर सकता। इसकी रक्षा हमें स्वयं करनी होगी और हम इसे अपनी मूर्खता के कारण नष्ट भी कर सकते हैं। यद्यपि हमें राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त हो गयी है, पर हम पश्चिम के सूक्ष्म प्रभुत्व से स्वतंत्र नहीं हो पाए हैं। मुझे राजनीतिज्ञों के उस संप्रदाय से कुछ नहीं कहना जो यह मानता हैं कि ज्ञान केवल पश्चिम से मिल सकता है, न ही उस विश्वास को सही मानता हूँ जो यह कहता है कि पश्चिम से हमें कोई अच्छी चीज नहीं मिली, जबकि सत्य यह है कि हम अभी तक इस मामले में किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सके हैं। यह दावा कोई नहीं करेगा। चूंकि हमें विदेशी आधिपत्य से राजनीतिक स्वतंत्रता मिल गयी है, अतः मात्र यही तथ्य हमें विदेशी भाषा और विदेशी विचारों के सूक्ष्मतर प्रभाव से भी स्वतंत्रता दिलाने के लिए पर्याप्त है।

गांधी पूरी दुनिया का एकीकरण चाहते थे। उन्होंने तो यहाँ तक कहा है, "अगर दुनिया को एक नहीं होना है, तो मैं इसमें रहना नहीं चाहूँगा। मैं निश्चित रूप से यह चाहता हूँ कि यह सपना मेरे जीवनकाल में ही सच हो जाए।"(हरिजन, 20 अप्रैल 1947 प 109) लेकिन वास्तविकता में भूमंडलीकरण गांधी के सपनों के प्रतिकूल है। इसमें दुनिया के एकीकरण का अर्थ है दुनिया का पश्चिमीकरण (या अमेरिकीकरण)। अब भूमंडलीकरण के इस दौर में भारत पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण में लगा है। हमारी आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक नीतियों एवं व्यवहारों पर पश्चिम का दुष्प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। आजाद भारत ने गांधी की मूल भावनाओं को नहीं अपनाया है। इसी का दुष्परिणाम है कि आज देश में गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी, विषमता, हिंसा एवं भ्रष्टाचार चरम पर है। हमारी राष्ट्रीय संप्रभुता एवं राष्ट्रीय सुरक्षा पर भी आंतरिक एवं बाह्य दोनों तरह के खतरे मंडरा रहे हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्राकृतिक संपदाओं और मानव संसाधनों की प्रचुरता के कारण भारत को 'सोने की चिड़िया' कहा जाता था। मगर, पश्चिमी सभ्यता के झंडाबरदारों ने इसे सपेरों, लूटेरों, जटाजूट वाले संन्यासियों, धर्मांधों, गरीबों एवं असभ्यों का देश कहकर ही प्रचारित किया। यह एक औपनिवेशिक दृष्टि थी, जिसे भारत के कई नवशिक्षित बुद्धिजीवियों ने भी बौद्धिकता एवं प्रगतिशीलता के अहंकार में अपनाया था। तब गांधी ने इस औपनिवेशिक दृष्टि के साथ-साथ ऐसे बुद्धिजीवियों के मानसिक दिवालियेपन को भी 'हिंद-स्वराज' में झकझोरने की कोशिश की थी। साथ ही उन्होंने आधुनिक सभ्यता संस्कृति के दुष्प्रभावों से भारत ही नहीं, वरन् पूरी दुनिया को बचाने का मंत्र भी बताया था।

गांधी के लिए अंग्रेजों की प्रत्यक्ष उपस्थिति साम्राज्यवाद का मुख्य पहलू नहीं था, वे तो आर्थिक और बौद्धिक गुलामी को ज्यादा खतरनाक मानते थे। वे हिंदुस्तान को हिंदुस्तान बनाना चाहते थे, इंग्लैंड या अमरीका नहीं। गांधी शोषण एवं अनैतिकता के रास्ते पर चलकर भारत की तथाकथित आर्थिक उन्नति के पक्षधर नहीं थे। इसके विपरीत वे चाहते थे कि भारत स्वेच्छा से सादगी को अपनाये और दुनिया के सामने स्थायी विकास एवं संतुलन का आदर्श प्रस्तुत करे। लेकिन, स्वतंत्र भारत की सरकारों ने 'गांधी' की अनदेखी की। यही कारण है कि भारत आज पूरी तरह आधुनिक सभ्यता-संस्कृति के चंगुल में फंस गया है।

कुल मिलाकर, आधुनिक सभ्यता-संस्कृति ने मानव जीवन को जटिल बना दिया है। इसने मनुष्य की आसुरी वृत्तियों को मुखर और आसुरी शक्तियों को अत्यधिक प्रखर बना दिया है। यशदेव शल्य के शब्दों में, "अपराध रोकने की हमारी शक्ति बढ़ रही है, किंतु उसी अनुपात में अपराध करने की शक्ति भी बढ़ रही है। शायद यही रोगों के संबंध में भी सही है और यही निर्धनता के संबंध में सही है। संपन्नता

और विपन्नता आवश्यकता की सापेक्ष भी होती है। जिसे दो धोतियों से अधिक कपड़े की आवश्यकता नहीं है, वह उस व्यक्ति से अधिक संपन्न है, जिसके पास 20 पोशाकें हैं और उसे अधिक की आवश्यकता है। यह दूसरा व्यक्ति विपन्न ही नहीं है, कहीं गहरे में अस्वस्थ भी है और आज हम यूरोप के नेतृत्व में इसी अस्वास्थ्यकर विपन्नता की ओर तेजी से बढ़ रहे हैं।" (समसामयिक चिंताएँ, पृ. 240.)

आधुनिक सभ्यता-संस्कृति ने मनुष्य की उस विपन्नता और अस्वास्थता को असीमित बढ़ा दिया है। आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था एवं उसके मूल्यों को बदले बगैर इसके दुष्परिणामों से बचना असंभव है। ऐसे में विकल्प की तलाश करने वाले व्यक्ति और समूह को गांधी के 'हिंद-स्वराज' से प्ररेणा लेनी चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः-

1. गांधी; हिन्दस्वराज, सर्वसेवासंघ प्रकाशन
2. वाराणसी (उतरप्रदेश), आठवां संस्करण-2009, पृ-44
3. गांधी, संपूर्ण गाँधीवाड्मय, खण्ड-10, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, पृ. 298-299
4. गाँधी, नवजीवन, 29 दिसंबर, 1920, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद (गुजरात)
5. गाँधी, इंडियन औपीनियन,2 जुलाई,1910, नवजीवन प्रकाशन मंदिर,अहमदाबाद (गुजरात)
6. गाँधी, यंग इंडिया, 26 दिसंबर, 1924, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद (गुजरात)
7. शेखर, सुधांशु, गाँधी-विमर्श, दर्शन प्रकाशन, भागलपुर (बिहार), 2015, पृ .36

***

गांधीवादी चिंतन के राजनीतिक आयाम

प्रो. ममता चन्द्रशेखर[27]

आज, विनाशकारी हथियारों से भरी हुई दुनिया में उग्रवाद और आतंकवाद विषैले पौधों की भांति निरन्तर बढ रहे हैं। मानव मानव के खून का प्यासा है। द्वेष, वैमनस्य, छल, कपट, स्वार्थ व भ्रष्टाचार का बोलबाला है। चौतरफा नैतिक बल की पराजय की गूंज सुनाई दे रही है। ऐसे में गांधी के चिंतन का मर्म समझा जा सकता है। "जियो और जीनो दो" की भावना के महान पोषक महात्मा गांधी ने भारत की पुनर्रचना की एक आदर्श परिकल्पना की। उन्हें एक आध्यात्मिक सत्ता में विश्वास था। उनके विचारों में सामंजस्य व सार्वभौमिकता के भाव थे। ऐसी चिंतनभूमि में पल्लवित उनके विचार-तरु ने भारत सहित समूचे मानवीय समाज को एक आदर्शात्मक स्वरुप प्रदान किया।

गांधीवादी दर्शन का केन्द्रबिन्दु 'अध्यात्मवाद' निश्चित ही मार्गदर्शक है, उस राजनीति, का जो भटकाव के गलियारों में घूम रही है। गांधी मूलतः एक कर्मयोगी, तथा मानवतावादी अंवधारणा में आस्था रखने वाले महान पुरुष थे। उनमें रहस्यवाद व व्यवहारवाद का अद्भुत सम्मिश्रण था। मानव जाति व उसमें निहित दु:खों के निवारण में गहरी रुचि होने के कारण ही गांधी जी राजनीति में आये। उन्होंने अपनी पुस्तक 'द स्टोरी ऑफ माई एक्सपेरीमेन्ट्स विथ ट्रुथ' में लिखा है कि "मैं यदि राजनीति में भाग लेता हूँ तो इसका एकमात्र यही कारण है कि राजनीति हमें सर्पिणी की भांति जकड़ी हुई है और चाहे जितना भी प्रयास क्यों न कर लें, उससे बाहर नहीं निकल सकते। मैं इस सर्पिणी से जूझना चाहता हूँ। मैं राजनीति में धर्म को प्रविष्ट कराने का प्रयास कर रहा हूँ। "

आर्दश राज्य की अवधारणा

गांधी ने अपने राजनीतिक विचारों के तहत ही एक आदर्श राज्य का चित्रण किया है। सर्वविदित है कि पाश्चात्य राजनीतिक विचारक प्लेटो ने भी एक आदर्श राज्य की परिकल्पना की थी। कालान्तर में जब उन्होंने यह महसूस किया कि इस धरा पर ऐसा आदर्श राज्य यथार्थ के धरातल पर संभव नहीं है तो उन्होंने एक उपादर्श राज्य की रचना की। गांधी जी ने भी पहले एक आदर्श राज्य और तत्पश्चात् एक उपादर्श राज्य की परिकल्पना की। वे अपने आदर्श राज्य को 'राम राज्य' के नाम से पुकारते थे। गांधी यथार्थवादी थे, अस्तु जब उन्होंने यह महसूस किया कि पूर्ण आदर्श राज्य की स्थापना के मार्ग में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयां हैं, तब उन्होंने एक उप-आदर्श राज्य की कल्पना की, जिसके अनेक अवयव हैं।

अहिंसात्मक समाज

अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, डॉ. अम्बेडकर सामाजिक विज्ञान विश्वविद्यालय, महू, इंदौर

गांधी के आदर्श राज्य में न्याय व व्यवस्था स्थापित करने के लिए पुलिस, जेल, सेना व न्यायालय इत्यादि बाध्यकारी सत्ताओं का अस्तित्व होगा लेकिन वे जन सामान्य को उत्पीड़ित या आतंकित करने के लिए नहीं होगी। वे जन-सेवा के हितार्थ गठित की जाएंगी। यदि कभी-कभार समाज-विरोधी तत्वों के विरुद्ध दमनात्मक शक्ति का प्रयोग करना भी पड़े तो उसका स्वरुप व उद्देश सत्याग्रह होगा।

विकेन्दीकृत सत्ता

गांधी के आदर्श राज्य का केन्द्रबिन्दु विकेन्दीकृत सत्ता थी। अपने कर्म व वचन से उन्होंने भारत की प्राचीन स्वावलंबी व स्वतंत्र ग्राम-पंचायत व्यवस्था की स्थापना पर बल दिया। विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था को अधिक सशक्त व सफल बनाने के लिए उन्होंने ग्राम पंचायतों में प्रत्यक्ष चुनाव करवाए जाने का सुझाव दिया था। उनका मानना था कि इस प्राथमिक इकाई के ऊपर की समस्त इकाइयों अर्थात् प्रादेशिक व राष्ट्रीय सरकारों में अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति ही उपयुक्त होगी। ग्रामों में स्वशासन व स्वावलंबन की भावना उत्पन्न कर उसे प्रोत्साहित करना उनका मुख्य उद्देश्य था। इसलिए वे सत्ता की समूची शक्तियों का केन्द्रबिन्दु ग्राम पचायतों को ही बनाने के पक्षधर थे।

लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था

गांधी के आदर्श राज्य की शासन व्यवस्था पूर्णतया लोकतांत्रिक है, जिसमें भारत के प्रत्येक नागरिक को मताधिकार होगा। हर व्यक्ति शासकीय व्यवस्था के संचालन में अपनी सक्रिय भागीदारी दर्ज करा सकेगा। उनका यह भी मानना था कि इस व्यवस्था में सत्ता का स्वरुप सीमित होगा। सत्ता जन सामान्य के प्रति उत्तरदायी होगी।

नागरिक अधिकारों का प्रावधान

गांधी के आदर्श राज्य में नागरिकों के लिए स्वतंत्रता, समानता व न्याय जैसे मूलभूत अधिकारों का प्रावधान रखा गया था ताकि नागरिकों का समुचित व सर्वोत्तम विकास हो सके। यह कहा जा सकता है कि अपने आदर्श राज्य की कल्पना के तहत उन्होंने राज्य में जाति, वर्ग, भाषा व लिंग आदि की समानता का आदर्श व राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया।

ट्रस्टीशिप की अवधारणा

गांधी के अनुसार आदर्श राज्य में निजी सम्पत्ति का अस्तित्व तो होगा लेकिन उसका उपभोग किसी व्यक्ति विशेष के निजी स्वार्थ की बजाय समूचे समाज के कल्याणार्थ किया जाएगा। राज्य द्वारा व्यक्तिगत सम्पत्ति का हनन नहीं किया जाएगा बल्कि सम्पत्ति उसी के पास रहेगी जिसकी वह है और वे व्यक्ति स्वयं को उस सम्पति का मालिक नहीं मात्र संरक्षक समझेंगे। दरअसल गांधी का मानना है कि समाज ने इस सम्पत्ति के संरक्षण का दायित्व उन्हें सौपा है। इसलिए वे मात्र संरक्षक या ट्रस्टी होंगे।

धर्म निरपेक्ष समाज

आदर्श राज्य धर्म निरपेक्ष राज्य होगा। यहां पर किसी भी धर्म को विशेष संरक्षण या सुविधा नहीं दी जाएगी। गांधी का कहना था कि राज्य की दृष्टि में सभी धर्म समान हैं। सभी धर्मों को एक समान

सुविधाएँ प्राप्त होंगी। समस्त नागरिकों को अपने अंतःकरण के अनुसार धर्म का अनुसरण करने की स्वतंत्रता देने की बात भी गांधी के आदर्श राज्य में समाहित थी।

स्त्री-पुरुष समानता

अपने आदर्श राज्य की अवधारणा में उन्होंने स्त्री-पुरुष समानता का उल्लेख किया है। उनका मानना था कि स्त्री भी पुरुष के समान है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों के लिए समान शिक्षा-व्यवस्था का समर्थन करते हुए गांधी जी ने कहा था कि "मैं ऐसे माता-पिता को जो अपनी पुत्रियों को पूर्णतः अशिक्षित व अज्ञानी रखते हैं और उनका पालन-पोषण केवल किसी साधन सम्पन्न नौजवान के साथ विवाह कर देने के लिए करते हैं, इस गलत दृष्टिकोण पर मैं शोक प्रकट करता हूँ। " उन्होंने समाज में व्याप्त तमाम् सामाजिक बुराइयों जैसे बाल विवाह प्रथा, दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा व देवदासी प्रथा से मुक्त समाज का सपना देखा था। उनके आदर्श राज्य में दायित्व-निर्वहन की प्रक्रिया में स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान ही स्वतंत्र हैं। उल्लेखनीय है कि गांधी ने असहयोग आन्दोलन व सविनय अवज्ञा आन्दोलन में नारी शक्ति को समाज के समक्ष प्रस्तुत कर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

अस्पृश्यता का अंत

वे अस्पृश्यता को एक सामाजिक बीमारी की भांति मानते थे। वे इसे मानव जाति व भगवान के प्रति किया जाने वाला घोर अपमान मानते थे। उनका कहना था कि हिन्दू विश्व का एक महान धर्म है लेकिन उसमें व्याप्त कुरीतियों व पूर्वाग्रहों के प्रति उनकी अनास्था है। वे अस्पृश्यता को एक ऐसे दीमक के समान मानते थे जो हिन्दूवाद की जडों को खोखला कर रहा है। अरस्तु, अपने आदर्श राज्य के समाज को अस्पृश्यता रहित बनाने की अपनी कल्पना को यथार्थ के धरातल पर लाने के लिए अनेक प्रयास किए। इनमें से 1932 में स्थापित "हरिजन सेवक संघ" व 'हरिजन" नामक पत्रिका का सम्पादन प्रमुख है।

निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा

गांधी शिक्षा को समूची मानव जाति के लिए आवश्यक मानते थे। इसलिए अपने आदर्श राज्य में शिक्षा के प्रसार के लिए गांव-गांव और बस्ती-बस्ती में बुनियादी ढंग की स्वावलम्बी पाठशालाएं स्थापित करने पर जोर दिया। इन पाठशालाओं में कम से कम प्राथमिक स्तर तक की शिक्षा को निःशुल्क प्रदान किए जाने पर बल दिया।

मद्य निषेध

गांधी का मानना था कि मद्य व मादक पदार्थों का सेवन करने से व्यक्तियों का चारित्रिक पतन होता है। यह स्वयं व्यक्ति, परिवार व समाज के लिए उचित नहीं है। इसलिए अपने आदर्श राज्य में मादक पदार्थों का उत्पादन, विक्रय व वितरण पूर्णतया वर्जित किया था।

आर्थिक विकेन्द्रीकरण

गांधीजी ने अपने आदर्श राज्य में बड़े उद्योगों के स्थान पर छोटे कुटीर उद्योग-धंधों को प्राथमिकता दी। मशीनें ऐसी हों जिनका संचालन मानव सुविधापूर्वक कर सके। किसी भी स्थिति में मशीनें ऐसी न हो जो कि मानव-श्रम का ही शोषण करने लगे। उनका मानना था कि प्रत्येक ग्राम अपने आवश्यकतानुसार

वस्तुओं का उत्पादन करेगा। इन उत्पादित वस्तुओं का मालिक वह स्वयं होगा। इससे आर्थिक शोषण का अंत होगा।

अंतरराष्ट्रीय शान्ति के समर्थक

गांधी का चिन्तन समूचे मानव जाति के लिए है। वह तमाम संकीर्णताओं की दीवारों को दरकिनार रख विश्व शान्ति के पक्के समर्थक थे। उनके अनुसार दुनिया के अन्य राज्यों के साथ अंतरराष्ट्रीय संबंधों का आधार "वसुधैव कुटुम्बकम्" की अवधारणा होगी। उनके साथ सद्भावना व सहयोग के संबंध हो ताकि विश्व में शान्ति बनी रहे।

इस प्रकार गांधी की कल्पना का आदर्श राज्य मूलतः स्वशासी ग्रामीण इकाइयों का था। यह एक व्यावहारिक कल्पना थी, जोकि उभरते ऊर्जा संकट के संदर्भ में प्रासंगिक-सी लगती है। अनुमान है कि आने वाली एक-दो शताब्दियों में विशाल नगरीय व्यवस्थाओं में पनपे विशालकाय भवन-निर्माण, आवागमन के साधन इत्यादि पर्यावरण संकट की चपेट में आकर ध्वस्त हो जायेंगी। इसलिए गांधी अपनी दूरगामी सोच के तहत तमाम राजकीय व्यवस्थाओं को चोट पहुंचाये बगैर कतिपय ऐसे प्रतिमान स्थापित करना चाहते थे जिनका मूलाधार रचनात्मक कार्य हो जोकि एक नवीन समाज के निर्माण को दिशा दे सके।

अराजकतावादी दर्शन

गांधी के राज्य-विषयक चिंतन में अराजकतावादी होने का आभास होता है। यहाँ उनके लिए अराजकतावादी शब्द का प्रयोग उनके दार्शनिक व राजनीतिक संदर्भ में किया गया है। सर्वविदित है कि वे अराजकतावादी दार्शनिक थोरो व टॉल्सटाय के विचारों से प्रभावित थे। अस्तु, उनके दर्शन का प्रभाव गांधी के विचारों पर पड़ना स्वाभाविक है। थोरो की प्रसिद्ध पुस्तक "एस्से ऑन सिविल डिसोविडियेन्स" के भारतीय संकरण की भूमिका में गांधी ने लिखा था कि "मैं इस आदर्श को दिल से स्वीकार करता हू कि वह सरकार सबसे अच्छी जो कम से कम शासन करती है। इसका मतलब अन्ततोगत्वा यह है कि जिस पर मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह सरकार सबसे अच्छी होती है जो बिल्कुल ही शासन नहीं करती है। " इसके अतिरिक्त वे टॉल्सटाय की अराजकतावादी कृतियों से भी प्रभावित थे। महात्मा गांधी के जीवन चरित्र को लिखने वाले उनके सचिव प्यारे लाल ने लिखा है कि " लियो टॉल्सटाय से गांधी को ईसाई अराजकतावाद की झलक मिली थी। "क्रोपटाकिन के अराजकतावादी चिंतन का भी गहरा असर गांधी के नैतिक, ऐतिहासिक व आर्थिक चिन्तन पर पड़ा है। यद्यपि अराजकतावादी सिद्धांत को प्रतिपादित करने वालों की भिन्नताओं के बावजूद इसमें इस बात की सहमति थी कि राज्य-व्यवस्था स्वयं शोषण का औजार है और अंततः समाज को इससे मुक्त करवाना आवश्यक है। इस अर्थ में जब गांधी अदालतों, अस्पतालों, संसद और रेल-व्यवस्था को भी अवांछनीय बताते हैं तो उनके विचार अराजकतावाद के अधिक निकट प्रतीत होते हैं।

2 जुलाई 1932 को 'यंग इंडिया' में उन्होंने लिखा था कि " इस प्रकार के (अराजकतावादी) राज्य में प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपना शासक है। वह अपना कार्य इस प्रकार करता है कि उसके किसी भी कार्य से

उसके पड़ोसियों को किसी प्रकार की असुविधा न हो। इसलिए आदर्श राज्य में राजनीतिक शक्ति नहीं होती क्योंकि राज्य नहीं होता है। इसी अंक में उन्होंने आगे लिखा है कि "राज्य केन्द्रित व संगठित रुप में हिंसा का प्रतिनिधित्व करता है। व्यक्ति एक सचेतन आत्मवान् प्राणी है। राज्य एक ऐसा आत्महीन यंत्र है जिसे हिंसा से पृथक नहीं किया जा सकता है क्योंकि इसकी उत्पत्ति ही हिंसा से हुई है। "

गांधी एक व्यावहारिक चिंतक थे। वे इस तथ्य से अवगत थे कि अभी इस विचार को तत्काल क्रियान्वित नहीं किया जा सकता है। वे जानते थे कि अभी भारत का आम नागरिक इतना परिपक्व नहीं हुआ है कि वह स्वयं ही राज्य व राज्य सत्ता का संचालन कर सके। इसलिए तो 'हिन्द स्वराज' के आदर्शों को पूरी तरह से नजर अंदाज कर दिया गया था और समाज में राज्य व राजकीय सत्ता की आवश्यकता बनी रही। उनका मत था कि "राज्य का कार्य न्यूनतम होना चाहिए।" इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि गांधी सैद्धान्तिक तौर पर अराजकतावादी थे लेकिन व्यवहार में वह एक व्यक्तिवादी विचारक थे।

राष्ट्रवादी चिंतन

गांधी जी रचनात्मक व मानवतावादी राष्ट्रवाद के उपासक थे। यधपि उन्होंने "वसुधैव कुटुम्बकम्" के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तदुपरांत राष्ट्र के प्रति उनका प्रेम व समर्पण अटूट रहा। उनके लिए राष्ट्रप्रेम " मां के दूध" की भांति सहज रुप से ही जीवनदायी भाव था। उनका राष्ट्रवाद आत्म त्याग व सेवा भाव के दृण आधार स्तंभों पर आधारित था। इसलिए उनका मानना था कि व्यक्ति को ग्राम, समुदाय व देश के अनुसार स्वयं को ढाल देना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति का सामाजिक कर्तव्य परिवार से प्रारम्भ होता है जो समूचे मानव मात्र की सेवा के चरम लक्ष्य तक पहुंचता है। यदि कोई व्यक्ति समाज की प्रारम्भिक इकाईयों के प्रति अपने कर्त्तव्य का परिपालन न करके, मानवता की सेवा का जिक्र करता है तो इससे यह अभिव्यक्त होता है कि वह व्यक्ति अपने दायित्वों से विमुख होता है। गांधी जी का मत था कि "प्रत्येक व्यक्ति के अपने देश के प्रति कुछ विशेष कर्त्तव्य होते हैं जिनकी पूर्ति उसके द्वारा किया जाना आवश्यक है।"

1929 में उन्होंने लिखा था कि "मैं भारत का उत्थान इसलिए चाहता हूँ ताकि संपूर्ण विश्व का हित हो सके। मैं भारतवर्ष के उत्थान के लिए दूसरे राष्ट्र का विनाश नहीं चाहता हूँ।" वे उस राष्ट्रभक्ति की निन्दा करते थे जोकि दुनिया के दूसरे राज्यों की मजबूरी के समय या मुसीबत के क्षणों में उनका शोषण करने के लिए उत्साहित रहते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि गांधी जी का चिंतन संतुलित व सर्वकल्याण से भावों से परिपूर्ण था। इसलिए वे अद्भुत ऐक्य, व मानवीयता के एक प्रतीक बनकर उभरते हैं। अहिंसा, शांति, शान्त चित्त उनके व्यक्तित्व का केन्द्रबिन्दु था। इसलिए आज भी इंसान की आखिरी आशा गांधी जी का नैतिक सिद्धान्त ही है।

जनतंत्र विषयक विचार

गांधी जी के राजनीतिक चिंतन के विराट आंगन में जनतंत्र एक ऐसा द्वार है जहां से मानव जाति के चहुंमुखी विकास का मार्ग होकर गुजरता है। लोकतंत्रात्मक शासन पद्धति में उनकी गहरी आस्था से निर्वाचन व प्रतिनिधित्व प्रणाली को मजबूती प्राप्त होती है। उनका मानना था कि "निर्वाचन में खड़े होने वाले उम्मीदवार को निःस्वार्थी, योग्य व संयमी होना चाहिए और मताधिकार का आधार शारीरिक श्रम

होना चाहिए न कि सम्पत्ति या सामाजिक स्थिति।" दरअसल उनकी नजर में व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समता व सम्मान भाव खास अहमियत रखते थे।

गांधीजी का विचार था कि "लोकतंत्रात्मक शासन के सही संचालन के लिए बहुसंख्यको की भांति अल्पसंख्यकों का भी सहयोग लिया जाना चाहिए। क्योंकि चुनाव सदैव ही सही हो, ऐसा आवश्यक नहीं है। दूसरी बात एक प्रतिभाशाली व्यक्ति हजार मूर्खों से अच्छा होता है।" वे आगे कहते थे कि यदि एक भी व्यक्ति समाज के लिए समर्पित भाव से कार्य करे तो वह समाज का सच्चा प्रतिनिधि है। बहुमत में आलोचना सहन करने की क्षमता होना चाहिए और अल्पमत भी बहुमत की बातों को सहर्ष स्वीकार करे। यदि कभी बहुसंख्यक के निर्णय अनुचित हो तो इन निणयों के परिवर्तन हेतु शान्तिपूर्ण संवैधानिक साधनों का उपयोग करना चाहिए। इस प्रकार लोकतंत्र की सफलता हेतु गांधी जी न्यायप्रिय बहुमत और सहनशील अल्पमत, दोनों को आवश्यक मानते हैं। उनके ही शब्दों में बहुमत का अर्थ यह नहीं कि एक व्यक्ति की राय, यदि वह सही हो, तो कुचल दी जाए बल्कि उसे बहुमत की राय से अधिक महत्वपूर्ण समझा जाना चाहिए। यही मेरी वास्तविक प्रजातंत्र की कल्पना है। "यहां पर उनके यह विचार जे. एस. मिल के समतुल्य है। मिल ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते हुए अल्पमत की महत्ता पर प्रकाश डाला था। गांधी जी का लोकतांत्रिक शासन सत्ता विकेन्द्रीकरण पर आधारित है। जिसकी प्राथमिक इकाई ग्राम है। इसलिए उनकी चिंतन भूमि में एक पूर्ण शक्ति सम्पन्न पंचायती राज्य की स्थापना का सशक्त समर्थन समाहित है।

उनके राजनीतिक दर्शन में लोकतंत्र मात्र राजनीतिक प्रणाली ही नहीं है बल्कि एक ऐसा समाज है जो सत्य, अहिंसा व प्रेम पर आधारित है। उनकी सोच में वह जनतंत्र है जिसमें राजनीति, धर्म, समाज, अर्थ, और नीति का सर्वोत्तम समन्वय हो। उनका मानना था कि "लोकतंत्रीय शासन का मूल आधार जन सहमति व नैतिक दायित्व का बोध होना चाहिए।" सर्वविदित है कि उनके द्वारा रचित लोकतंत्र में शोषण, असमानता व अन्याय का कोई अस्तित्व नहीं था। इस प्रकार गांधी जी के जनतंत्रात्मक विचार प्रचलित लोकतात्रिक सिद्वान्त से हटकर है।

स्वदेशी संबंधी चिंतन

गांधी जी का स्वदेशी चिंतन भारतीय राजनीतिक चिंतन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण आयाम है। स्वदेशी संबंधी उनकी विचारधारा का स्वरुप काफी व्यापक है। इसमें राजनीतिक, आर्थिक व धार्मिक तत्व भी समाहित है। राजनीतिक स्वदेशी चिंतन के तहत उनका मानना था कि स्थानीय वस्तुओं का प्रयोग ही किया जाना। यदि उनमें कोई खामी उसका निराकरण कर उसे अपनाना चाहिए। जब वे आर्थिक स्वदेशी की बात करते हैं तो यहां उनका तात्पर्य उन वस्तुओं के प्रयोग से है जो निकटस्थ पडोसियों द्वारा उत्पादित है। ऐसे उत्पादन में कुशता व परिपूर्णता लाने का जिक्र भी वे करते हैं ताकि उत्पादनों को बेहतर बनाया जा सके। उनके धार्मिक स्वदेशी चिंतन का दायरा काफी व्यापक हैं। वे इसमें चेतना का समावेशन करते हैं जो आस-पास के वातावरण से नियंत्रित होती है। गांधी का मानना था कि व्यक्ति को अपने पैतृक धर्म तक ही सीमित रहना चाहिए। हिन्दू धर्म रुढ़िवादिता से जकड़ा हुआ है। इसे अन्तर्निनिहित स्वदेशी की भावना से जोड़कर शक्तिशाली रुप प्रदान किया जा सकता है। इसमें विकास

करने की अपूर्व क्षमता है। इसकी मूल वजह है सहिष्णुता का भाव समाहित होना। इसने बौद्ध धर्म को आत्मसात कर लिया। हिन्दू धर्मावम्ब स्वदेशी चेतना होने के कारण ही धर्म परिवर्तन का विरोध करता है। उनका मत था कि "धर्म से विलग राजनीति दफनाने योग्य है।"

स्वदेशी चिंतन से प्रेरित होकर ही वे ग्राम स्वराज को सर्वोपरि बताते हैं। वे कहते थे कि "देश तो आजाद हो गया परन्तु गांवों को राजनीतिक आजादी प्राप्त होना अभी बाकी है।" जीवन की बुनियादी जरुरतों के उत्पादन के साधन जनता के नियंत्रण में होने की आवश्यकता भी उन्होंने बताई। उनका मानना था कि भारत में लोकतंत्र की जडें काफी मजबूत हैं। इसलिए विदेशी आक्रमणों के प्रहार सहन करने के बाबजूद भारत का लोकतांत्रिक स्वरुप बरकरार रहा। संकटकालीन परिस्तिथियों में ग्रामीणों ने वर्ग व्यवस्था द्वारा अपनी आंतरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करके, विदेशी ताकतों की शक्ति व दमन का कड़ा प्रतिरोध किया। अत': ऐसे राष्ट्र का अस्तित्व समाप्त करना कठिन है जहॉ पर वर्ग व्यवस्था की अद्भुत संगठन शक्ति के सामर्थ्य की अभिव्यक्ति होती है।

उनका मत था कि आर्थिक व औद्योगिक क्षेत्र में स्वदेशी से पलायन करने के कारण ही निर्धनता की समस्या का उद्भव हुआ। विदेशी वस्तुओं का आयात करने की अपेक्षा यदि देश में वस्तुओं का उत्पादन किया जाए तो इससे बेरोजगारी घटेगी व देश आत्मनिर्भर होगा। व्यापार उन्मुक्त नीति में आयातित वस्तुएं इग्लैण्ड के लिए तो भोजन के समान है किन्तु भारत के लिए यह विष तुल्य है। सर्वविदित है स्वतंत्रता संग्राम के दौरान उन्होंने स्वदेशी चिंतन को रचात्मक स्वरुप प्रदान कर उसे आंदोलन में समहित किया था। यह आह्वान किया गया कि प्रत्येक भारतीय स्वदेशी वस्तुओं को अपनाये व विदेशी वस्तुओं व सुविधाओं का बहिष्कार करें। गांधी जी का विचार था कि जब तक भारत स्वयं के लिए सामर्थ नहीं हो जाता जब तक वह लंकाशायर या अन्य देशों के लिए जीवित नहीं रह सकता है। यदि भारत अपनी भौगौलिक सीमाओं में अपनी आवश्यकता की समस्त वस्तुओं का उत्पादन करता है तो उसी स्थिति में वह स्वयं के लिए जीवित रह सकता है। भारत का हर गांव आत्मनिर्भर होगा तो स्वतः ही एक पूर्ण इकाई के रुप में उभरकर सामने आयेगा। गांवों को आपस में वस्तु विनिमय का व्यवहार करना होगा। " उनका मानना था कि भारत को प्रतियोगिता की घातक व विकृत दौड में शामिल नहीं होना चाहिए। इसके परिणामस्वरुप ईष्या, द्वेष, व वैमनस्य आदि की उत्पत्ति होगी। पूंजीवादी प्रतियोगिता की इस दौड़ में हथकरधा उद्योग मृतावस्था में है।

समतावादी दृष्टिकोण

स्वदेशी संबंधी उनकी विचारधारा का स्वरुप काफी व्यापक है। इसमें जीवन का प्रत्येक क्षेत्र समाहित है। लेकिन सामाजिक व आर्थिक समतामूलक समाज की स्थापना पर ज्यादा जोर दिया गया है। इस संबंध में उनकी कतिपय क्रान्तिकारी मान्यताएं हैं। उनके मतानुसार "यदि भारत स्वतंत्रतापूर्वक रहना चाहता है तो यह संसार के लिए ईर्ष्या की वस्तु है क्योंकि यहां भंगी, डॉ.क्टर, इंजीनियर, वकील, शिक्षक, व्यापारी व अन्य अपने दिन भर के कार्य के लिए एक समान पारिश्रामिक प्राप्त करेंगे।" दरअसल भेदभाव व अन्याय, अत्याचार व शोषण मुक्त समाज उनके चिंतन का केन्द्रबिन्दु है। उन्हे लगता था कि सत्ता व

शक्ति का विकेन्द्रीकरण ही इसका कारगर उपाय है। पूंजीवाद व भारी उद्योगों का विरोध करते हुए वे ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का समर्थन करते थे।

समतावादी विचारधारा का अनुसरण करते हुए उन्होंने जातिगत भेदभाव की घोर निन्दा करते हुए छुआछूत को पाप बताया। निचले वर्ग से जुड़े व्यक्तियों के लिए 'हरिजन ' शब्द का उपयोग किया। 1932 में हरिजन सेवक संघ की स्थापना कर हरिजन समुदाय के सर्वांगीण विकास, उत्थान, व सामाजिक समता के लिए व्यापक रचनात्मक कार्यक्रमों की संरचना विकसित की। शोषित वर्ग के प्रति रवैया सदैव व्यवहारिक रहता था। उनके अधिकारों के प्रति वे हमेशा सचेत रहते थे। समाज में दोयम दर्जा प्राप्त महिलाओं की दुर्दशा से भी बेहद दुःखी थे। उनकी चिन्ता का केन्द्रबिन्दु वे समस्त महिलाएं है जो भेदभाव का शिकार हो रहीं हैं। महिला वर्ग को विविध सामाजिक कुरीतियों से बचाने के लिए उन्हांने एक अभियान छेडा। उनमें निहित योग्यता, क्षमता व प्रतिभा का सदुपयोग करने के लिए उन्हें असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन व अन्य अहिंसक आन्दोलनों से जोडा। स्त्री-पुरुष के समानाधिकार के वे कट्टर समर्थक थे। उनके मतानुसार "स्त्रियां कानूनी रुप से समानता की अधिकारिणी हैं। यदि सत्य, अहिंसा, सहिष्णुता व नैतिकता आदि जीवन के सर्वोच्च गुणों का दृष्टि से विचार किया जाए तो स्त्रियां पुरुषों से श्रेष्ठ हैं।"समानाधिकार का पक्ष लेने के साथ ही उनका यह भी विचार था कि स्त्री-पुरुष के मध्य प्रतियोगितात्मक व्यवहार नहीं होना चाहिए। भले ही स्त्रियां स्वत्रंतता का वरण करें लेकिन उनका कार्यक्षेत्र घर ही है।

सर्वधर्म भाव के पक्षधर होने के कारण उन्होंने धार्मिक समानता पर जोर दिया। सभी धर्मों के प्रति आस्था होने के कारण वे सभी का सम्मान करते थे। मजदूर व कृषक वर्ग के शोषण व असमानता के विरुद्ध भी उन्होंने आवाज उठाई। इस प्रकार गांधी जी का समतावादी चिंतन राजनीति उनकी महत्वपूर्ण देन है। उन्होंने मानव प्रतिष्ठा, समानता व भ्रातृत्व भाव पर मात्र विचार ही नहीं किया बल्कि चिंतन के साथ ही समाज को दिशा दर्शन दिया। उनकी अगुआई की और वास्तविकता के धरातल पर इनका अमल किया।

सत्ता विकेन्द्रीकरण विषयक विचार

गांधी जी का अटल विश्वास था कि सत्ता विकेन्द्रीकरण स्वत्रंत भारत के लिए वरदान सिद्ध होगा। दरअसल शोषण का प्रमुख कारण ही सत्ता का केन्द्रीकरण है। यहां सत्ता विकेन्द्रीकरण का तात्पर्य राजनीतिक व आर्थिक दोनों है। इसलिए वे सत्ता को दो भागों में विभाजित करते है। 1. राजनीतिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण 2. आर्थिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण।

राजनीतिक क्षेत्र में शक्ति विकेन्द्रीकरण से उनका अभिप्राय ग्राम पंचायतों से है। ऐसी ग्राम पंचायतें जिन्हें गांवों का सम्पूर्ण प्रबंधन व प्रशासन का पूर्णाधिकार है। उनका मानना था कि आधुनिक युग में प्रजातंत्र के नाम पर समस्त शक्तियां कुछ शक्तिशाली व्यक्तियों के हाथों में चली जाती है। शक्तियों का केन्द्रीकरण होने के कारण दुरुपयोग होने लगता है। शक्तियों का ये मनमाना उपयोग ही लोकतांत्रिक भावना पर पडने वाला सबसे बडा कुठाराघात है। यही केन्द्रीकरण समस्त समस्याओं की जननी है। इसका उन्मूलन करने का एकमात्र उपाय है सत्ता को विकेन्द्रित कर दिया जाए। 26 जुलाई 1942 को उन्होंने

लिखा था कि "मेरे ग्राम स्वराज्य का आदर्श यह है कि प्रत्येक गांव एक पूर्ण गणराज्य हो। अपनी आवश्यक वस्तुओं के लिए वह अपने पडोसियों पर निर्भर न रहें। इस प्रकार प्रत्येक गांव का पहला कार्य खाने के लिए अन्न व तन ढकने के लिए कपड़े देने वाली फसल रुई का उत्पादन करना चाहिए। गांव की अपनी पाठ्यशाला, सार्वजनिक भवन स पाठशाला भी होना चाहिए। प्रारंभिक शिक्षा अंतिम व्यक्ति तक के लिए अनिवार्य होना चाहिए। यथासम्भव प्रत्येक कार्य सहकारिता के आधार पर किया जायेगा। गांव का शासन पांच व्यक्तियों की पंचायत द्वारा संचालित होगी। यही पंचायत ही गांव की व्यवस्थापिका सभा, कार्यकारिणी व न्यायपालिका सभी कुछ होगी।"

सत्ता विकेन्द्रीकरण के प्रबल समर्थक गांधी जी वस्तुतः बहुलवादी विचारक थे जो राज्य को एक यंत्र मात्र मानते हैं। जिसका मुख्य कार्य येन केन प्रकारेण मानव की स्वतंत्रता का हनन करना है इसलिए शासन को छोटी छोटी इकाइयों में विभाजित कर देने पर वे जोर देते थे।

सर्वोदयी सिद्धान्त

20 वी सदी के युगपुरुष गांधी जी सर्वोदयी सिद्धान्त सर्वाधिक सर्वोपरी, उपयोगी व कल्याणकारी है। वर्तमान राजनीति में भ्रष्ट्राचार, सम्प्रदायवाद, जातिवाद, आतंक व हिंसा का वर्चस्व बढता जा रहा है। इन परिस्थितियों में गांधी जी का यह सिद्धान्त औषधि के समलुल्य है। उनका यह विचार पाश्चात्य विचारक रास्किन व टॉलस्टॉय के विचारों से प्रेरित है। वैसे तो भारत में यह सिद्धान्त प्राचीनकाल से भारतीय दर्शन का अंग रहा है। लेकिन इस दर्शन को व्यापक रुप देकर उसे व्यावहारिक रुप प्रदान करके उसे जीवन में समाहित करने वाले गांधी जी प्रथम व अंतिम व्यक्ति हैं। सर्वोदय दर्शन का प्रमुख ध्येय समाज अथवा राज्य के समस्त व्यक्तियों का सर्वांगीण विकास करना है। तभी समूचे राष्ट्र का विकास सम्भव है। अपने सर्वहितवादी सिद्धान्त में उन्होंने अमीर व गरीब दोनां की दशा व दिशा का उल्लेख किया। जहां एक ओर निर्धन आर्थिक रुप से दरिद्र है तो धनवान व्यक्ति नैतिक रुप से दरिद्र है। अतः इन दोनों की दरिद्रता समाप्त करके ही राज्य का विकास किया जा सकता है। इसलिए उनका विचार था कि विकसित लोगों को पिछड़े व शोषित लोगों के विकास में, खाद का कार्य करना चाहिए। ट्रस्टीशिप व दरिद्र नारायण की पूजा का नैतिक आदर्श अपना कर ही समस्या का समाधान किया जा सकता है।

सर्वोदय दर्शन में यह माना जाता है कि "मानवीय आत्मा पवित्र है।" यह विचारधारा स्वतंत्रता, समानता, न्याय व विश्व बंधुत्व को भी महत्व देती हैं। परन्तु यह सिद्धान्त राज्य विरोधी है। यह राज्य के स्थान पर स्वराज का समर्थन करते हैं। जोकि नैतिक मानदण्डों पर आधारित है। सर्वोदय में शक्ति के स्थान पर सहयोग की राजनीति का जोर दिया गया है। यह रक्तविहीन लोकतंत्र का समर्थन करता है। वे दलीय राजनीति से दूर रहने की बात भी करते है। यद्यपि वे इस बात का प्रयास करते हैं कि मतदान कभी हो ही नहीं लेकिन यदि कभी मतदान करना भी पडे तो ऐसी स्थिति में दलगत हित के स्थान पर लोकहित का ध्यान रखा जाए। गांधी जी के सर्वेदय में हिंसा व क्रान्ति के लिए कोई जगह नहीं है। तानाशाही प्रवृति से बचने के लिए ही उन्होंने शक्ति विकेन्द्रीकरण व्यवस्था का अनुसमर्थन किया था। यह सिद्धान्त श्रम प्रधान, सरल जीवन की महत्ता प्रतिपादित करने वाला सिद्धान्त है जो सत्य, अहिंसा व

साध्य व साधनों की पवित्रता पर आधारित है। इस प्रकार उनका सर्वोदयी विचार राज्य के समस्त व्यक्तियों के लिए हितकारी है।

अंत में यह कहा जा सकता है कि यदि वर्तमान एकध्रुवीय विश्व व्यवस्था पर चतुर्दिक दृष्टिपात किया जाए तो यह स्पष्ट होता है कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के चिंतन की महत्ता व उपयोगिता में निरन्तर बढोतरी होती जा रही है। आज गांधी को विशेष लीक नहीं है और भौतिक जगत् मे इसका संतत् वाहन भी कुछ कोणों से अत्यिधिक दुष्कर है परन्तु पर्याप्त भेदभावों के बरकरार रहने के उपरांत भी गांधीवाद एकमात्र वह व्यापक तंत्र है जिसकी मदद से संसार विकास के उच्चतर लक्ष्यों की प्राप्ति कर सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. डॉ. गोविन्द प्रसाद शर्मा, भारतीय एवं पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2009
2. डॉ. ममता चंद्रशेखर व श्री एस. रायकवार, गांधीवादी चिंतन व समसामयिक राजनीति, यशी-यथार्थ प्रकाशन, इंदौर, 2003
3. डॉ. पुखराज जैन, राजनीति विज्ञान, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2010
4. नंदलाल, राजनीति विज्ञान, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कंपनी, इंदौर, 2010
5. पत्रिका, अंतिम जन, गांधी स्मृति व दर्शन समिति, (मानद सम्पादक-राजीव रंजन गिरि) नई दिल्ली, दिसम्बर 2012

***

करिश्माई नेतृत्व के आधार

डॉ. पयोद जोशी[28]

नेतृत्व के स्थायित्व एवं परिवर्तन के निधार्रक तत्वों में करिश्माई या जादुई आकर्षण महत्वपूर्ण स्थान रखता है। गांधी जी के नेतृत्व के अन्य गुणों के अलावा करिश्माई गुण का भी परिलक्षण होता है। गांधी भारतीय समाज के ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व समाज के चर्चित नेता है। उनकी नेतृत्व शैली विश्व समुदाय को आकर्षित करती रही है, किन्तु नेतृत्व की आधुनिक संकल्पना के सन्दर्भ में गांधी की नेतृत्व शैली का गहन विश्लेषण अभी तक प्रस्तुत नहीं हुआ है। प्रस्तुत शोध पत्र इसी दिशा में एक विनम्र प्रयास है।[1]

(1) जर्मन समाजशास्त्री मैक्स वेबर ने 'करिश्मा' शब्द का प्रयोग असाधारण गुणों के अर्थ में किया है जो व्यक्ति में असाधारण समय में प्रकट होते हैं और जिनसे वह अनुपम एवं जादुई शक्ति के रूप में पहचाना जाता है। वह 'करिश्मा' को सत्ता के एक प्रकार के रूप में विश्लेषित करते है जो व्यक्ति के अन्तर निर्हित गुणों के कारण उसे प्राप्त होती है। करिश्मा समाज में संकटकाल में उपजता है और वह जो विचार तथा उद्देश्य प्रतिपादित करता है, उनकी सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मैक्स वेबर के दृष्टिकोण में करिश्माई सत्ता परम्परागत एवं वैधानिक सत्ता से भिन्न है। उसने परम्परागत एवं वैधानिक सत्ता को एक स्थायी ढाँचे के रूप मे देखा है, जो समुदाय की प्रतिदिन की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। ऐसा ढ़ाँचा जो आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता टूट जाता है। संकट के समय पारम्परिक नेतृत्व न तो आधिकारिक रहता है, न ही सर्वोच्च। किन्तु व्यक्ति जो शरीर एवं मस्तिष्क पर असाधारण अधिकार रखता है, उसे कठिनाईयां पुकारती है और नेता बनाती है। वह नेता अपने अंतर निर्हित गुणों के आधार पर उपस्थित संकट के प्रति प्रतिक्रिया करता है। वह समुदाय को संकट की स्थिति से उबारने के लिए राह सुझाता है। करिश्मा अपने चिंतन एवं दृष्टिकोण से स्थापित व्यवस्था को देता है, इस रूप में वह सदैव मौलिक होता है। [2](सिन्हाः 2002)

मैक्स वेबर 'करिश्मा' को एक आदर्श प्रारूप के रूप में प्रकट करता है, जो आनुभाविक तथ्यों से परे है। उसके मन में करिश्माई सत्ता का अस्तित्व आधारभूत रूप से अस्थायी होता है। करिश्माई नेतृत्व मिशन पूर्ण होने के उपरांत अपना करिश्मा खो सकता है किन्तु चूंकि शुद्ध करिश्मा औचित्यता से दूर रहकर अपने व्यक्तित्व की सत्ता के कारण बहता है, इसलिए एक बार स्थापित होने के बाद स्थिर रहता है। करिश्माई नेतृत्व की शक्ति शुद्ध तथ्यात्मक स्वीकृति और आस्थापूर्ण पर निर्भर करती है। यह असाधारण एवं अश्रुत आश्चर्यजनक शासन के प्रति होती है जो परम्पराओं से विलग दिव्य होती है। [3] (ओमेनः)

---

[28] एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, मा. ला. वर्मा राजकीय महाविद्यालय भीलवाडा

स्वभाविक करिश्माई शासन कोई अमूर्त वैद्य संहिता नहीं रखता और न ही न्याय को कोई औपचारिक तरीका रखता है। उसके उद्धेश्य नियम स्वर्गिक अनुभवों पर आधारित होते हैं। करिश्माई सत्ता उन सभी बाहरी आदेशों के बंधनों को रद्द कर देती हे जो नेता के स्वाभाविक सोच से न उपजे हों। इस प्रकार उसका व्यवहार क्रांतिकारी होता है, वह प्रत्येक वस्तु के मूल्य को बदल डालता है और परम्परागत एवं विधिक मूल्यों पर अपनी सम्प्रभुता कायम करता है। अपने आदर्श स्वरूप में करिश्मा सभी परम्परागत, औपचारिक एवं बौद्धिक नियमों से स्वतंत्र होता है। एडवर्ड शिल्स वेबर के इस विश्लेषण को नकारते हुए यह मत प्रकट करते है कि परम्परागत एवं वैधानिक सत्ता में भी करिश्माई सत्ता के लक्षण देखे जा सकते है।[4] (शिल्सः 1965)

वेबर अपने विश्लेषण में 'नियमितीकरण की अवधारणा' भी स्थापित करता है, जिसके अनुसार करिश्माई नेतृत्व को जब समूह स्थाई सामाजिक आधार प्रदान कर देता है तो वह परम्परागत अथवा वैधानिक नेतृत्व में बदल जाता है। वस्तुतः नेता के अनुगामी यह चाहते हैं कि उसका करिश्मा लम्बे समय तक जीवित रहे। नेता के शिष्य तथा अनुगामी, संत, राज्याधिकारी, शासनाधिकारी सम्पादक, प्रकाशक, लेखक अथवा समाजसेवक आदि बन जाते है एवं करश्माई नेतृत्व द्वारा प्रेरित संस्थाओं, विचारों एवं आंदोलन को आगे बढ़ाते हैं। करिश्मा का संदेश एक मत या सिद्धांत बन जाता है। इस प्रकार करिश्माई नेतृत्व परम्परागत एवं वैधानिक नेतृत्व में परिवर्तित हो जाता है तथा करिश्माई नेतृत्व का 'करिश्मा' सदैव जीवित रहता है। इस प्रकार करिश्माई नेतृत्व इतिहास में एक क्रांतिकारी ताकत के रुप में दिखाई देता है जो स्थापित व्यवस्था को परिवर्तित करना चाहता है।

(2) गाँधी नेतृत्व उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से बीसवीं सदी के मध्य तक उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद तथा दमन के विरूद्ध संघर्ष में विकसित हुआ। गाँधी नेतृत्व का विश्लेषण यह प्रकट करता है कि राष्ट्रीय आंदोलन में गाँधी की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण थी। यहां यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि गाँधी के नेतृत्व में कौनसी विशिष्टता है, जिसके कारण वे भारतीय समाज में बहुआयामी परिवर्तन लाने में सफल हो सके। किसी भी नेतृत्व की सफलता, समाज में उसके प्रभुत्व अथवा सत्ता से प्रकट होती है। गाँधी के पास न तो परम्परागत सत्ता थी और न ही वैधानिक सत्ता। यह मात्र गाँधी का 'करिश्मा' ही था, जिसके कारण भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन जन आंदोलन में परिवर्तित हो सका तथा गाँधी के नेतृत्व द्वारा प्रतिपादित सामाजिक परिवर्तन के कार्यक्रम को व्यापक जन समर्थन प्राप्त हो सका। अनेक ऐसे आधार हैं, जो गाँधी नेतृत्व को 'करिश्मा' के रूप में प्रकट करते हैं। यहाँ इन्हीं आधारों को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

गाँधी ने जब भारतीय राजनीति में प्रवेश किया, वह संकटकाल ही था। यद्यपि गाँधी के दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने के लगभग तीस वर्ष पूर्व ही कुछ तेजस्वी अंगरेजों ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नींव डाली थी। किन्तु आरम्भिक उदारवादी कांग्रेस ने ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति एक तरह का अनुगतभाव बनाए रखा।[5](शल्यः 1998) इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप कांग्रेस के भीतर ही गरम दल सिर उठाने लगा, जिसकी चरमपंथी नीतियों की प्रतिक्रिया सम्पूर्ण देश में होने लगी। सन् 1917 ई. तक कांग्रेस अंग्रेजी शासन की आलोचना तो करती रही किन्तु सुधारों की मांग के अतिरिक्त वह कुछ नहीं कर सकी। कांग्रेस में

आनेवाले प्रतिनिधि बड़े बड़े नगरों से आते थे, जिनका जन साधारण से कोई सम्पर्क नहीं था। ऐसी अभिजनवादी कांगेस जन आकांक्षाओं की पूर्ति करने में सहायक नहीं थी। ऐसी परिस्थितियों में गाँधी ने अपने को वास्तविक भारतीय जन की आदर्श प्रतिमा प्रतिकृति के अनुकूल बनाकर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को एक व्यापक एवं अभूतपूर्व जन क्रांति में परिवर्तित कर दिया।[6](सुमित सरकारः 1992) शहरी अभिजन तक सीमित रहा कांग्रेस का आंदोलन व्यापक जन आंदोलन में परिवर्तित हो गया और किसान एवं मजदूर धीरे धीरे कांग्रेस से जुड़ने लगे। भारत की दीन हीन जनता ने अपने मन में गाँधी की अपनी अपनी छवि बना ली थी। चम्पारन एवं खेड़ा के सत्याग्रहों के उपरांत किसानों को आभास होने लगा था कि गाँधी जमींदारी प्रथा समाप्त करा देंगे, संयुक्त प्रांत के खेत मजदूर समझते थे कि गाँधी उन्हें जोत दे देंगे। गाँधी यकायक सुदूरवर्ती गाँवों की जनता में भी, जिस प्रकार एक लोकप्रिय नेता बन गए थे, उसका उल्लेख इलाहाबाद जिले में सन् 1921 ई. में होने वाले किसान आंदोलन से संबंधित गुप्तचर विभाग की रिपोर्ट में मिलता है, जिसमें कहा गया है कि, "सुदूर गाँवों में भी मि. गाँधी के नाम के जैसा प्रचलन हो गया है, वह आश्चर्यजनक है। इनमें से कोई ठीक से यह नहीं जानता कि वे कौन है या क्या है, किन्तु यह तय है कि जो वे कहते है, वह सत्य माना जाता है और उनके आदेशों का पालन अनिर्वाय है।"[7] (तेंदुलकरः 1953)डी.जी. तेंदुलकर ने सन् 1922 ई. में गाँधी के इस व्यापक जनमत परिवर्तन के दौर का उल्लेख इन शब्दों में किया है :- "अभूतपूर्व दृश्य देखने को मिले। बिहार के गाँव में जहाँ गाँधी और उनके साथी पटरी से खड़ी ट्रेन से मौजूद थे, एक वृद्धा उनको ढूढ़ते हुए आई और बोली : "महाराज, मेरी उम्र अब एक सौ चार बरस हो चली है और नजर भी कम आता है। मैनें अनेक धामों की यात्रा की है। अपने घर में मेरे दो मंदिर है। जिस प्रकार राम और कृष्ण दो अवतार हुए थे, सुना है उसी तरह गाँधी भी अवतीर्ण हुए है।" यही वह निरा विश्वास था जो लोगों के अन्तःकरण को छू गया था, और जिन्होनें बहुदिशायी "महात्मा गाँधी की जय" के नारे से उनका सम्पूर्ण भारत में स्वागत किया था। बरिसाल की वेश्याएँ, कलकत्ता के मारवाड़ी ताजिर, उड़ीसा कुली, रेल्वे हड़ताली, खादी चद्दरें भेंट करने पर बजिद संथाल-सभी उनको चाहते। .... अलीगढ़ से डिब्रूगढ और सुदूर तिनैवेली तक गाँधी गाँव गाँव नगर नगर गए और यदा कदा मंदिरों और मस्जिदों में भी बोलें। वे जहां भी पधारे जनता के प्रेम प्रकोप को झेलते ही गए।"[8] (तेंदुलकरः 1953: पृ78)

गाँधी के करिश्माई नेतृत्व का एक और उदाहरण महादेव देसाई की डायरी का यह अंग है, "बिहार में गाँधीजी और शौकत अली को जिस उन्मादपूर्ण स्नेह का अनुभव हुआ उसको कलमबंद कर लिखित भाषा में व्यक्त करना असंभव सा है। बी. एन. डब्ल्यू, रेल्वे लाइन के हर स्टेशन पर हमारी गाड़ी रूकती और कोई भी ऐसा स्टेशन नहीं था, जहाँ सैकड़ों-हजारों की भीड़ नहीं रही हो। यहाँ तक कि दहलीज से बाहर पाँव न धरने वाली स्त्रियाँ भी उन्हें देखने सुनने के लिए मौजूद थी। छात्रों का एक विशाल समूह हर तरफ गाँधी को अपने जोश-ओ-खरोश की चादर में लपेटे रहता था। किसी स्थान पर कोई बहन अपने मूंगे का हार उतार कर कहती,-"यह मैं आपके पहनने के लिए विशेष रूप से लाई हूँ"-तो कहीं सन्यासीगण अपनी जयमाला उनकी गोद में छोड़ जाते। कहीं पर हाथ का सुंदर बुना थानों का कपड़ा पेश किया जाता, तो कहीं कोई स्नेहपूर्ण ग्रामीण वन से लाई अपनी भेंट के बारे में गर्वपूर्वक कहता, "महाराज यह मेरी

बहादुरी का अंजाम हैः यह बाघ लोगों के लिए काल था, मैं इसकी खाल आपको पेश करता हू।" कई जगह गाँधी के एजाज में वे बंदूके दागी गयी जो अन्यथा इंजन चालक को कोहरे में सिगनल देने के तौर पर इस्तेमाल की जाती है। अन्य स्थानों पर हमें ऐसे रेल अफसर मिले जो अपने अधिकार क्षेत्र में गाड़ी को हरी झंडी ही नहीं दिखाते थे, जिससे वे स्वंय और अन्य लोग भी गाँधीजी के दर्शन कर सकें। यह जानते हुए कि हमारी स्पेशल गाड़ी तेजी से गुजर जाएगी, लोग रेल्वे लाइनों के पास इस आशा में खड़े रहते थे कि शायद गाँधीजी की एक सरसी झलक ही मिल जाए, या फिर उनके कानों तक "गाँधी-शौकत अली की जय" की आवाज तो पहुचा ही दें। हम कुछ पुलिसवालों तक से मिलें जो हिम्मत कर गाँधीजी को प्रमाण या हस्त स्पर्श करने आए, यहाँ तक कि सी.आई.डी. वाले भी जो गिड़गिड़ाकर कहते, "हम यह गंदा काम पापी पेट की खातिर करते है परन्तु कृपया यह पाँच रूपये स्वीकार करें।" [9] (देसाई : 1965)

बीसवीं शताब्दी के दूसरे और तीसरे दशक तक भारतीय जन सामान्य औपनिवेशिक सत्ता के साथ साथ स्थानीय स्तर पर अभिजातीय शोषण से त्रस्त हो चुका था, उसे अब इस बात की आवश्यकता थी कि ऊपर के कोई त्राता आकर उनका प्रतिनिधित्व करें। चम्पारन, खेड़ा एवं अहमदाबाद के सत्याग्रहों में गाँधी के नेतृत्व ने उसमें नवीन आशा जगाई। दक्षिण अफ्रीका में अपने नेतृत्व का करिश्मा दिखला चुके गाँधी से भारतीय जन सामान्य यहां भी उनके किसी "करिश्मा" की उम्मीद रखने लगा। उनकी यह उम्मीद झूठी नहीं थी। चम्पारन में गाँधी के नेतृत्व में तीनकठिया प्रथा की समाप्ति, अहमदाबाद में मिल मजदूरों की मजदूरी में वृद्धि, तथा खेड़ा में मालगुजारी की माफी इत्यादि, वे सफलताएँ थी, जिन्होंने गाँधी के नेतृत्व का मनोवैज्ञानिक प्रभाव भारतीय जनमानस में स्थापित किया। कृषकों को लगने लगा कि अब गाँधीजी आ गए है तो उन्हें राक्षस निलहों से कोई भय नहीं है। दूसरी ओर ब्रिटिश शासन के पास भी यह खबर पहुचने लगी कि, गाँधी प्रतिदिन अज्ञानी जनसमुदाय की कल्पना को आसन्न स्वर्णयुग के स्वप्न दिखाकर रूपांतरित कर रहे है।[10] (शाहीद आमीन व पांडेः 1995) दो शताब्दियों के औपनिवेशिक शासन ने सभी क्षेत्रों में देश को पतन के गर्त में डाल दिया था और लोगों की जीवंतता को सोख लिया था। लोगों की क्रियात्मकता एवं सृजनशीलता समाप्त हो गई और उनमें भय का वास हो गया। ऐसे में गाँधी का करिश्मा उन्हें भय से मुक्त करता है और उनकी सृजनात्मकता एवं क्रियात्मकता को राष्ट्रीय आंदोलन के साथ जोड़ता है। नेहरू ने लिखा है, "ब्रिटिश शासन में भारत में स्वाभाविक प्रवृति भय से व्याप्त थी, व्यक्ति को तोड़ देने वाले और दमघोटू भय से सेना, पुलिस तथा चारों ओर फैली खुफियागिरी का भय, सरकारी हुक्मरानों का भय, लोगों को दबाने के लिए ही बनाए गए कानूनों तथा जेल का भय, जमींदारों के गुमाश्तों का भय, साहूकारों का भय, घर के दरवाजे पर ही खड़ी बेरोजगारी तथा भूखमरी का भय। इस सर्वव्यापी भय के विरूद्ध गाँधीजी की शांत तथा निश्चयशील आवाज उठी-भय मत करों" (शाहीद आमान व पांडेः 1995: 187)[11] (वही पृ.187)

शाहिद आमीन एवं ज्ञानेन्द्र पाण्डे अपनी शोध पुस्तक "निम्नवर्गीय प्रसंग" में ऐसे अनेक उदाहरणों का उल्लेख करते है, जिनसे यह प्रकट होता है कि निम्न वर्ग में गाँधी के करिश्मा का दैवीयकरण हो चुका था। सन् 1921 ई. में पायनियर के सम्पादक ने गोरखपुर और पूर्वी उत्तर प्रदेश के अन्य जिलों में गाँधी शक्ति के संबंध में अनेक किस्सों की चर्चा की है। उनके अनुसार एक अहीर जिसने गाँधी के नाम पर

भिक्षा देने से इंकार किया था, उसका गुड़ और भैसें जलकर राख हो गई। एक ब्राह्मण, जिसने संशय के कारण गाँधी जी की शक्ति को नकारा था पागल हो चला और तीन दिन पश्चात् उस पूज्य नाम का स्मरण करने से पुनः ठीक हो पाया। इसके अलावा गाँधीजी के कारण पवित्र कुरान की एक प्रति एक ऐसे कमरे से निकली जो साल भर से बंद था। निस्संदेह ऐसे किस्से, यद्यपि एक अस्वस्थ मानसिक स्थिति के परिचायक है, जिससे भारतीय समाज का कृषक वर्ग सदियों पहले से ग्रसित रह चुका है।

करिश्माई नेतृत्व की संकल्पना में यह बात निहित है कि करिश्माई नेतृत्व का आंदोलन आस्थावादी होता है और अनेक बार यह आस्था उस करिश्माई व्यक्तित्व को जादूगर अथवा पराभौतिक मानव के रूप में देखने लगती है। गाँधी के साथ यदि लोक स्तर पर ऐसी घटनाएँ घट रही थी, तो यह निश्चित रूप से गाँधी के करिश्मा का ही प्रभाव था। यही कारण है कि गाँधी के नाम के साथ भगवान शब्द अक्सर जोड़ दिया जाता था। जब वे गावों से होकर निकलते थे, तो ग्रामीण कृषक उनके दर्शन की हठ करते थे। उनके दर्शन की हठाभिलाषा गाँधी के दैवीकरण का अतिरिक्त प्रमाण थी। [12] (सुमित सरकार : 1974:215)

चम्पारन सत्याग्रह में किसानों की भूमिका पर शोध कार्य करने वाले पुष्पदास का यह मानना है कि गाँधी को पराभौतिक मानव सिद्ध करने वाली अनेक चमत्कारिक घटनाओं की अफवाहें जान बूझकर स्थानीय नेताओं द्वारा फैलाई गई थी, जिन्होंने अपने आंदोलन को अतिरिक्त गति प्रदान करने के लिए गाँधी के करिश्मों का सहारा लिया था। ..... किन्तु महत्वपूर्ण बात यह है कि किसानों ने उन पर विश्वास इसलिए किया क्योंकि गाँधी का नाम उनसे जुड़ा था। वस्तुतः कई स्थानों पर खेड़ा एवं चम्पारन सत्याग्रह के उपरांत गाँधी को, भारतीय किसान जमींदार विरोधी के रूप में देखने लगे थे। [13] (पुष्पदासः 1974) इलाहाबाद के गुप्तचर विभाग की रिपोर्ट यह दर्शाती है कि किसान गाँधीजी से संबंधित अफवाहों को एक आमूल परिवर्तनवादी, जमींदार विरोधी मोड़ दे रहे थे।[14] (सुमित सरकारः 1995 : 211) जहाँ तक निम्न वर्ग में गाँधी की एक पराभौतिक मानव की छवि का प्रश्न है, प्रबल धार्मिक स्वर लिए हुए गाँधी जैसा नेतृत्व शायद उस काल की ऐतिहासिक आवश्यकता थी।

करिश्मा अपने चिंतन एवं दृष्टिकोण से स्थापित व्यवस्था को चुनौती देता है। गाँधी ने भी एक ओर जहां अहिंसात्मक क्रांति के द्वारा ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता को चुनौति प्रदान की, वहीं दूसरी ओर रचनात्मक कार्यक्रम द्वारा भारतीय समाज के पुनर्निर्माण का कार्य किया। गाँधी के सन् 1920 ई. में असहयोग आंदोलन के समय बहिष्कार एवं अस्पृश्यता निवारण, शराब बंदी, स्वयं का काता एवं बुना धागा धारण करना आदि रचनात्मक कार्यक्रमों का चमत्कारिक प्रभाव देखने को मिलता है। गाँधी के आव्हान पर निम्न तथा मध्य जातियों की पंचायतों ने खान-पान संबंधी निषेध लागू किए। यह उनके आत्म सम्मान के व्यापक आंदोलन का अंग था। उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के नौगढ़ से एक पत्रकार ने गोरखपुर से निकलने वाली स्वदेश पत्रिका में लिखा : "यहाँ के भंगियों, धोबियों और नाईयों ने 27 जनवरी को अपनी बिरादरी में पंचायत की है कि जो मांस, मछली और शराब ग्रहण करेगा, वह बिरादरी से दण्ड का भागी होगा और उसे 51 रूपया गौशाला में देना पड़ेगा। धोबियों और नाईयों का यह भी कहना है कि जो

महाजन मांस, मछली तथा शराब ग्रहण करेंगे, उनका न तो वे कपड़ा धोएंगे और न बाल ही बनाएंगे।" [15] (शाहीद आमीन व पांडेः 1995 : 193)

अक्टूबर, 1920 में बरेली में चमारों की सभा ने न सिर्फ यह निर्णय लिया कि वे मांस, शराब तथा दूसरे नशों को त्याग देंगे बल्कि उन्होंने स्पष्ट रूप से दौरे पर आए हुए जिला अधिकारियों की बेगार करने से भी इनकार कर दियां उस अवसर पर गवर्नर को दी गई अपनी याचिका में उन्होंने कहाः "अपने धंधे के अनुरूप हम कोई भी जायज सेवा करने को तो तैयार हैं किन्तु थाने और तहसील के मामूली नौकरों द्वारा एक चमार के प्रति जो रोज अमानवीय व्यवहार किया जाता है, उसकी कसक असहनीय हो चली है।" [16] (शाहीद आमीन व पांडेः 1995 : 193)

इस प्रकार गाँधी के अस्पृश्यता विरोधी आंदोलन से निम्न जातियों एवं अछूतों पर कांग्रेस का प्रभुत्व कायम हुआ। शराबबंदी के आंदोलन ने भी अपना व्यापक प्रभाव छोड़ा। शराबबंदी के कार्यक्रम में सन् 1921-22 में पंजाब के आबकारी राजस्व में 33 लाख रूपये की कमी आई तथा मद्रास में आबकारी राजस्व की गिरावट के कारण बजट में 65 लाख रूपये का घाटा रहा। 17 (सुमित सरकारः 1995 : 244) इस घाटे से बचने के लिए सरकार ने शराब के पक्ष में प्रचार आरम्भ कर दिया। बिहार एवं उड़ीसा की सरकार तो उन इतिहास पुरूषों के नाम गिनाए जो शराब पीते थे (सिकंदर, जूलियस सीजर, नेपोलियन, शेक्सपियर, बिस्मार्क आदि) [18] (बिपिन चन्द्र व अन्यः 1998 :137) शराबबंदी के समान ही चरखा आंदोलन का भी विस्तृत असर हुआ। गाँधी के आह्वान पर चरखे एवं खादी का अत्यधिक प्रचार हुआ, जिसका चमत्कारिक प्रभाव देखने को मिलता है। चरखा एवं खादी राष्ट्रीय आंदोलन के प्रतीक बन गए। इनके माध्यम से न केवल भारतीय समाज में आर्थिक पुररूत्थान के माध्यम से स्वावलम्बन को बल मिला अपितु इससे स्वयं राष्ट्रीय आंदोलन को भी आर्थिक आधार पर आत्माश्रित होने का मार्ग मिला। इसी प्रकार देश भर में अनेक वकीलों ने भी अपनी वकालात छोड़ दी। बहिष्कार का सर्वाधिक प्रभाव विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के रूप में देखा जा सकता है, विशेषतः विदेशी कपड़ो के बहिष्कार का। स्थानीय लोग इकठ्ठे होकर जगह जगह विदेशी कपड़े की होली जलाने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि 1920-21 में जहां एक अरब दो करोड़ रूपए की विदेशी कपड़ों का आयात हुआ, वहीं 1921-22 में यह घटकर 57 करोड़ रह गया।) [19] (बिपिन चन्द्र व अन्यः 1998 :122) जनवरी, 1921 तक आते आते गाँधी पूरे देश में लोकप्रिय नेता हो चुके थे। जिस प्रकार हर करिश्माई नेतृत्व के साथ होता है कि वह परम्परागत तरीकों को छोड़कर अपने नवीन चिंतन दृष्टिकोण एवं कार्यक्रम से समाज को संकट की स्थिति से उबारने के लिए राह सुझाता है, गाँधी भी भारतीय समाज में परिवर्तन के लिए संघर्ष का एक नया रूप लेकर उभरे।

गाँधी ने राष्ट्रीय आंदोलन को कोई उत्तेजनापूर्ण विद्रोह न बनाकर, सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में जनसामान्य को सम्मिलित करते हुए आंदोलन की ओर पहला कदम बढ़ाया। उन्होनें सत्याग्रह, असहयोग एवं सविनय अवज्ञा जैसे हथियारों का चयन इस समझ के साथ किया कि-यदि सशस्त्र संघर्ष छेड़ा गया तो न केवल औपनिवेशिक सत्ता को बड़े पैमाने पर दमन का बहाना मिल जाएगा बल्कि जनता अपने संघर्ष में हार जाएगी और उसका मनोबल गिरेगा।) [20] (कुमार राकेशः 2002) लोग आंदोलन में निष्क्रिय

हो जाएंगे। इसलिए गाँधी ने संघर्ष का ऐसा कार्यक्रम तैयार किया, जिससे जन साधारण राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति जागरूक हो सकें और आंदोलन व्यापक रूप ले सकें। किसानों के लिए उनका कार्यक्रम था कि वे भू-राजस्व नहीं देंगे, जिससे सरकार आर्थिक रूप से कमजोर होगी। गाँधी के आगमन से पूर्व भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के पास कोई ठोस दर्शन अथवा कार्यक्रम नहीं था। गाँधी ने उसे मानवीय उद्धेश्यों और ठोस तर्कों में संजोकर एक सुदृढ़ वैचारिकी प्रदान की। उन्होंने स्वतंत्रता संघर्ष को एक राजनीतिक स्वतंत्रता की लड़ाई से आगे बढ़ाकर, दो सभ्यताओं का संघर्ष घोषित किया। ऐसा नहीं था कि गाँधी ने जो तर्क एवं दर्शन दिया, वह उनसे पूर्व किसी नेता अथवा विचारक ने नहीं दिए हों। किन्तु गाँधी की मुख्य बात यह रही कि पहले उन्होंने स्वयं को पश्चिमी सभ्यता के मोहजाल से मुक्त किया और परम्परागत भारतीय जीवन शैली के अनुरूप प्रतिस्थापित किया। जनमानस के सम्मुख एक विकल्प प्रस्तुत किया और विशाल भारतीय समाज के साथ तारतम्य स्थापित किया। इसी का प्रभाव रहा कि अनेक उच्चवर्गीय देशभक्त भी गाँधी के साथ एकरूप होने की कोशिश करने लगे। यही गाँधी का करिश्मा था।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के गहन विश्लेषण से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय आंदोलन की प्रमुख विचारधारात्मक दिशा थी-गाँधी और गाँधीवादियों की समग्र सामाजिक दृष्टि। गाँधी ने राष्ट्रीय आंदोलन को स्वतंत्रता के साथ साथ सामाजिक परिवर्तन के व्यापक लक्ष्य की ओर उन्मुख किया। उन्होंने आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक सत्ता के ढ़ांचें में बुनियादी परिवर्तन का ठोस व व्यवहारिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया। गाँधी ने उदारवादी साधनों को जनांदोलन के रूप में बदला। स्वतत्रंता संग्राम के तीनों सबसे बड़े आंदोलनों-असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन एवं भारत छोड़ो आंदोलन का नेतृत्व गाँधी ने ही किया तथा भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को व्यापक आधार प्रदान किया। कांग्रेस संगठनों को ग्रामीण स्तर पर पहुँचाया। सदस्यता शुल्क घटाकर 25 पैसे किया, जिससे कि आम गरीब आदमी की पहुँच भी इस तक हो जाए। इस प्रकार गाँधी ने सामाजिक परिवर्तन के अपने इन रचनात्मक कार्यक्रमों से एक नया समाजशास्त्र खड़ा किया। गाँधीवादी चिंतन की महत्वपूर्ण देन यह है कि राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ उसने आर्थिक स्वतंत्रता को दिशा दी तथा कुछ ऐसे मूल्य स्थापित किए जो भारतीय समाज को हमेशा ऊर्जा प्रदान करते रहेंगे।

करिश्माई नेतृत्व का एक मुख्य लक्षण यह होता है कि इसके अंतर्गत जनता स्थापित नियमों से हटती है और वह अनुकरणीय तरीकों से जुड़ जाती है, जो करिश्माई नेतृत्व प्रचारित करता है। सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, असहयोग, हड़ताल, उपवास, सविनय अवज्ञा, धरना, हिजरत आदि तकनीकें भारतीयों के लिए नवीन थी किन्तु वे इन तकनीकों का अनुकरण करने लगे। अब तक हमारे यहां संघर्ष के जो तरीके थे, वे थे केवल तर्क वितर्क और प्रस्ताव पारित करना या फिर उग्र चरमपंथी गतिविधियां। भारतीय जन मानस इन दोनों ही पद्धतियों से अप्रभावित रहा, यही कारण था कि वह एक लम्बे समय तक स्वतंत्रता आंदोलन से नहीं जुड़ा। गाँधी ने शांतिपूर्ण साधनों पर आधारित आंदोलन का जो रूप प्रकट किया, वह उनके नेतृत्व का आधार एवं ध्येय था। उन्होंने इन शांतिपूर्ण साधनों से ही एक अनोखी अशांति उत्पन्न कर दी। उन्होंने सत्ता पदसोपान, सामाजिक उत्तरदायित्व, आत्म साक्षात्कार सहमति, एकता की परम्परागत अवधारणाओं को आधुनिक संदर्भ में परिभाषित किया और इन सबको एक विशिष्ट कार्यात्मक राष्ट्रीय

पहचान के सूत्र में पिरो दिया।[21] (रजनी कोठारीः 1970) वस्तुतः गाँधी ने भारतीय जीवन पर शासन करने वाले जीवन मूल्यों को पहचाना। उन्होनें सामाजिक परिवर्तन के अपने कार्यक्रम में भारतीय जीवन के वृत खण्ड को जोड़ने वाली सबसे गहरी रेखा को पहचाना। गाँधी ही वह प्रथम विचारक थे, जिन्होंने ` महासागरीय तंरग वृत ' के रूप में एक ऐसी कार्ययोजना रखी जो उनके मत में एक सुदृढ़ व्यवस्था स्थापित करने के साथ साथ भारतीय समाज के भिन्न भिन्न सामाजिक समूहों को एकरूप होने का अवसर प्रदान करता है। इस प्रकार वे भारत की सामाजिक वास्तविकता से परिचित थे और सम्भवतः यही कारण रहा कि लगभग दो दशक से भी अधिक समय तक वे एक `करिश्मा' एवं `संत' के रूप में भारतीय जनमानस में छाए रहें। [22] (मेहता : 1970)

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में प्रवेश करने के बहुत अल्प समय के भीतर ही गाँधी कांग्रेस, उसके संगठन एवं राष्ट्रीय आंदोलन में एक मात्र नायक के रूप में उभरे। निस्संदेह वे स्वाधीनता संग्राम के अनेक नायकों में से एक थे, किन्तु बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक के उपरांत वे ही स्वाधीनता संग्राम के एक मात्र नायक थे, अन्य लोग उनके सहयोगी मात्र थे। गाँधी परमार्थ सत्य के अन्वेषी थे जो न उनके किसी राजनीतिक सहयोगी को गम्य था, न भारतीय जनमानस को, किन्तु फिर भी वे एक मात्र राजनीतिक नेता थे, जो भारतीय स्वंतत्रता संग्राम के नायक थे तथा अन्य सभी उनके पीछे चलने को विवश थे सन् 1920 ई. से सन् 1946 तक गाँधी का राष्ट्रीय आंदोलन और कांग्रेस पर पूर्ण प्रभाव रहा। कांग्रेस में गाँधी उदय के साथ ही, कांग्रेस गाँधी वर्चस्व के नीचे दबी रही।

सन् 1920 ई. में नागपुर अधिवेशन से ही गाँधी कांग्रेस के सर्वमान्य नेता बन चुके थे। इस अधिवेशन में उन्होंने कांग्रेस का विधान बदला किन्तु कोई विरोध नहीं हुआ। सन् 1922 ई. में कांग्रेस के गया अधिवेशन में काउन्सिल प्रवेश के मुद्धे को लेकर दो गुट बन गए थे। गाँधी काउन्सिल में प्रवेश के विरूद्ध थे जबकि मोती लाल नेहरू एवं सी. आर. दास काउन्सिल में प्रवेश के समर्थक थे। अन्ततः 890 के मुकाबले 1740 मतों से गाँधी का पक्ष विजयी रहा और इस प्रकार गाँधी का वर्चस्व ही कांग्रेस में रहा। सन् 1920 ई. में गाँधी की अनुपस्थिति में कांगेस के मद्रास अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू ने स्वाधीनता का आकस्मिक प्रस्ताव पारित किया तो गाँधी ने इसका कड़ा विरोध किया। अगले ही वर्ष कलकत्ता अधिवेशन में वे समझौते का एक सूत्र स्वीकार करवाने में सफल रहें, जिसमें नेहरू रिपोर्ट के `डोमिनिअन स्टेट्स' के लक्ष्य को इस शर्त पर स्वीकार किया गया था कि ब्रिटिश सरकार यदि सन् 1929 ई. तक यह दर्जा प्रदान नहीं करती है तो कांग्रेस सविनय अवज्ञा आंदोलन एवं पूर्ण स्वराज की मांग करने के लिए स्वतंत्र होगी। इसी प्रकार सन् 1929 ई. के लाहोर अधिवेशन में सुभाष चन्द्र बोस ने करों की ना अदायगी तथा समानांतर सरकार के निर्माण का प्रस्ताव रखा, जो गाँधी के विरोध के चलते अस्वीकृत हो गया जबकि इरविन की ट्रेन पर बम फैंके जाने की घटना की निंदा का गाँधी द्वारा रखा गया प्रस्ताव पारित हो गया। यही नहीं, सुभाष चन्द्र बोस एवं जवाहर लाल नेहरू, सविनय अवज्ञा आंदोलन के अन्तर्गत आम हड़तालों की योजना बना रहे थे, किन्तु लाहौर अधिवेशन में यह तय हुआ कि इस आंदोलन की कार्ययोजना अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी बनाएगी अर्थात स्वंय गाँधी बनाएंगे। सन् 1942 ई. में भारत छोड़ो आंदोलन के प्रस्ताव की स्वीकृति तक गाँधी इसी प्रकार कांग्रेस की एकमात्र

निर्णायक धुरी रहें। उपर्युक्त घटनाओं से इंगित होता है कि यह गाँधी का प्रभाव, करिश्मा एवं ध्येय था कि पूरी कांग्रेस गाँधी के चरणों में थी और वह तब भी गाँधी से अपने को मुक्त नहीं कर सकी जबकि स्वयं गाँधी ने अपने आपको कांग्रेस से बलात् मुक्त कर लिया था। [23] (भटनागरः68)

करिश्मा की संकल्पना के स्पष्टीकरण में यह उल्लेखित किया गया है कि संकट के समय करिश्माई नेतृत्व समूह की सामूहिक उत्तेजना के साथ जुड़ता है और समूह उसके करिश्माई गुणों के कारण उसके प्रति समर्पित होता है। गाँधी में यह बात सत्य प्रतीत होती है। असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन एवं भारत छोड़ों आंदोलन मुख्यतः यह तीन वे सामूहिक उत्तेजना के क्षण थे, जब गाँधी ने अपने नेतृत्व कौशल से इस उत्तेजना को एक व्यापक जन आंदोलन में परिवर्तित कर दिया। गाँधी की इसी विशेषता के बारे में गोखले ने अपनी मृत्यु से कुछ समय पूर्व जयप्रकाश से कहा था, "याद रखो कि ऐसे अवसरों पर जब लोगों की भावनाओं को भावुकता एवं त्याग की ऊंचाईयों तक ले जाने अथवा उसे ऊचे आदर्शो के निकट ले जाने की बात है, गाँधी एक अद्भूत नेता है, उनके व्यक्तित्व में कुछ ऐसा है, जो तुरंत ही गरीब जनता का ध्यान अपनी आकर्षित कर लेता है और वे बड़ी शीघ्रता के साथ दुःखी और उत्पीड़ित लोगों के साथ पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर लेते है।" [24] (मजूमदारः 1966)

करिश्माई नेतृत्व के नियम स्वर्गिक अनुभवों पर आधारित होते है। वह उन सभी बाहरी आदर्शो के बंधनों को रद्ध कर देता है, जो उसकी स्वाभाविक सोच, से नहीं उपजे हों। अपने आदर्शस्वरूप में करिश्मा सभी परम्परागत, औपचारिक एवं बौद्धिक नियमों से स्वतंत्र होता है। यद्यपि गाँधी पर यह आरोप लगते रहें है कि, उन्होंने जिन नियमों एवं सिद्धांतों का निर्माण किया है, उनमें मौलिकता का अभाव पाया जाता है। निस्संदेह गाँधी ने जिन सम्प्रत्ययों अथवा प्रतिमानों का प्रयोग किया है, वे भारतीय जीवन परम्परा के औपचारिक अंग रहे हैं, किन्तु गाँधी के नेतृत्व की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि यही है कि उन्होंने इस परम्परागत प्रतिमानों एवं मूल्यों को नवीन रूप में अपनाया। उन्होंने उनमें अपने मौलिक चिंतन का समावेश करते हुए इन्हें, स्वतंत्रता आंदोलन को जन आंदोलन बनाने का माध्यम बनाया। गाँधी ने सत्य एवं अहिंसा जैसे वैयक्तिक प्रतिमानों को सामाजिक जीवन की नैतिकता में रूपांतरित किया। गाँधी केवल आदर्शो एवं मूल्यों के संदर्भ में परम्परावादी थे किन्तु लम्बे समय से समाज में प्रचलित सभी मान्यताओं एवं प्रथाओं को यथारूप ग्रहण कर लेना उन्हें स्वीकार्य नहीं था।" [25] (नेहरूः 1951) प्राचीन रूढ़ियों एवं प्रथाओं से मुक्त, पूर्णतः एक नवीन वैकल्पिक समाज की रचना का उनका विचार नितान्त मौलिक था। वैकल्पिक समाज संरचना की उनकी कार्ययोजना उनके स्वाभाविक सोच का यही परिणाम थी। अनेक विपरीत परिस्थितियों दबावों एवं तनावों के प्रत्यक्ष उपस्थित होने के उपरांत भी गाँधी ने अपना मार्ग नहीं बदला। यहीं उनका करिश्मा है।

करिश्मा तात्कालिक ही नहीं होता, वह संकटकाल के खत्म होने के उपरांत भी जारी रहता है। करिश्मा का संदेश एक मत या सिद्धांत बन जाता है। स्थाई सामाजिक आधार प्राप्त होने पर वह परम्परागत अथवा वैधानिक नेतृत्व में बदल जाता है। इस आधार पर यदि गाँधीयन करिश्मा का मूल्यांकन किया जाए तो हम कह सकते हैं कि गाँधीयन करिश्मा आज भी जीवित है और वह प्रासंगिक भी है। गाँधी ने स्वयं अपने चिंतन को कभी एम मत या वाद कहलाना पसंद नहीं किया किन्तु फिर भी गाँधी के पश्चात् उनके

अनुयायियों, लेखकों एवं चिंतकों ने गाँधी चिंतन की समृद्ध परम्परा को आगे बढ़ाया है। गाँधी के उपरांत भी विश्व में नस्लवाद, सैनिकवाद एवं तानाशाही के विरूद्ध चलाए गए आंदोलन गाँधी चिंतन से प्रभावित रहें है। डॉ. एलवर्ट लुथिलि (नोबल पुरस्कार विजेता), वाल्टर सिसलू, डॉ. दादू, नाइकर, नेल्सन मंडेला (दक्षिण अफ्रीका) मार्टिन लूथर किंग, (अमरीका) एन्क्रुमा (घाना) और कौंडा (जाम्बिया) आदि की गतिविधियों और विचारधार पर गाँधी के चिंतन, व्यक्तित्व एवं कर्म की छाप है। भारत में विनोबा भावे, जयप्रकाश नारायण जैसे विचारकों ने गाँधी चिंतन को नवीन दिशा दी है। आज भी अनेक लेखक, विचारक एवं मनीषी गाँधी चिंतन पर न केवल शोध कर रहे है अपितु उसे अपने कर्मक्षेत्र में भी सम्मिलित कर रहे है। इस प्रकार स्पष्ट हैं कि गाँधी चिंतन ने एक मत या वाद का रूप ग्रहण कर लिया है, और समाज एवं शासन ने उसे अनेक स्तरों पर स्वीकार कर परम्परागत अथवा वैधानिक नेतृत्व में बदल दिया है। यद्यपि यह एक पृथक शोध एवं विश्लेषण का विषय है कि गाँधी के इतने वर्षो उपरांत गाँधी का करिश्मा कितना धूमिल हुआ है और क्या वह परम्परागत या वैधानिक नेतृत्व में स्थाई रूप से परिवर्तित हो सका है? किन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि गाँधी का करिश्मा पूर्णतः समाप्त नहीं हुआ है, वह निर्जीव अवस्था में ही सही किन्तु जीवित अवश्य है।

शिल्स के अनुसार करिश्मा व्यवस्था परिवर्तन ही नहीं करता अपितु उसका अनुरक्षण भी करता है। विश्व में अधिकांश आंदोलन `व्यवस्था परिवर्तन' के लिए ही हुए है, किन्तु गाँधी का आंदोलन इस अर्थ में अनोखा है कि वे मार्क्स के समान स्थापित व्यवस्था को पूर्णतः समाप्त नहीं करना चाहते अपितु वे उसी में सुधार कर एक नवीन व्यवस्था को जन्म देना चाहते हैं। गाँधी का मत था कि समाज व्यवस्था एवं व्यक्ति दोनों को साथ साथ बदलना होगा। केवल व्यवस्था बदल देने से बुराईयाँ समाप्त नहीं हो जाती। परिवर्तन के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति स्वयं में परिवर्तन करें। संभवतः इसीलिए सामाजिक परिवर्तन के लिए गाँधी ने वैयक्तिक प्रतिमानों को सबल रूप से प्रस्तुत किया है। शिल्स के समान ही ओमेन का भी यह मानना है कि करिश्माई आंदोलन सदैव परिवर्तन उन्मुखी ही हो। अनेक बार परिवर्तन उन्मुखी होते हुए भी करिश्मा `यथा-स्थिति' को अपनाए रखना चाहता है और इस रूप में वह तनाव प्रबंध अथवा व्यवस्था अनुरक्षण का कार्य भी करता है। इस रूप में गाँधी का करिश्मा अनुदाहरणीय है। वे व्यवस्था में परिवर्तन तो चाहते है, किन्तु व्यवस्था के भीतर रहकर। वे व्यवस्था को तोड़ना भी नहीं चाहते। अनेक बार ऐसे समय में, जब आंदोलन अपने चरम पर होता था, तब गाँधी उसे स्थगित कर देते थे क्योंकि वे व्यवस्था को बदलना चाहते है किन्तु व्यवस्था समाप्त नहीं करना चाहते। व्यवस्था के भीतर रहकर व्यवस्था के प्रति विद्रोह-यही गाँधी का पथ है, जो उनके नेतृत्व को करिश्माई बनाता है।

गाँधी का नेतृत्व इस अर्थ में करिश्माई है कि वे वैधानिक, बौद्धिक अथवा पारम्परिक सत्ता के समर्थन के बिना अपने आंदोलन को ऊचाईयों पर ले गए। संसार में अनेक व्यक्तियों को करिश्माई नेता के रूप में देखा गया है, जैसे-चर्चिल, नेहरू, इंदिरा गाँधी आदि। किन्तु इनका नेतृत्व करिश्माई इसलिए बन पाया क्योंकि इनके पास वैधानिक सत्ता थी। किन्तु गाँधी के पास न तो वैधानिक सत्ता थी और न ही वे बाह्यय बौद्धिक शक्तियों से सहायता ले रहे थे। विशुद्ध करिश्मा वही होता है जो बिना बौद्धिक, वैधानिक एवं आर्थिक सहायता प्राप्त किए, स्वयं के कर्म एवं चिंतन से जन समूह को अपनी ओर

आकर्षित करता है एवं उनका नेता बन जाता है। इस अर्थ में गाँधी का नेतृत्व विशुद्ध रूप से करिश्माई है। इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों की रोशनी में यह प्रकट हो जाता है कि गाँधी का नेतृत्व करिश्माई था।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1.मैक्स वेबर, एसेज ऑन सोशियोलोजी, (सं एवं अनु.) द्वारा एच. एच. गिर्थ व सी राइट मिल्स, न्युयार्क: ऑक्स्फॉर्ड युनिवर्सिटी प्रेस.

2.सिन्हा संजयकुमार, एडमिनिस्ट्रेटिव थॉट ऑफ मैक्स वेबर, जयपुर: आर बी एस ए 2002, पृ.54

3.ओमेन टी.के., करिश्मा, स्टेबिलिटी एंड चेंज, नई दिल्ली, थामसन प्रेस लि. 1972 पृ.4

4.एडवर्ड सिल्स, करिश्मा आर्डर एंड स्टेट्स, अमेरिकन सोशियोलोजिकल रिव्यू, सं. 30, 1965, पृ. 199-215

5.यशदेव, शल्य, हमारा समय: असहमतियां और अपेक्षाएँ, गाँधी मार्ग, मार्च-अप्रेल, 1998

6.सरकार सुमित, आधुनिक भारत, प्र. सं. 1992, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, होम पोलिटिकल डिपोजिट फरवरी 1921 सं. 13

7.तेदुंलकर डी. जी., महात्मा, 8वाँ संस्करण, मुम्बई, विठलभाई झावरी तथा तेंदुलकर 1953 पृ. 78

8.वहीं पृ. 66-67

9.देसाई महादेव, डे-टू-डे विद गाँधी (सेक्रेटरीज डायरी), प्प्प् वाराणसी, 1965, पृ. 143 व आगे

10.आमीन शाहिद व पांडे ज्ञानेन्द्र, निम्नवर्गीय प्रसंग, भाग-1 नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 1995, पृ. 186

11.वही पृ.157

12.सुमित सरकार, वहीं, पृ. 215

13.जाक पुष्पदास, लोकल लीडर्स एंड द एंटैलिसेसिया इन दि चम्पारन सत्याग्रह (1917) : अ स्टडी इन पेजेंट मोबिलाइजेशन कॉन्ट्रीव्यूशन्स टू इंडियन सोशिओलोजी (न्यूसीरिज) 8, 1974, पृ. 82-85

14.सुमित सरकार पूर्वोक्त

15.शाहीद आमीन एवं पाण्डे, पूर्वोक्त

16.वही

17.सुमित सरकार पूर्वोक्त पृ. 244

18.चन्द्र विपिन एवं अन्य भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, नई दिल्ली, हिन्दी माध्यम कार्यन्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, परिवर्धित संस्करण, 1998, पृ. 32

19.वही पृ.122

20.कुमार रोकश, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की कोख से जन्मे जीवन मूल्य, सं. लेख, योजना, अक्टूबर, 2002, पृ. 15

21.कोठारी, रजनी, पॉलिटिक्स इन इंडिया बॉस्टन, लिटिल ब्राउन, 1970, पृ. 53-54

22.मेहता वी. आर. गाँधीज विजन एंड स्ट्रेटेजी फॉर सोशअल एक्शन, सं. लेख डेमोक्रेटिक कंसर्नस: द इंडिअन एक्सप्रिऐंस, पृ. 29
23.भटनागर राजेन्द्र मोहन, भारतीय कांग्रेस का इतिहास (भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और विकास की कथा यात्रा), जयपुर, पंचशील प्रकाशन पृ. 168
24.मजूमदार, एस. के जिन्ना एंड गाँधी, कलकत्ता, करमा के. एल. मुखेपाध्याय, 1966 पृ. सं.?
25.नेहरू जवाहर लाल, डिस्कवरी ऑफ इंडिया, लंदन, मेरिडिअन बुक लि., 1951, पृ. 336

***

राजनीतिक प्रतिकार के अभिनव प्रयोग

डॉ. रवीन्द्र कुमार वर्मा[29]

इतिहास साक्षी है कि राज्य के उपकरणों या ताकतवरों द्वारा नागरिकों के अधिकारों का हनन इसलिए भी होता रहा है कि पीड़ित नागरिक समाज में प्रतिकार की संस्कृति का अभाव रहा है। बीसवीं सदी में दक्षिण अफ्रीकी नामीबिया के हेरेरो और नामा प्रजातियों पर आठ दशकों तक अत्याचार, यूक्रेन के यहूदियों पर, अरमेनिया वासियों पर, बुरुन्डी के हुटु पर अत्याचार इसके प्रमाण हैं। विश्व में अत्याचार के विरुद्ध कला के माध्यम से प्रतिकार किए जाने के प्रमाण मिलते हैं। बर्लिन के कलाकार द्वारा मॉक पैलेस्टिनियन नाट्य के माध्यम से समुदाय की पहचान, स्लावेनिया के छात्रों द्वारा राज्य के प्रतीकों का व्यंगात्मक प्रदर्शन, पीनोशे के काल में चिलो की महिलाओं द्वारा चर्च में वस्त्रों पर कढ़ाई के माध्यम से, बाल्टिमोर समुदाय द्वारा कार्डबोर्ड पर कलात्मक चित्रण के प्रदर्शन द्वारा तो कई बार अस्थियों के संग्रह द्वारा प्रतिकार किए गए। परन्तु महात्मा गांधी द्वारा किए गए प्रतिकार के अहिंसक उपाय कहीं अधिक प्रभावकारी रहे हैं।

ब्रिटिश राज में भारतीय समाज का आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक शोषण अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध्द से ही चल रहा था। लोगों में गुस्सा तो था पर प्रतिकार की संस्कृति या यों कहें कि क्षमता नहीं थी। यद्यपि 1857 में मेरठ के सिपाहियों द्वारा प्रत्यक्ष प्रतिकार हुआ, संघर्ष चला परंतु अंग्रेजी ताकत के समक्ष वह दब गया। उसके बाद तो अंग्रेजों के अत्याचार के विरुद्ध आवाज ही दब गई। उनके आतंक का इतना भय था कि लोग सीधी-सच्ची बात किसी से कहने में कतराते थे। अत्याचार सह लेना ही अपनी नियति समझते थे। शायद इसीलिए विष्णुभट्ट की आत्मकथा दो दशकों के निलहा साहबों द्वारा किसानों पर किया गया अत्याचार आज भी दिल दहला देने वाला है। ऐसा इसलिए होता रहा क्यों कि पीड़ितों ने या किसी अन्य ने प्रतिकार नहीं किया। दूसरी ओर यह भी सत्य है कि शक्ति और सत्ता से दमित इन लोगों में प्रतिकार की क्षमता का अभाव था। साथ ही प्रतिकार करने पर दमन का दबाव और भी बढ़ जाता था। राजकुमार शुक्ल के अथक प्रयासों से गांधीजी चम्पारण आये और किसानों की स्थिति देखकर न केवल द्रवित हुए अपितु उनकी स्थिति में सुधार के लिए समर्पित हो गये। ऐसे में महात्मा गांधी ने एक ऐसा उपाय सामने रखा जो ताकतवर को बिना बल प्रयोग के ही झुका दे। उन्हीं अभिनव प्रयोगों का यहां विश्लेषण किया जायगा जिनसे परिस्थितियों और तत्कालीन राजनीतिक परिवेश में सत्ताधारियों पर मनोवैज्ञानिक दबाव डालकर डरे सहमे लोगों में निर्भयता का संचार हुआ।

प्रतिकार के प्रच्छन्न प्रयोग

---

[29] सह आचार्य, स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग, राज नारायण कॉलेज, हाजीपुर (वैशाली)

दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी के अहिंसक प्रतिकार के प्रत्यक्ष प्रयोग सर्वविदित हैं। दक्षिण अफ्रीका में रह रहे भारतीय समुदाय के मानवाधिकारों के हनन के विरुद्ध गांधी जी ने जो अहिंसक पहल की उसने उनके अपने उपायों के प्रति विश्वास को दृढ़ कर दिया। गांधी जी के प्रथम अहिंसक प्रतिकार का प्रयास एसियाटिक रेजिस्टेशन बिल 1906 के विरूद्ध मुहिम के दौरान जोहान्सवर्ग में 1907 में हुआ था। यह विधेयक भारतीय व्यापारियों के क्षेत्रों को सीमित करने से संबंधित था। दक्षिण अफ्रीका में उनके प्रयासों में अहिंसक प्रतिकार सर्वविदित है। परंतु चंपारण में उनके प्रतिकार के प्रयोग प्रारंभ में अभिनव एवं प्रछन्न थे। बाद में सत्याग्रह के रूप में प्रत्यक्ष हुए। यहां हम चंपारण के उन अभिनव प्रयोगों की चर्चा कर रहे हैं जो प्रत्यक्ष तो नहीं थे पर अत्यंत प्रभावी सिद्ध हुए।

स्वच्छता के माध्यम से राजनीतिक चेतना का संचार

महात्मा गांधी ने प्रारंभ से ही स्वच्छता को एक महत्वपूर्ण उपकरण मान लिया था। उन्होंने इसे स्वराज के समान का महत्व दिया। उन्होंने कहा कि हमें गंदगी और गंदी आदतों से छुटकारा पाना चाहिए। अन्यथा स्वराज का हमारे लिए कोई महत्व नहीं होगा। उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान सफाई तथा कचरा प्रबंधन को महत्व दिया। सफाई के लगभग सभी पक्षों-तकनीकी, सामाजिक, आर्थिक, घरेलू तथा व्यक्तिगत-पर घ्यान दिया। स्वच्छता के विषय में गांधी जी की यह उक्ति प्रचलित थी-'स्वच्छता का स्थान भगवान के तुंरत बाद आता है '(Cleanliness is next to God)। अपने दक्षिण अफ्रीका प्रवास के दौरान वे भारतीये को गोरों की तरह स्वच्छता सुविधा नहीं मिलने के प्रति चिंतित रहे। उन्हों ने भारतीयों खासकर व्यापारी एवं मजदूर वर्गों को गोरों के समान स्वच्छता की सुविधाएं और साधन मुहैया कराये जाने की वकालत की। नताल विधान सभा (लेजिस्लेटिव एसेम्बली) को लिखे खुले पत्र में गांधी जी ने तर्क दिया था कि भारतीयों को उतना ही स्वच्छ रहने का हक है जितना कि यूरापियों को है। गांधी जी ने महसूस किया कि भारतीयों की आदतें स्वच्छतापूर्ण नहीं है। डर्बन में फैले प्लेग के दौरान वहां के अधिकारियों की सहायता में गांधी जी ने भरतीय बस्तियों में विरोध के बावजूद 'घर-घर निरीक्षण' की गतिविधि की। इतना ही नहीं उन्होंने लिखा कि जोहान्सवर्ग की नगरपालिका द्वारा भारतीयों की बस्तियों को स्थिति विशेष के नाम पर अनदेखा करने का षड्यंत्र किया गया है। "

भारत लौटने के बाद उन्होंने स्वच्छता के मुद्दे को अनेक मौकों पर उठाया। उन्होंने कहा कि हमारी दो प्रमुख समस्याएं हैं-अस्वच्छता और अस्पृश्यता। अपने शान्ति निकेतन प्रवास के दौरान, हरिद्वार कुंभ मेला, काशी विश्वनाथ मंदिर आदि भ्रमण के दौरान भी उन्हों ने स्वच्छता का मुद्दा उठाया। उन्होंने पाया कि रेलवे स्टेशनों पर आम यात्रियों के लिए साफ-सफाई की कुव्यवस्था थी। ऐसे कई उदाहरण हैं जिनमें गांधी जी ने स्वच्छता के माघ्यम से समानता के मुद्दे को महत्व दिया प्रकाश में लाया। यहां चंपारण सत्याग्रह के दौरान गांधी जी द्वारा स्वच्छता कार्यक्रमों का उल्लेख आवश्यक है जिसके माघ्यम से उन्हों ने चंपारण के किसानों के बीच 'स्व' की चेतना का संचार किया। गावों में गंदगी और उसके कारण उत्पन्न रोगों के प्रति लागों को जागरूक किया। इस अभियान को उन्होंने सर्वोच्च प्रथमिकता दी और स्वयं ही सफाई में लग गए। महिलाओं के स्नान नहीं करने को भी संज्ञान में लिया। उन्हों ने हाथ से मल सफाई के कार्य का भी खुल कर विरोध किया और घरों में ऐसे शौचालयों के निर्माण

पर बल दिया ताकि भंगी का कार्य करने वाले इससे छुटकारा पा सकें तथा वे भी मानव सुलभ सम्मानजनक जीवन जी सकें। ये गतिविधियां कहीं से राजनीतिक नहीं दिखतीं परन्तु इनसे राजनीतिक चेतना का संचार होता है तथा ये अपने अच्छे जीवन हेतु प्रतिकार का मार्ग प्रशस्त करते हैं। चम्पारण के ग्रमीणों के बीच इससे अपने जीवन के प्रति एक समवेदना का संचार हुआ।

बयान लेखन के राजनीतिक प्रभाव

बीसवीं सदी में चंपारण के किसानों की दुःस्थिति सर्वविदित है। 'निलहा साहबों के अत्याचार को अंग्रेज प्रशासक भी प्रश्रय देते थे। परिणामस्वरूप किसान भी भयभीत रहते थे। तब विगत सौ सालों से अंग्रेज नील की खेती करते करवाते आ रहे थे। वास्तव में बेतिया राज ने निलहा साहबों की मदद से इंगलैंड से कर्ज लिया था जिसको चुकता करने के लिए निलहों को वेतिया राज के गांवों पर टैनेंसी एक्ट के तहत कब्जा दे दिया गया था और मुकर्ररी हक दे दिया गया था जिसके अधीन वे मनमानी कर किसानों का न केवल शोषण करते थे अपितु जानवरों से भी बदतर व्यवहार और अत्याचार करते थे। यहां तक कि उनके घर की औरतों तक का शोषण करते थे। उपर से अंतरराष्ट्रीय बाजार में नील की कीमत घटने से उसकी भरपाई हेतु वे किसानों का और अधिक शोषण करने लगे। वे जबरन जमीनों का पट्टा लिखवा लेते, उनसे बेगारी करवाते आदि। राज कुमार शुक्ल के बुलावे पर जब गांधी जी चंपारण गये तो अंग्रेजी अफसरों ने उनका विरोध किया तथा उन्हे भी गिरफ्तार कर लिया। उन दिनों चम्पारण के किसानों से गांधी जी का काफी लगाव हो गया था। गांधी जी पर मुकदमा चलाया गया। अदालत में सुनवाई के दौरान लोग कोर्ट में जमा हो गए। गांधी जी ने अपनी वकालत की और उनकी रिहाई ही नहीं हुई बल्कि उन्हें किसानों की स्थिति की जांच करने की सहमति भी मिल गई। गांधी जी ने अपने सहयोगियों को पीड़ित किसानों का बयान लिखने पर लगा दिया। करीब पच्चीस हजार किसानों का बयान लिखा गया। बयान को अंग्रेजी में कर लिखा जाने लगा। डॉ. राजेंद्र प्रसाद भी इस काम में लगे थे। डॉ. राजेंद्र प्रसाद लिखते हैं, "हम लोगों की जांच का नतीजा यह हुआ कि चंपारण के मुकामी अफसर बहुत घबराने लगे। इनमें से कितनों के दिल पर यह असर हुआ कि चंपारण से अग्रेजी राज उठा जा रहा है-लोग यह समझने लगे हैं कि गांधी जी ही सबसे बड़े अफसर हैं, जिसके सामने जिला कलक्टर और मजिस्ट्रेट के खिलाफ भी शिकायत की जा सकती है-नीलबरों का रौब तो उठ ही गया, हम पर से भी अफसरों का रौब उठा जा रहा है। इसलिए घबरा कर उन लोगों ने प्रांतीय सरकार के पास रिपोर्ट भेजी। ... प्रांतीय सरकार ने गांधी जी को अपने एक मेम्बर से भेंट करने के लिए लिखा। वह पटना में आकर उनसे मिले। उस वक्त तक जितनी शिकायतें आ गई थीं, सबका एक खुलासा ब्योरा बनाकर उनको दिया। सरकारी मेम्बर ने उसे गवर्नमेंट के पास पेश किया उसपर विचार होने लगा।" डॉ. राजेंद्र प्रसाद आगे लिखते हैं, "हम लोगों के लिए गांधी जी का यह तरीका एक बिल्कुल नया तरीका था।" स्थिति ऐसी हो गई कि तत्कालीन अफसर अब पुलिस के कर्मचारियों को जांचकर्ता (बयान लिखने वालों) की निगरानी करने के लिए लगा दिया जाता था। बयान लिखने वालों को यह (नागवार गुजरता था) और पुलिस इन्सपेक्टर को हटने के लिए कह देते। इतना हीं नहीं सरकार ने इस रिपोर्ट पर कार्रवाई की। बिहार के गवर्नर ने गांधीजी को रांची बुलाया और विचार-विमर्श के बाद उन शिकायतों की जांच करने के लिए गवर्नर द्वारा एक कमीशन नियुक्त किया गया

जिसमें गांधी जी को भी सदस्य बनाया गया। राजेंद्र बाबू लिखते हैं, "कमीशन की नियुक्ति हो जाने पर, महात्माजी की आज्ञानुसार, रैयतों की तरफ से कागज पेश हुए थे, उनको खूब देखकर और दूसरे सबूत इकट्ठे किए, हम लोगों ने कमीशन के लिए एक बयान तैयार किया।" समस्या का पूरी तरह से निवारण तो नहीं हुआ पर बयान लेखन ने लोगों में हिम्मत भर दी और अफसरों में दहशत। इस अभिनव प्रयोग में कहीं भी कोई हिंसात्मक कार्रवाई नहीं हुई अपितु इसका प्रभाव गहरा पड़ा।

स्वच्छता, साक्षरता तथा प्रार्थना सभा के माध्यम से महिलाओं में राजनीतिक चेतना

गांधी जी ने चंपारण के गावों में सर्वप्रथम स्वच्छता (जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है) तत्पश्चात् साक्षरता से संबंधित गतिविधियां शुरू करवाई। गांधी जी ने पहली बार 30 सितम्बर 1917 में भितिहरवा गांव में बुनियादी विद्यालय की स्थापना की। नवम्बर 1917 में जिला मुख्यालय से 30 किलोमीटर पूर्व की ओर बंगहरवा लखनसेन गांव में बुनियादी विद्यालय की स्थापना की गई। 17 जनवरी 1918 को इस जिले में पश्चिम चंपारण और मधुबन में संत राउत की मदद से भितिहरवा में दो और बुनियादी विद्यालय स्थापित किए गए। इन विद्यालयों की स्थापना के पीछे का मूल उद्देश्य निरक्षरता से लड़कर उनके बीच जागरूकता पैदा करना था। इस मुहिम में डॉ. राजेंद्र प्रसाद, डॉ. अनुग्रह नारायण सिन्हा और ब्रजकिशोर प्रसाद के अलावा आचार्य कृपलानी, रामनवमी प्रसाद और बाद में जवाहरलाल नेहरू समेत पूरे भारत के कई युवा राष्ट्रवादी जुड़ गए। इस दौरान गांधी जी के नेतृत्व में अनुभवी समर्थकों और क्षेत्र के नये स्वयंसेवकों ने भी खुलकर हिस्सा लिया। प्रतिष्ठित वकीलों के दल में डॉ. राजेंद्र प्रसाद, डॉ. अनुग्रह नारायण सिन्हा और बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद जैसे कर्मठ सहयोगी सम्मिलित थे जिन्होंने गांवों का सर्वेक्षण एवं विस्तृत अध्ययन किया। उन्होंने बताया कि निलहों के अत्याचार, अपमानजनक और अमानवीय व्यवहार के कारण ही गांवों की दुःस्थिति हो गई। गांधी जी ने प्रत्यक्ष विरोधी गतिविधियां करने की बजाए ग्रामीणों में आत्मविश्वास विकसित करने के लिए गांवों की सफाई, स्कूलों और अस्पतालों के निर्माण की शुरूआत की और गांवों से पर्दा, अस्पृश्यता और महिलाओं के दमन जैसी कुरीतियों को दूर करने के लिए महिलाओं को प्रोत्साहित किया। प्रार्थना सभाओं से महिलाओं की भागीदारी को प्रारंभ किया परंतु उन्हें अफसोस तब हुआ जब महिलाओं की भागीदारी आते अल्प पाई। इसकी पूछताछ करने पर उन्हें पता चला कि वहां की अधिकांश महिलाओं के पास एक ही साड़ी थी जिसके चलते वे नहीं आ पायीं थी। गांधी जी ने पीड़ित मन से यह संकल्प लिया कि जब तक सभी महिलाओं के पास पर्याप्त वस्त्र नहीं हो जाते तबतक वे भी एक ही वस्त्र धारण करेंगें। उन्हों ने संभ्रांत घर की महिलाओं को विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने तथा जो सक्षम थीं उन्हें शिक्षण कार्य के लिए प्रेरित किया। कस्तूरबा को भी वहां बुला लिया जिसने अंतर्मन से गांधी जी का साथ दिया। बीसवीं सदी में महिलाओं को इन्हीं प्रार्थना सभाओं, साफ सफाई गतिविधियों तथा शिक्षणादि कार्यों में प्रेरित कर उनमें राजनीतिक भागीदारी की क्षमता का मार्ग प्रशस्त किया। डॉ. सुलभ ने लिखा है कि 'भले हीं चंपारण-आंदोलन में महिलाओं की सीधी भागीदारी कम रही परन्तु परोक्ष रूप में उनकी प्रेरणा ने स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं को प्राण शक्ति और दिव्य उर्जा प्रदान की। कस्तूरबा से प्रेरणा और प्रशिक्षण पाकर अनेक महिलाओं ने हस्तकरघा तथा स्वच्छता व सफाई के प्रचार प्रसार और महिलाओं की जागृति मे महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभाई। '

पत्राचार द्वारा प्रभावी प्रतिकार

महात्मा गांधी ने अंग्रेज पदाधिकारियों को लिखे पत्रों को भी प्रतिकार का सशक्त माध्यम बनाया। 12 अप्रैल 1917 को गांधी जी ने तिरहुत प्रमंडल के आयुक्त एल.एफ. मोर्सहेड को पत्र लिखकर निलहों के भारतीयों के प्रति बुरे वर्ताव की जांच करने की अनुमति एवं स्थानीय प्रशासन से सहयोग हेतु मिलने की अनुमति मांगी। पत्र में उन्होंने लिखा कि "मैं अपना काम और सहयोग से करना चाहता हूं बशर्ते यदि मैं स्थानीय प्रशासन से सुरक्षित हो जाऊं। मैं आपके प्रति आभारी रहूंगा यदि आप कृपया मुझसे साक्षात्कार के लिए अनुमति दें ताकि आपके समक्ष मैं जांच के उद्देश्यों को रख सकूं और इस काम में स्थानीय प्रशासन का सहयोग मिलने के बारे में जान सकूं।" अपने पाक्षिक प्रतिवेदन में आयुक्त ने इस बात की चर्चा की तथा 13 अप्रैल को आयुक्त ने अपनी टिप्पणी में लिखा कि गांधी जी से जांच की किसी सार्वजनिक मांग का सबूत देने को कहा गया। मौके पर उपस्थित मिस्टर वेस्टन ने गांधी जी के हस्तक्षेप से लाभ पर प्रश्न उठाया और कहा कि इससे निलहों, रैयतों ओर पदाधिकारियों के बीच पक्षपात पूर्ण संघर्ष हो सकता है। इसपर पुनः गांधीजी ने मोर्सहेड को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होने कहा कि शायद मैं अपने मिशन के बारे में बताने में असफल रहा। मेरा मिशन सम्मान के साथ शांति बनाए रखना है। फिरभी तिरहुत आयुक्त ने चंपारण जिलाधिकारी को गांधी जी के कारण अशांति की आशंका पर भारतीय क्रिमिनल प्रोसीजर कोड की धारा 144 का उपयोग करने का निदेश दिया।

गांधी जी ने 16 अप्रैल 1917 को जिलाधिकारी डब्लू. बी. हेकोच को पत्र लिखा कि "मुझे दुःख है कि आपने धारा 144 के तहत मुझपर नोटिस जारी किया और मुझे यह भी दुःख है कि प्रमंडल आयुक्त ने मेरी बातों का पुरी तरह से भ्रांतिपूर्ण अर्थ लगाया। अपने सार्वजनिक उत्तरदायित्व के आलोक में मैं अपना कर्तव्य समझता हूं कि मैं बता दूं कि मैं जिला छोड़कर जाने में असमर्थ हूं और इसके लिए इस अवज्ञा के लिए अधिकारियों द्वारा जो भी दंड दिया जायगा उसे स्वीकार करूंगा। मैं आयुक्त की उन बातों का जोरदार खंडन करता हूं जिनमें अशांति (या आंदोलन) की आशंका जताई गई है। मेरी यह इच्छा सरल एवं शुद्ध रूप से स्थिति का ज्ञान अर्जित करने के लिए है और जब तक मुझे स्वतंत्र छोड़ा जायगा तब तक मैं इस बात से (अधिकारियों को) संतुष्ट (आश्वस्त) रखूँगा।" तिरहुत आयुक्त ने बिहार और उड़ीसा सरकार के मुख्य सचिव को लिखे पत्र में कहा कि गांधीजी का लक्ष्य केवल जानकारी लेना नहीं अपितु कांग्रेस में प्रस्ताव रखने के लिए साक्ष्य जुटाना है इसलिए उनके विरूद्ध जिलाधिकारी को धारा 144 लगाने का आदेश दिया गया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह विदित होता है कि गांधी जी ने अंग्रजी शासकों के विरूद्ध प्रतिकार के ऐसी युक्तियों का उपयोग किया जो प्रछन्न होकर भी अत्यंत प्रभावकारी रहे। उनके चलते ब्रिटिश सरकार निरूत्तर हो जाती और गांधी जी अपने लक्ष्यों में सफल हो जाते। ऐसी युक्तियों में स्वच्छता, साक्षरता, एवं प्रार्थना सभा, सर्वेक्षण एवं बयान-लेखन तथा पत्राचार अत्यंत प्रभावी उपाय थे। इन युक्तियों के उपयोग से अंग्रेज अफसरों को सीधा टकराव का अवसर नहीं मिलता था और लोगों में राजनीतिक चेतना का संचार भी होता था।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. इस विवरण के लिए निम्न वेबसाइट देखें https://www.forbes.com/sites/the-herero-nama-genocide.../
2. मधुकर उपाध्याय (प्रस्तुत), विष्णुभट्ट की आत्मकथा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007
3. नील की खेती कराने वाले उन अंग्रेजों को, जो बेतिया राज से जमीनदारी का अधिकार लेकर किसानों के साथ अत्याचार एवं शोषणपूर्ण व्यवहार करते थे, उन्हें निलहा साहेब कहा जाता है।
4. निम्न वेबसाइट को देखे https://www.sahistory.org.za/article/Gandhi-and-passive-resistance-campaign-1907-1914
5. भारत सरकार, कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, पब्लिकेशन्स डिविजन, नई दिल्ली, जिल्द सं 14 पृ 56-58
6. गांधी जी के स्वच्छता संबंधी विचारों एवं गतिविधियों के लिए निम्न वेबसाइट देखें https://www.mkGandhi .org/articles/cleanliness-sanitation-Gandhi an-movement-swachh-bharat-abhiyan.html
7. भारत सरकार, कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, पब्लिकेशन्स डिविजन, नई दिल्ली, जिल्द सं 1 पृ 170-85
8. भारत सरकार, कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, पब्लिकेशन्स डिविजन, नई दिल्ली, जिल्द सं 39 पृ 230-31
9. भारत सरकार, कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, पब्लिकेशन्स डिविजन, नई दिल्ली, जिल्द सं 16 पृ 271-73
10. राजेन्द्र प्रसाद, "शोषण का क्षेत्र चंपारण", रजी अहमद (सं) चंपारण सत्याग्रह शताब्दी समारोह की सुखद यादें 1917-2018, प्रासंगिकता विशेषांक, गांधी संग्रहालय, पटना, 2018 पृ. 7-12
11. देखें वेबसाईट http://naukarshahi .com/चंपारण की महिलाओं की दशा
12. यहां हमारा लक्ष्य इन पत्रों में वर्णित तथ्यों का विवरण देना नहीं है अपितु ब्रिटिश पदाधिकारियों पर उन पत्रों के प्रभावों पर प्रकाश डालना है। इन पत्रों के संकलन के लिए देखें बिजय कुमार, "ए लॉ एबाइडिंग लॉ ब्रेकर इन चंपारणः सम इम्पॉर्टेंट लेटर्स", रजी अहमद (सं)चंपारण सत्याग्रह शताब्दी समारोह की सुखद यादें 1917-2018: प्रासंगिकता विशेषांक, गांधी संग्रहालय, पटना, 2018 पृ. 66-70

***

भारतीय राजनीतिः गांधी वादी परिप्रेक्ष्य

डा. नियाज अहमद अंसारी[30]

डा. सत्या सोनी[31]

गांधी के राजनीतिक दर्शन में नैतिकता, आदर्शवादिता व आध्यात्मिकता को सर्वाधिक महत्व है, इसलिए यह दर्शन स्वभाविक रूप से सिद्धान्त सम्पन्न होता है। गांधी दर्शन में आध्यात्मिक व नैतिक उन्नति और साध्य व साधन की पवित्रता बनाये रखने का सर्वाधिक आग्रह किया है। गांधी के सिद्धांत सम्पन्न राजनीतिक विचारों का विकास राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय विचारकों के दर्शन से प्रमानित हुआ है। प्रत्येक अच्छे विचार ने उनके जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। गांधी ने अपने व्यक्तित्व में उस सत्य को संजोया जो उनके विवेक ने स्वीकार किया। यही कारण हैं कि उन्होने अपने दर्शन को गांधीवाद नाम न दिये जाने का आग्रह किया है।

पट्टाभि सीतारमैया ने लिखा है, "गांधीवाद जैसी कोई वस्तु नहीं है। गांधीजी अपने पीछे कोई सम्प्रदाय छोड़कर नहीं जाना चाहते थे। उनका दर्शन कुछ मतों, नियमों या निषेधों का समूह न होकर एक राजनीतिक जीवन शैली है। उन्होनें अपने ढंग से केवल पुरातन धारणाओं की पुनर्व्याख्या करते हुए ही उनको दैनिक जीवन की समस्याओं के समाधान के रूप में प्रस्तुत करने की कोशिश की है। "[1] उनके आदर्श राज्य में नैतिक व आत्मानुशासित व्यक्ति के लिये विराट स्वरूप मान्य था। यही वजह है कि कालान्तर में मानवीयता की स्थापना करना ही उनकी समस्त गतिविधियों एवं राजनीति का प्रमुख तत्व सिद्ध हुआ है। सत्य व अहिंसा से स्वशासित तथा धार्मिक चेतना से अनुप्रमाणित गांधी जी का राजनीतिक दर्शन ' सर्वजन हिताय एवं सर्वजन सुखाय ' की भावना का पोषक सिद्ध हुआ। इस तरह कहा जा सकता है कि गांधी जी का राजनीतिक दर्शन धार्मिक व नैतिक सिद्धान्तों का सार है।

गांधी के राजनीतिक दर्शन में व्याप्त उनकी सिद्धान्त सम्पन्न राजनीति के महत्वपूर्ण सिद्धांतो की विवेचना राष्ट्रीय समस्याओं के समाधानार्थ अग्रलिखित शीर्षकों के अंतर्गत करना समीचीन होगा-

1. स्वराज्य से रामराज्य

गांधी मानव के सर्वान्गीण विकास के लिये स्वराज्य व राष्ट्र के लिये रामराज्य जैसे स्वरूप को ही स्वीकार करते थे। वह स्वराज्य को पवित्र वैदिक शब्द मानते थे जो आत्मसंयम व आत्मानुशासन के मार्ग पर ले जाता है। उन्हें निरंकुश आजादी या स्वच्छन्दता का बोध करानेवाला स्वराज्य मान्य नहीं था, वरन् उनका स्वराज्य आन्तरिक शक्तियों पर निर्भर करता था जो लोगों को कठिनाइयों से जूझने का साहस दे सके। गांधी कहते थे " जब स्वराज्य में थोड़े लोगों के द्वारा सत्ता का दुरूपयोग किया जा रहा

---

[30] सहा. प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, राजकीय महाविद्यालय. सिहावल, जिला-सीधी (म. प्र.)

[31] अतिथि प्राध्यापक : हिन्दी, शासकीय पं. दीनदयाल उपाध्याय अग्रणी महाविद्यालय, सागर (म. प्र.)

हो तो तब सब लोगों के द्वारा उसका प्रतिकार करने की क्षमता प्राप्त करके उसे हासिल किया जा सकता है।" गांधी जी ऐसा स्वराज्य चाहते थे जिसमें मानव का अधिकाधिक हित हो, आत्मानुशासन इंद्रियगत हो, नैतिक और धार्मिक हो। वे मनुष्य की आत्माभिव्यक्ति को उसका जन्मसिद्ध अधिकार मानते थे जो लोगों को धर्म या मानवीय राज्य की ओर प्रवृत्त करता है। गांधी स्वराज्य का अर्थ व्यक्त करते हुये कहते हैं" स्वराज्य वही है जो सबके दुख में भाग लेने की भावना का निर्माण करता हो।"[3] गांधी जी सिर्फ स्वराज्य नहीं वरन् भारतीयों की भौतिक व आध्यात्मिक उन्नति के लिये रामराज्य का भी सपना देखते थे। राम उनके लिये मात्र दशरथपुत्र ही नहीं, वरन् न्याय, मर्यादा, प्रेम व सद्भाव को जन्म देनेवाले कण-कण में व्याप्त आदर्श व्यक्तित्व थे। वस्तुतः गांधीजी मानते थे कि जहाँ लोग राज्य पर कम अश्रित होकर नैतिक व धार्मिक आचरण, सत्य व अहिंसा का बल पाकर आत्मानुशासित हों वहाँ ही रामराज्य साकार होता है।

2. लोकतंत्र का स्वरूप

लोकतंत्र का अर्थ ही है लोगों का शासन। सच्चे लोकतंत्र पर गांधी जी अटूट श्रद्धा रखते थे। वे संयमित व शिक्षित लोकतंत्र के समर्थक थे। वे कहते थे" लोकतंत्र सारभूत अर्थ में कला और विज्ञान दोनों होना चाहिये जो राष्ट्र की प्रजा के समस्त वर्गो की सम्पूर्ण शारीरिक, आर्थिक तथा आध्यात्मिक साधन सम्पति का उपयोग से लोक कल्याण की सिद्धि कर सके।"[4] लोकतंत्र की सफलता के लिये वे अनुशासन को सर्वाधिक महत्त्व देते थे, साथ ही सच्चे लोकतंत्र की स्थापना के लिये सत्य व अहिंसा को भी अपरिहार्य मानते थे, क्योंकि हिंसा से दमनकारी व निरंकुश राष्ट्र का ही निर्माण किया जा सकता है। हिंसा आत्मनिर्भरता व आत्मोन्नति के प्रयास को बाधित करती है। गांधी के शब्दों में " सच्ची लोकसत्ता या जनता का स्वराज्य कभी भी असत्यरूपों या हिंसक साधनों से नहीं आ सकता।" [5]

वह जनतंत्रीय सरकार की तुलना छतरी से करते थे जिसका कम से कम उपयोग किया जाता है। वह निरंकुश व अत्याचारी सरकार को जनता द्वारा उखाड़ दिये जाने का आह्वान करते थे। लोकतंत्र की शुरूआत उन्हें ग्रामस्तर से किया जाना स्वीकार था, क्योंकि ऊपर के स्तर का लोकतंत्र उन्हें भीड़तंत्र की तरह स्वीकार नहीं था। वह कहते है, " हिंदुस्तान सच्चा लोकतंत्र गढ़ने का प्रयत्न कर रहा है, ऐसा लोकतंत्र जिसमें हिंसा के लिये कोई स्थान नहीं होगा। हमारा हथियार सत्याग्रह है तथा उसका व्यक्त स्वरूप चरखा है, ग्राम उद्योग के जरिये प्राथमिक शिक्षा प्रणाली, अस्पृश्यता निवारण, मद्यनिषेध तथा अहिंसक तरीके से मजदूरों का संगठन है।" [6]

3. राजनीति का आध्यात्मीकरण

गांधी का राजनीतिक दर्शन नैतिक आदर्श से परिपूर्ण था। उनके राजनीतिक विचारों में धर्म का समुचित समावेश था। वह मानते थे कि धर्म ही किसी मनुष्य को नैतिक आचार की शिक्षा देता है और राजनीति को भी नैतिक आधार प्रदान करता है। वह कहते थे" जो लोग यह कहते हैं कि धर्म का राजनीति से कोई संबंध नहीं है, वे यह जानते ही नहीं की धर्म के मायने क्या हैं ? धर्म से संबंध न रखनेवाली राजनीति कूड़ा-करकट है।"[7] वह कहते थे कि राजनीति ही व्यक्ति के विकास, राष्ट्र की उन्नति एवं अंतरराष्ट्रीय संबंधों को गढ़ने में अहम भूमिका निभाती है। इसलिये राजनीति को अपने दायित्वों की पूर्ति में नैतिक व

आध्यात्मिक होना चाहिये। ऐसा धर्म जो शुद्ध व नैतिक राजनीति का विरोध करता हो, वह धर्म नहीं हो सकता। वास्तव में गांधी जी वही राजनीति को स्वीकारते थे जो धर्म सम्मत हो, आध्यात्मिक हो तथा मानव की समस्त क्रियाओं को नैतिक आधार देने हेतु तत्पर हो। उनके लिये राज्य का अन्तिम लक्ष्य व्यक्तियों का विकास एवं विश्व का कल्याण था। इस अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये वह सत्य, अहिंसा, रामराज्य, आध्यात्मिक एवं आत्मानुशासित नागरिकों को आवश्यक मानते थे। वह दलदली राजनीति में उतरकर इसका परिष्कार करना आश्यक मानते थे। उन्होने 12 मई, 1920 को प्रकाशित अपने साप्ताहिक पत्र ' यंग इंडिया ' में लिखा था, "आज राजनीति ने हमें नागपाश की तरह जकड़ रखा है जिससे कोई कितना भी चेष्टा क्यों न करें छूट नहीं सकता। मैं इस नाग से जूझना चाहता हूँ। साथ ही में राजनीति में धर्म का प्रवेश कराने की चेष्टा भी कर रहा हूँ।"

4. धर्मनिरपेक्ष राज्य

धर्मनिरपेक्ष राज्य से गांधी का आशय धर्म से जुड़ा राष्ट्र मात्र नहीं, वरन् समस्त धर्मो को समादर देनेवाला राष्ट्र हो जिसमें समस्त धर्मो की नैतिक शिक्षाओं को ग्रहण करने की शक्ति हो। इसलिये गांधी जी राज्य को एक ऐसा बगीचा मानते थे जहाँ सभी धर्मो के फूल खिल सकें। गांधी के धर्मनिरपेक्ष स्वरूप को स्पष्ट करते हुये वी. पी. वर्मा कहते हैं, " गांधी के धर्म निरपेक्षवाद को नैतिक निरपेक्षतावाद की संज्ञा दी जा सकती है।" [8] गांधी किसी भी राष्ट्र का एक ही धर्म मानते थे, वह था-नैतिक उन्नयन व सर्वोदय का अनुपालन। इन दोनों के बिना राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता। राष्ट्र की धर्मनिरपेक्षता को आवश्यक मानते हुये गांधी जी कहते है, "बेशक राज्य को धर्मनिरपेक्ष होना चाहिये। उसमें हर नागरिक को बिना किसी भी प्रकार की रुकावट के अपना धर्म मानने का हक होना चाहिये, जब तक वह देश के आम कानून को मानता है।" [9]

उल्लेखनीय है कि 1920 के दशक में गांधी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अग्रणी नेता के रूप में उभरे तो यह अच्छी तरह अनुभव कर लिया था कि शक्तिशाली ब्रिटिश राज के विरूद्ध संघर्ष छेड़ने के लिए विभिन्न पंथों को माननेवाले लोगों के बीच एकता होना जरूरी है। इसलिए उन्होने असहयोग एवं खिलाफत आंदोलनों के अवसर पर पहली बार हिन्दू और मुस्लिम सम्प्रदायों को अपनी स्पष्ट धर्मनिरपेक्षता के द्वारा जोड़ने का भरसक प्रयत्न किया। [10]

जब गांधी राजनीति में धर्म के प्रवेश की बात करते थे तो उनका आशय यह रहता था कि राज्य में रहनेवाले हर नागरिक को बिना किसी बाधा के अपना धर्म पालन करने का पूर्ण अधिकार हो। इस संबंध में राज्य किसी भी धर्म का संरक्षण न करे और ना ही किसी धर्म के विकास में बाधक बने। संभवतः गांधी जी की धर्मनिरपेक्षता की इस व्यापक धारणा को दृष्टिगत रखकर ही हमारे संविधान के रचनाकारों ने मौलिक अधिकारों के अंतर्गत अनुच्छेद 25 से 28 तक धार्मिक स्वतंत्रताओं का प्रावधान किया है।

5. सत्ता का विकेन्द्रीकरण

विकेन्द्रीकरण को गांधी समस्तरीकरण मानते थे। उनका मानना था कि सत्ता या साधन का प्रत्येक तक समान बँटवारा, विकेन्द्रीकरण आत्मानुशासन व आत्मनिरर्भरता के विकास की प्रक्रिया को तेज करता है। गांधी जी प्रत्येक क्षेत्र में विकेन्द्रीकरण चाहते थे। उनकी नजर में विकेन्द्रित समाज ही आदर्श समाज हो

सकता है। वह कहते थे कि केन्द्रीयकरण से समाज की अहिंसक व्यवस्थायें मेल नहीं खा सकती। वह चाहते थे कि राष्ट्र की सफलता के लिये ग्राम स्वराज्य की अवधारणा को सफलता पूर्वक लागू किया जाये। उन्होने सन् 1931 से 1942 के मध्य ग्राम पंचायतों के लिए प्रत्यक्ष चुनाव का समर्थन किया। उनके मतानुसार"सच्ची लोकशाही केन्द्र में बैठे हुये बीस आदमी नहीं चला सकते। वह तो नीचे से हर एक गांव के लोगों द्वारा चलाई जानी चाहिये। भारत में सात लाख गावों का शासन उनके निवासियों की इच्छानुसार होना चाहिए।"[11]

6. अनुशासन की महत्ता

गांधीजी का मानना था कि जब राजनेता व लोकसेवक सर्वत्र अनुशासनपूर्ण व्यवहार करेंगे तो निश्चित ही जनता भी अनुशासन में रहने को आकर्षित होगी। मानवीय जीवन में आजादी एवं अनुशासन की महत्ता प्रतिपादित करते हुए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा है-"अनुशासन केवल फौज के लिए ही नहीं, बल्कि जीवन के हर क्षेत्र के लिए भी आवश्यक है, क्योंकि ये सृष्टि ही अनुशासन पर चलती है। जिस प्रकार सूर्य, चन्द्रमां, तारे, समुद्र, पशु-पक्षी, ग्रह-नक्षत्र आदि अनुशासन के पथ पर चलते हुए अपनी-अपनी मर्यादा पर कायम रहते हैं, उसी प्रकार मनुष्य को भी अपने सभी कामों में अनुशासन का पालन नियमित रूप से करना चाहिए।" [12]

संभवतः गांधी दर्शन में अनुशासन की इसी महत्ता को स्वीकारते हुए दक्षेस देशों ने सामाजिक, आर्थिक व प्रशासनिक बुराईयों व कमियों से छुटकारा पाने हेतु वर्ष 2008 को 'अच्छे शासन का वर्ष' (ईयर ऑफ गुड गवर्नेंस) के रूप में मनाया था।[13] इससे स्वतः सिद्ध होता है कि क्षेत्रफल व जनसंख्या की दृष्टि से एशिया के इस सबसे बड़े अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रीय संगठन ने मुक्तकंठ से स्वीकार कर लिया है कि इन देशों के प्रशासन व समाजों में गंभीर दोष व कमियां विद्यमान हैं जिन्हें आत्मानुशासन धारण किये बिना ये देश वर्तमान परिस्थितियों से तालमेल नहीं बैठा सके हैं। अतः स्वतंत्रता का उपभोग करनेवालों को अनुशासन को भी अपनाना चाहिए।

अतः अनुशासनबद्ध नागरिकों व प्रशासकों के कंधों पर ही राष्ट्रोत्थान की जिम्मेदारी डाली जा सकती है।

7. मातृभाषा

यदि भारत की स्वतंत्रता की 71 वीं वर्षगांठ मनाते समय भी हम भारतवासियों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में सैद्धांतिक कलेवर से बाहर निकालकर व्यवहारिक धरातल पर आसीन नहीं किया तो हम सच्चे अर्थों में स्वतंत्र नहीं कहलायेंगे, जैसाकि महात्मा गाँधी कहते हैं, "कोई देश सच्चे अर्थ मे तब तक स्वतंत्र नहीं है, जब तक वह अपनी राष्ट्रभाषा में नहीं बोलता।"[14] उल्लेखनीय है कि स्वतंत्रता आंदोलन के समय सैंकड़ों विद्वानों एवं समाज सुधारकों ने हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा बनाने पर अत्यधिक बल दिया था। पुरूषोत्तम दास टंडन ने तो इसके लिए 'राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलनों' के आयोजनों की शुरूआत भी कर दी थी।

वास्तव में गांधी जी अपनी मातृभाषा गुजराती से अत्यधिक प्रेम करते हुए भी वह सदैव हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा बनाने के अग्रणी समर्थक रहे हैं। वह भली-भांति जानते थे कि हिन्दी ही भारतवर्ष में सर्वाधिक क्षेत्र में बोली एवं समझी जाती है और हिन्दी रूपी धागे में अन्य भाषाओं और बोलियों रूपी फूलों को

गूंथा जा सकता है। ये दुर्भाग्यपूर्ण है कि हमारे कई उच्चशिक्षित भाई राष्ट्रभाषा बनने योग्य हिन्दी के स्थान पर विदेशी भाषा और गुलामी की प्रतीक अंग्रेजी के प्रचार-प्रसार करके अनैतिक कार्य कर रहे हैं। गांधी का हिन्दी के प्रति विशेष लगाव एवं समर्पण को ध्यान में रखकर भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 में यह प्रावधान किया गया है कि हिन्दी के विकास एवं प्रचार के लिए आवश्यक कदम उठाये जाएं।[15] इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु **'वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली'** और इसके अधीन विभिन्न राज्यों में कार्यरत हिन्दी ग्रंथ अकादमी देशभर में शिक्षा के क्षेत्र में शब्दावलियों एवं शब्दकोषों का प्रकाशन करते हुए निःशुल्क या नाममात्र मूल्य में बिक्री भी कर रहीं हैं।

8. अराजकता का सिद्धान्त

गांधी के राजनीतिक दर्शन में दार्शनिक अराजकतावाद भी कुछ अंश में विद्यमान रहा है। वे मूलतः दार्शनिक अराजकतावादी थें। वह टॉलस्टाय की तरह राज्य को वर्ग संगठन न मानकर हिंसा का केन्द्रीय व संगठित रूप मानते थे। वह राज्यविहीन समाज की कल्पना को साकार होते देखना चाहते थे जो राज्याश्रित नहीं, बल्कि आत्मानुशासित व स्वआश्रित हो। वह स्वयं को अराजकतावादी इस सन्दर्भ में मानते थे कि अराजकतावादी कभी भी राज्य की यथास्थिति से संतोष नहीं करता वरन् आदर्श लोकतंत्रवादी समाज की स्थापना का प्रयास करता है।

वह कहते थे "जब अराजकता की स्थिति निर्मित हो जाती है तो ऐसी स्थिति में हर एक आदमी अपने आप में राजा होता है। वह ऐसे ढंग से अपने पर शासन करता है कि अपने पड़ोसियों के लिये बाधक नहीं बनता। कई बार जीवन में आदर्श की पूरी सिद्धि कभी नहीं होती। इसलिये थोरो ने कहा है कि "जो सबसे कम शासन करे, वही उत्तम सरकार है।"[16] राज्य अधिक से अधिक अपनी बात मनवाने के लिये सेना, पुलिस, जेल और वकील के द्वारा हिंसा को कार्यरूप देता है। वास्तव में इन सबका कार्य शांति स्थापना होना चाहिये। गांधी जी के लिये लोकतंत्रवादी समाज में राजनीतिक सत्ता साध्य नहीं होनी चाहिये, वरन् समाज व व्यक्ति के लिये अपनी हालत सुधार सकने का साधन मात्र होनी चाहिये। चूंकि राज्य व्यक्तियों के लिये अस्तित्व में आता है तो उसमें सदैव व्यक्ति केन्द्रित एवं कल्याणकारी होना चाहिये, अन्यथा व्यक्ति को अराजक एवं अन्यायी राज्य के विरूद्ध स्वराज की स्थापना करना चाहिये।"[17]

9. राष्ट्रीयता एवं अंतरराष्ट्रीयता

गांधी जी सच्चे राष्ट्रवादी थे उनके प्रत्येक विचार राष्ट्र, नीति एवं धर्म के अनुरूप थे, लेकिन साथ ही वह अंतर्राष्ट्रीयवादी भी थे। उनके राष्ट्रवाद के बीजारोपण द्वारा ही अंतर्राष्ट्रवाद का वृक्ष खडा हुआ और बाद में इस वृक्ष से मानववाद रूपी फल उगे। गांधी जी देश प्रेम एवं मानव प्रेम में कोई अन्तर नहीं करते थे। वह कहते थे, " कोई देशप्रेमी उतना उग्र देशप्रेमी नहीं हो सकता जितना कि पदभ्रष्ट लोग हो जाते हैं।"[18] वह विश्व सेवा के बिना राष्ट्र सेवा को अनुपयोगी मानते थे। वह कहते थे कि भारत मेरे लिये दुनिया का सबसे प्यारा देश है। मैनें इसमें उत्कृष्ट अच्छाईयों का दर्शन किया है। हम भारतवासी स्वयं विश्व को कुटुम्ब के रूप में देखते हैं। उनका मानना था कि बिना राष्ट्रवादी बने कोई भी अंतर्राष्ट्रवादी नहीं हो सकता।

एक ओर जहां गांधी जी विश्व शांति की स्थापना हेतु अंतर्राष्ट्रवाद की भावना के प्रसार को आवश्यक मानते हैं, वहीं दूसरी ओर वह अंतर्राष्ट्रवाद की ओट में साम्राज्यवाद और उवनिवेशवाद को पनपने का भरसक विरोध भी करते हैं। उनका स्पष्ट मानना है कि एक राष्ट्र की प्रगति के बाद ही अंतर्राष्ट्रवाद के आधार पर दूसरे राष्ट्रो एवं पिछड़े क्षेत्रों का विकास किया जा सकता है।

गांधी के राजनीतिक दर्शन में व्याप्त उपर्युक्त सिद्धान्तों में नैतिकता, श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों पर आधारित शासन-प्रशासन को अधिक महत्वपूर्ण स्थान मिला हुआ है। भारतीय राजनीति में उनके प्रभाव दर्जनभर उदाहरणों से स्वतः स्पष्ट होता है कि अब न केवल भारतीय जनता, बल्कि सम्पूर्ण विश्व भी गांधीजी को उद्धारक के रूप में देख रही है। अंततः इस शोधपत्र की उपादेयता तभी सिद्ध होगी जब हम उनके राजनीतिक दर्शन में व्याप्त उक्त सभी सिद्धान्तों को व्यवहार में परिणित कर सकेगें। इस शोध पत्र का उद्देश्य भी यही है कि गांधी जी के विचार और दर्शन में सम्मिलित किन्तु अब तक अप्रसारित व अप्रचारित तथ्यों एवं उनकी उपादेयता को देश वासियों के समक्ष प्रस्तुत किया जाए।

वास्तव में आज जब हमारा दिग्भ्रमित युवा वर्ग गांधी जी के बारे में स्वयं अध्ययन न कर अन्य लेखकों के चश्में से देखता है तो उसे सब काला ही दिखाई देता है। अतः हमें अपनी राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान हेतु गांधी जी की सिद्धान्त सम्पन्न राजनीति को राष्ट्रीय एवं स्थानीय स्तरों पर शामिल करना होगा, तभी हमारा भारत 21 वीं सदी में सच्चे अर्थें में स्वतंत्र, लोक कल्याणकारी एवं विकसित राज्य बन सकेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. 1.डॉ. अमरप्रकाश अवस्थी, भारतीय राजनीतिक चिंतक, 2016, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, पृ. 205
2. प्रो. एन. राधाकृष्णन, स्वच्छ भारत अभियान और गांधीवादी रचनात्मक कार्यक्रम, रोजगार समाचार, 29 सितंबर-5 अक्टूबर 2018, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, पृ. 1
3. सम्पूर्ण गांधी वांगमय, भाग-21, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, पृ. 316
4. 4.जे. के. चौपड़ा, राजनीति विज्ञान, 2001, यूनिक पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ. 37
5. डॉ. अमरप्रकाश अवस्थी, भारतीय राजनीतिक चिंतक, 2016, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, पृ. 240
6. डॉ. ओम प्रकाश गाबा, भारतीय राजनीतिक विचारक, 2017, मयूर पेपरबैक्स, इंदिरापुरम्, पृ. 240
7. एम. के .गांधी, आत्मकथा 1956 पृ. 504
8. वी. पी. वर्मा, दि पालिटिकल फिलॉसफी आफ महात्मा गांधी एण्ड सर्वोदय, 1972 पृ. 343
9. गांधी जी, सर्वोदय, 2007 पृ. 87
10. डॉ. फड़िया एवं फड़िया, भारतीय शासन एवं राजनीति, 2018, साहित्य भवन, आगरा, पृ. 91

11. प्रो. एस. एल. वर्मा, उच्चतर राजनीतिक सिद्धांत, 2007, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, पृ. 212
12. गांधी जी की सूक्तियां, हिन्द पाकेट बुक्स, 2008, नई दिल्ली, पृ.12
13. डॉ. एन. ए. अन्सारी, गांधी दर्शन में सिद्धांत सम्पन्न राजनीति, अतुल्य भारत : संस्कृति और राष्ट्र, 2018, कृष्णा कम्प्यूटर एंड प्रिन्टर्स, सागर (म.प्र.), पृ. 180
14. प्रतियोगिता दर्पण, अप्रैल 2009, उपकार प्रकाशन, आगरा, पृ. 1652
15. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा, भारतीय राजव्यवस्था, 2017, स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा.लि.,नई दिल्ली, पृ. 12
16. गांधी जी, हम सब एक पिता के बालक 1964 पृ. 191-192.
17. डा. सत्या सोनी, स्वतंत्रोत्तर हिन्दी उपन्यासों में गांधी दर्शन के प्रभाव का अध्ययन, (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध), 2012, डॉ. हरी सिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर (मध्य प्रदेश), पृ. 39-40.
18. गांधी जी, मेरे सपनों का भारत, 2004, पृ. 14

***

स्वंतत्रता संग्राम एवं सत्यग्रह

डॉ. अफरोज इकबाल[32]

राष्ट्रीय आंदोलन के अंतिम चरण को गांधीवादी काल (1919-43) कहा जाता है इसके प्रमुख नेता महात्मा गांधी थे। इन्होंने भारतीय राजनीति में नवीन विचारधारा का सूत्रपात किया। गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने छिपकर षड्यंत्रों की नीति की निंदा की और अन्याय का स्पष्ट और सामने से विरोध करने का आह्वान किया। गांधी ने "सत्याग्रह" (सत्य के प्रति आग्रह) अर्थात सरकार के प्रति अहिंसात्मक असहयोग की नीति अपनाई। गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस एक सार्वजनिक आन्दोलन का प्रतिरूप बन गई। कांग्रेस संगठन को अधिक सुदृढ़ बनाकर उसे अधिक जनतांत्रिक बनाया गया। गांधीवादी युग में कांग्रेस का उद्देश्य लोगों को पॉच व्रत (चरखा कातना, अस्पृश्यता मिटाना, मादक वस्तु निषेध हिंन्दू-मुस्लिम एकता और स्त्रियों के प्रति समानता का व्यवहार) धारण करना था। इन व्रतो का भी अहिंसा द्वारा ही प्रचार किया गया।

महात्मा गांधी रोलट ऐक्ट (जिससे प्रशासन को किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने और बिना मुकदमे के बंदीगृह में रखने की अनुमति थी) के पारित होने, जालियांवाला बाग के भीषण गोलीकाण्ड और खिलाफत के विवाद में अंग्रेजों की भूमिका से वह अत्यन्त दुःखी थे। अंततः उन्होंने 1920 में असहयोग आंदोलन प्रारंभ किया। 1921 में इस असहयोग आंदोलन के अंतर्गत लगभग 30,000 व्यक्ति जेल गए। परंतु इस आंदोलन के दौरान जब चौरी-चौरा में भीड़ ने पुलिस चौकी को जला दिया तो इस घटना से क्षुब्ध गांधी जी ने फरवरी 1922 में अपना आंदोलन स्थगित कर दिया तथा यह व्यक्त किया कि कठोर आत्मसंयम के बिना इस सत्याग्रह का प्रयोग नहीं हो सकता। गांधी ने लोगों को रचनात्मक कार्य के लिए प्रेरित किया।

महात्मा गांधी ने 1930 में नमक कानून को तोड़कर सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारंभ किया। 12 मार्च 1930 को गांधी जी ने साबरमती आश्रम से अपने 78 सहयोगियों के साथ मिलकर दांडी समुद्र तट पर जाकर अवैध नमक बनाया और आंदोलन का सूत्रपात किया। इस आंदोलन में 60, 000 से अधिक लोगों को गिरफ्तार कर जेल में यातनाएँ दी गईं। 5 मार्च 1931 को सरकार ने गांधी से समझौता कर (गांधी इरविन समझौता) भारत को डोमिनियन स्टेटस देने की बात की तत्पश्चात् उन्होंने अपने आंदोलन की असफलता को स्वीकार करते हुए कांग्रेस की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया और अपने आप को हरिजनों की सेवा तक सीमित कर लिया परंतु 1928 से 1934 तक के इन वर्षों में गांधी जी ने कांग्रेस का स्वरूप ही परिवर्तित कर दिया था सबसे प्रमुख बात यह है कि कांग्रेस जन आंदोलन की सूत्रधार बन गई थी।

---

[32] एसोसिएट प्रोफेसर (समाजशास्त्र)राजकीय स्नातकोतर महाविद्यालय डोईवाला, देहरादून

द्वितीय विश्वयुद्ध के काल में सुदूर पूर्व में जापान की असफलताओं से भयभीत अंग्रेजों ने मार्च 1942 में युद्ध मंत्रिमंडल के एक सदस्य सर स्टैफर्ड क्रिप्स को नए संवैधानिक प्रस्ताव देकर भारत भेजा। क्रिप्स योजना में यह प्रस्तावित था कि भारत को युद्ध की समाप्ति के बाद डेमिनियन स्टेटस का दर्जा मिलेगा, जिसके लिए भारत में एक संविधान सभा गठित की जाएगी, जिसमें अंग्रेजों तथा भारत व भारतीय रियासतों के प्रतिनिधि भाग लेंगे। मुस्लिम लीग को क्रिप्स योजना स्वीकार करने के लिए यह कहा गया था कि जो प्रांत अथवा रियासतें इस संविधान सभा में सम्मिलित ना होना चाहें वे ऐसा कर सकती हैं और उन्हें एक अलग स्वशासित प्रदेश मिल जाएगा, अर्थात युद्ध की समाप्ति के बाद ही कुछ प्राप्त हो सकता था तत्काल कुछ भी नहीं। कांग्रेस ने 'क्रिप्स प्रस्ताव' को स्वीकार कर दिया। गांधी जी ने इस प्रस्ताव को 'उत्तर-दिनांकित चेक'(post-dated cheque) कहा। तत्पश्चात् गांधी जी ने 'भारत छोड़ो'(Quit India) आंदोलन प्रारंभ किया। 8 अगस्त 1942 को आंदोलन प्रारंभ होने के पूर्व ही सभी प्रमुख नेता गांधी जी के साथ ही बन्दी बना लिए गए। आंदोलन के दौरान स्थान-स्थान पर हिंसात्मक उपद्रव हुए, सरकार का दमनचक्र चला। लगभग 1, 000 व्यक्ति गोलीकाण्डों में मारे गए, अस्सी हजार से अधिक व्यक्ति बंदी बना लिए गए। सन् 1944 में गांधी जी को जेल से छोड़ दिया गया और भारत छोड़ो प्रस्ताव वापस ले लिया गया। तद्नुसार एक ब्रिटिश मंत्रिमंडल का शिष्टमंडल (Cabinet Mission) भारत आया जिसने संविधान निर्मात्री सभा के गठन की प्रक्रिया को तीव्र बनाया, अंततः माउंटबेटन की योजना के अनुसार भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 18 जुलाई 1947 को ब्रिटिश संसद में पारित किया गया। फलस्वरूप 15 अगस्त 1947 को भारत को ब्रिटिश दासता से मुक्ति मिली और भारत स्वतंत्र हुआ परंतु स्वतंत्रता के साथ ही भारत का भारत व पाकिस्तान के रूप में विभाजन हो गया।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में 1885 ई. में कांग्रेस की स्थापना एक नवीन राजनीतिक-समीकरण की सूत्रपात थी। यह भी सर्वविदित है कि शुरुआती चरणों में कांग्रेस में व्यापक जनाधार वाले नेताओं का सर्वथा अभाव था। ऐसे में 20 वी सदी के आरंभिक दो दशक काफी उथल पुथल भरे रहे हैं। इसी काल में बंगाल विभाजन और स्वदेशी आंदोलन के कारण कांग्रेस ने अपने आंदोलन की दिशा बदली। गरम और नरम दल का कांग्रेस में विभाजन और गांधी जैसे नेता का भारत के राजनीतिक पटल पर आगमन दूरगामी प्रभाव वाली घटना थी।

दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी गोरे और काले (जिसमें अफ्रीकी और भारतीय दोनों थे) के बीच भेदभाव का सफलतापूर्वक विरोध कर चुके थे। यही कारण था कि 1914 में दक्षिण अफ्रीका सरकार ने भारतीयों के विरुद्ध अधिकतर कानून को रद्द कर दिया। गांधी जी द्वारा दक्षिण अफ्रीका में प्राप्त अनुभव प्रभावशाली साबित हुए। सन् 1907-08, 1908-11 और 1913-14 के तीन अहिंसक आंदोलनों ने (1907-8 के आंदोलन का नाम सत्याग्रह कर दिया गया था) गांधी जी को एक जननेता के रूप में उभारने में आधार प्रदान किया। इस बात पर विशेष बल दिया जाना चाहिए कि दक्षिण अफ्रीका के इस अनुभव के कारण गांधीजी भारत में अपने राजनीतिक जीवन के आरंभ में ही उन अन्य राजनीतिज्ञों (लालजी, तिलक या पाल) की अपेक्षा अखिल-भारतीय स्तर पर अधिक मान्य हुए। दक्षिण अफ्रीका ने गांधी को अंतराष्ट्रीय ख्याति प्रदान की।

गांधी जी का यह विश्वास था कि जनता ही किसी आंदोलन को आगे ले जा सकती है, जननेता सिर्फ उसके विरोधों को दिशा प्रदान कर सकता है। किसी आंदोलन को दिशा देने के लिए वे नेतृत्व की जरूरत पर भी बल देते थे, परंतु यह भी स्पष्ट था कि कोई आंदोलन तभी जनआंदोलन का स्वरूप धारण कर सकता है जब आम जन की इसमें स्वभाविक सहभागिता हो। ऐसी सहभागिता तभी प्राप्त की जा सकती है जब जन की समस्या को आंदोलन का मुद्दा बनाया जाए। निश्चित रूप से ऐसा करने में जनआंदोलन एक द्वंद्वात्मक प्रक्रिया से होकर गुजरता है। दक्षिण अफ्रीका के अपने प्रवास के दिनों से ही गांधी जी अपने जीवन भर जनता-नेता की द्वंद्वात्मक समस्या से जूझते हैं।, और उनकी राजनीति का सबसे सुदृढ आधार जनता की संघर्ष कर सकने की क्षमता, उसकी निडरता, उसकी आत्म बलिदान भावना, साहस और उसके नैतिक बल पर उनका अपार विश्वास था।

19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारतीय कांग्रेस के बुद्धिजीवी. औपनिवेशिक सत्ता द्वारा आर्थिक दोहन को समझने में सफलता प्राप्त कर चुके थे। 20 वीं सदी के आरंभिक चरणों में चरमपंथी नेता उस आर्थिक दोहन के विरुद्ध अपने राजनीतिक विरोध की रूपरेखा भी तय करके आंदोलन को आगे भी ले गए, लेकिन उस समय तक इस आंदोलन को "आम मूक लोगों की सहज सहभागिता" पूर्णतः नहीं मिल पाई थी। ऐसे समय में गांधी जी ने आम लोगों को आंदोलन से जोड़ने और उसे एक जन आंदोलन का स्वरूप देने का प्रयास किया। गांधी जी के दौर में आकर ही जनता और नेताओं के बीच स्वतः स्फूर्तता और व्यवहार विकसित हुआ। सबसे बढ़कर यह गांधी जी ही थे, जिन्होंने जनता के बीच जाकर उन्हे लामबंद किया और राष्ट्रीय आंदोलन की नींव इस आधार पर रखी कि आम जनता राजनीतिक विषय-वस्तु है, उसकी भाजन नहीं। यही कारण है कि गांधी जी 1915 में जब भारत लौटे तो आरंभिक वर्षों में उन्होंने भारतीय राजनीतिक परिस्थितियों और यहां की जनसमस्याओं को समझने का प्रयास किया। गांधी जी प्रयासरत थे कि किस प्रकार स्वतंत्रता संग्राम को जनआंदोलन से जोड़ा जाए। इसी क्रम में उन्होंने यह महसूस किया कि भारतीय किसानों, श्रमिकों, छोटे-छोटे उद्योगो में जुड़े लोगों के हित की बात किए बिना ऐसा संभव नहीं है। इन बातों के समझने के प्रयास में ही उन्होंने तीन महत्वपूर्ण आंदोलनों को दिशा प्रदान की जिससे उन्हें सफलता मिली। ये तीन आंदोलन थे -(i)1917 का चम्पारण सत्याग्रह (ii) 1918 का खेड़ा आंदोलन (लगान बन्दी के लिए) (iii) 1918 में अहमदाबाद के श्रमिकों द्वारा चलाया गया आंदोलन। इन तीन आंदोलनों ने गांधी को भारतीय किसानों और श्रमिकों की स्थिति को करीब से देखने और समझने का अवसर प्रदान किया। इसी क्रम में उन्हें यह भी महसूस हुआ कि किसी आन्दोलन में जनता का साथ जनता की तरह बनकर ही लिया जा सकता है। साधारण जन का सहयोग प्राप्त करने के लिए नेता को खुद का जनसामान्यीकरण करना अतिआवश्यक है। उनके इसी विचार का प्रतिफल था गांधी जी का लंगोटी धारण, हाथ में लाठी, चरखा और खादी के प्रति उनका लगाव।

यद्यपि गांधी जी में जनता को संगठित करने का गुण शुरू से ही था, लेकिन उन्होंने प्रारंभिक अवस्था में मुख्यतः *एनीबीसेंट* के बन्दी बनाए जाने के विरुद्ध व्यक्तिगत विरोध प्रकट करने और अली बंधुओं की रिहाई करने के लिए अपील जारी करने का ही रास्ता अपनाया। 1919 के प्रारंभिक चरण तक उन्होंने यही शैली अपनाई। सन् 1919 तक आते-आते गांधी जी भारतीय जनता की नब्ज पकड़ चुके थे।

उन्होंने यह बात अच्छी तरह समझ ली कि सोई हुई भारतीय जनता को उसकी असली समस्या को महसूस करने की अति आवश्यकता है, साथ ही उस समस्या के निदान के लिए सच्चा रास्ता दिखाना और सच्चा नेतृत्व प्रदान करना अवश्यक है। गांधी ने भारतीय जनता को अपने साथ लेकर चलने और एक विशाल जन समूह को आन्दोलन से जोड़ने के लिए जो रास्ता अपनाया वह था अहिंसक सत्याग्रह। यह रक्तविहीन आन्दोलन की तरह था जिसके लिए अनुशासित कार्यकर्ताओं को सावधानी पूर्वक प्रशिक्षण दिया जाना आवश्यक था। इसके लिए आत्मबल की भी जरूरत थी।

गांधी जी का स्पष्ट मत था कि जननेता के लिए सिर्फ जनभावना को समझना ही काफी नहीं है, वरन् जन भावना को जगाना भी उसका काम है। लुई फिशर (अमेरिकी पत्रकार) के एक प्रश्न के जवाब में गांधी जी ने एक बार कहा था-"मैं लोगों की भावनाओं को जगाऊँगा, मैं शायद उन्हें जगा सकता हूँ।" गांधी जी इस बात से भी वाकिफ थे कि-"लाखों लोगों में जागरूकता लाने में समय लगता है। इसे मशीन से नहीं बनाया जा सकता है। यह जागरूकता रहस्यमय ढंग से आती या आती प्रतीत होती है। राष्ट्रीय कार्यकर्ता सिर्फ जनमानस की पूर्वापेक्षा की प्रक्रिया को तेज कर सकते हैं।

गांधी जी सच्चे जननेता थे। तभी तो वह यह स्वीकार करने की हिम्मत रखते थे कि आंदोलन की परिस्थितियों को कोई नेता अपने बलबूते पर पैदा नहीं कर सकता है। अगर ऐसा होता है तो वह जन आंदोलन नहीं है। यही कारण है कि 1946-47 में जब देश पर विभाजन का खतरा मंडरा रहा था तो उनसे कई लोगों ने आग्रह किया कि कोई ऐसी स्थिति पैदा कर दें, जिससे देश विभाजन से बच जाए तो गांधी जी का उत्तर था-"मैंने अपने जीवन में कभी किसी परिस्थिति को पैदा नहीं किया मुझ में सिर्फ एक गुण है जो आप में से अनेक लोगों में नहीं है। मैं मनोभाव से महसूस कर सकता हूँ कि जनता के मन में क्या चल रहा है, और जब मुझे एहसास होता है कि अच्छाई की ताकतें ही धीमे-धीमे आलोड़ित हो रही हैं तो मैं उन्हें थाम लेता हूँ और कोई कार्यक्रम रच लेता हूँ। और फिर उसका प्रत्युत्तर भी मिलता है। लोग कहते हैं मैंने कोई विशेष स्थिति पैदा कर दी। लेकिन वास्तव में जो कुछ पहले से मौजूद था, उसे एक आकार देने से अधिक मैंने कुछ नहीं किया।"

गांधी जी की जनआंदोलन के प्रति काफी निष्ठा थी। वो जनता को सर्वोपरि समझते थे। तभी उन्होंने एक बार स्पष्ट रूप से कहा था कि-"मेरी प्रतिष्ठा का कोई महत्व नहीं है, उसका अपने कार्य में कोई मूल्य नहीं है, ... भारत का उत्थान या पतन उसके लाखों लोगों के कुल योग की गुणवत्ता से होगा। कोई व्यक्ति चाहे जितना ऊंचा हो, अपने लाखों लोगों के प्रतिनिधि होने से ज्यादा अहमियत नहीं रखता।"

कुल मिलाकर अगर गांधी जी अपने समकालीन अन्य नेता के मुकाबले जनआंदोलन के सबसे अग्रणी नेता के रूप में उभर कर सामने आते हैं तो वह उनकी विचारधारा का प्रतिफल है। जिसकी मुख्य बातें इस प्रकार है:-

(1) जनआंदोलन में जन (जनता) सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। जनता को साथ लिए बगैर जन आंदोलन कभी संभव नहीं है।

(2) जनता को आंदोलन के लिए खड़ा करने के लिए उनकी समस्याओं की समझ अति आवश्यक है क्योंकि जन आंदोलन की पृष्ठभूमि जनता में व्याप्त असंतोष में छिपी होती है। कोई जननेता उसे स्वतः पैदा नहीं कर सकता है।

(3) जन आंदोलन के लिए जनता को प्रेरित करना भी आवश्यक है, लेकिन जनता तक पहुँचने के लिए खुद का सामान्यीकरण आवश्यक है।

(4) जनआंदोलन के लिए कुशल नेतृत्व की अति आवश्यकता है, इसके बगैर कोई आंदोलन जन आंदोलन बनने के पहले ही बिखर जाता है।

(5) किसी भी जनआंदोलन को किन्हीं अति-प्रेरित कार्यकर्ताओं के द्वारा आगे नहीं बढ़ाया जा सकता। इसे 'मुक लोगों की शक्ति' के बूते पैदा किया जा सकता है।

भारती राजनीति को सत्याग्रह की विधि सगांधी का एक महत्वपूर्ण योगदान है। गांधी को इसकी प्रेरणा रूसी लेखक-विचारक टॉल्सटॉय की रचनाओं से मिली। अमरीकी विचारक थोरो ने भी सविनय अवज्ञा के विचार का प्रतिपादन किया था और व्यक्तिगत तौर पर इसका प्रयोग भी किया था। गांधी ने इसे और भी विकसित किया और पहली बार बड़े पैमाने पर राजनीति में इसका इस्तेमाल किया। सत्याग्रह की विधि पर प्रयोग गांधी ने सबसे पहले दक्षिण अफ्रीका में उन कानूनों के विरुद्ध किया जिनके द्वारा भारतीय लोगों के साथ भेदभाव किया जाता था। गांधी के राजनीतिक विरोध की इस विधि को "निष्क्रिय प्रतिरोध" (Passive Resistance) अथवा सत्याग्रह के नाम से जाना जाता है।

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में गांधी ने पहली बार सत्याग्रह की विधि का इस्तेमाल चंपारण (बिहार) में किया। उसके बाद से सारे भारत में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध इसका बड़े पैमाने पर इस्तेमाल हुआ। स्वतंत्रता मिलने के बाद भी भारत की राजनीति में विभिन्न राजनीतिक दलों और गैर-दलीय समूहों एवं आंदोलनों द्वारा इस विधि का प्रयोग किया गया है। सत्याग्रह की विधि का इस्तेमाल सिर्फ सरकार के विरुद्ध ही नहीं बल्कि छुआछूत जैसी सामाजिक कुप्रथाओं के विरुद्ध भी किया गया है। गांधी के अनुसार सत्याग्रह की विधि का इस्तेमाल परिवार में भी किया जा सकता है।

"सत्याग्रह" शब्दो दो शब्दों से मिलकर बना है "सत्य" और "आग्रह"। "सत्याग्रह" का अर्थ है "सत्य के लिए आग्रह।" सत्याग्रही दृढ़ निश्चय के साथ हर कष्ट को सहता हुआ सत्य पर टिका रहता है। गांधी के अनुसार सत्य को अहिंसा द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। "अहिंसा" की व्याख्या गांधी भावात्मक रूप से करते थे। उनके अनुसार "अहिंसा" का अर्थ मात्र हिंसा का अभाव नहीं बल्कि प्रेम है। सत्याग्रह में प्रेम और स्वयं के साथ सामने वाले व्यक्ति के विचारों में परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया जाता है। इस तरह सत्याग्रह की विधि सत्य और अहिंसा के नैतिक मूल्यों पर आधारित है। इसके अलावा सत्याग्रह के मूल में यह विश्वास भी निहित रहता है कि प्रत्येक मानव मूलतः स्वभाव से अच्छा है। इसलिए सत्याग्रह का उद्देश्य सामने वाले व्यक्ति को पराजित करना नहीं होता, बल्कि उसकी अंतर्निहित मानवीय भावनाओं को जगाकर उसके विचारों में परिवर्तन लाना होता है। सत्याग्रही का उद्देश्य प्रेम द्वारा गलत काम करने वाले व्यक्ति की न्याय की भावना को जगाकर उसे सुधारना होता है।

गांधी साध्य और साधन की पवित्रता में विश्वास रखते थे। उनके अनुसार आदर्श समाज को सत्य और अहिंसा पर आधारित विधि या सत्याग्रह की विधि द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। गांधी के अनुसार सत्याग्रह का इस्तेमाल अन्तिम औजार के रूप में किया जाना चाहिए। सत्याग्रही व्यक्ति को पहले निष्पक्ष भाव से इस बात की जांच कर लेनी चाहिए कि उसकी मांग सही या न्यायोचित हैं या नहीं। उसे अपने दिमाग से सामने वाले व्यक्ति के प्रति हिंसा और नफरत की भावना को पूरी तरह निकाल देना चाहिए। पहले सामने वाले व्यक्ति को हर कदम पर समझा-बुझा कर उसके विचारों में परिवर्तन लाने का प्रयत्न करना चाहिए। सामने वाले व्यक्ति को सुधरने का पूरा मौका देना चाहिए। अगर इसमें सफलता न मिले तभी अंतिम विकल्प के रूप में सत्याग्रह का रास्ता अपनाना चाहिए। व्यापक अर्थ में सामने वाले व्यक्ति को समझाने वाला प्रयत्न भी सत्याग्रह का अंग है।

गांधी के अनुसार सत्याग्रह की विधि को अपनाने के लिए नैतिक तैयारी जरूरी है। सत्याग्रही को निःस्वार्थ, निर्भय, ईमानदार और अनुशासित होना चाहिए। इसके अलावा सत्याग्रही को कष्ट सहने और त्याग करने के लिए भी तैयार रहना चाहिए। सत्याग्रही को मन, वचन और कर्म से सत्य और अहिंसा का पालन करना चाहिए।

सत्याग्रही की कथनी और करनी में एकता भी बहुत जरूरी है। सत्याग्रही व्यक्ति को सबसे पहले अपने-आप को उन बुराइयों से मुक्त कर लेना चाहिए, जिनके विरुद्ध वह संघर्ष कर रहा हो। इन सब बातों के अलावा यह भी जरूरी है कि सत्याग्रही भी मानव की अंतर्निहित अच्छाई में विश्वास रखता हो। अगर नैतिक तैयारी के बिना सत्याग्रह की विधि का उपयोग किया जाए तो वह प्रभावी नहीं रह जाता है और सफलता की संभावना भी कम हो जाती है।

गांधी के अनुसार सत्याग्रह कमजोर लोगों का हथियार नहीं है। सत्याग्रह के लिए हर तरह का कष्ट लाठी, गोली और यहां तक की मृत्यु-का सामना करने का साहस चाहिए। अगर सत्याग्रही व्यक्ति में अपनी मांगों के न्यायोचित होने पर पूरा विश्वास न हो और दमन का सामना करने का नैतिक बल न हो, तो फिर ऐसे में सत्याग्रह पर आधारित आंदोलन अधिक समय तक नहीं चल सकता है।

सत्याग्रह के कई रूप हो सकते हैं:

(i) सविनय अवज्ञा इसके अंन्तर्गत किसी अनुचित समझे जाने वाले कानून को तोड़ने का अभियान में शामिल है लेकिन कानून तोड़ने के बाद सत्याग्रही स्वेच्छा से उसकी सजा भुगतने के लिए तैयार रहता है उदाहरण के तौर पर स्वतंत्रता आंन्दोलन के दौरान गांधी द्वारा "नमक सत्याग्रह" के जरिए नमक कानून को तोड़ा गया था।

(ii) असहयोग-न्याय करने वाले व्यक्ति या सरकार से असहयोग करना।

(iii) बंद या हड़तालः-विरोध व्यक्त करने के लिए काम-काज बंद कर देना।

(iv) अनशन-विरोध व्यक्त करने के लिए किसी मांग के समर्थन में या अच्छी भावनाओं को जगाने के लिए उपवास करना। गांधी ने हिंदू-मुस्लिम दंगों को शांत करने के लिए और कई अन्य अवसरों पर आमरण अनशन का सहारा लिया था।

कभी-कभी यह प्रश्न भी उठता है कि सत्याग्रह की विधि संवैधानिक है या असंवैधानिक। भारत जैसे संसदीय लोकतंत्र में सत्याग्रह की विधि को अपनाने का क्या औचित्य है? सत्याग्रह के अंतर्गत कई बार नागरिकों द्वारा उन कानूनो को जान-बूझकर तोड़ा जाता है जिन्हें वे अन्यायपूर्ण समझते हैं। इसलिए अगर हम संवैधानिक विधि की व्याख्या कानून द्वारा मान्यता प्राप्त विधि के रूप में करते हैं, तो सत्याग्रह की विधि संवैधानिक मालूम होती है। लेकिन सत्याग्रह के अन्य रूप भी हैं जैसे बंद या हड़ताल।

अगर किसी मुद्दे पर अपनी असहमति या विरोध व्यक्त करने के लिए नागरिक स्वेच्छा से काम-काज बंद कर देते हैं, तो इसमें असंवैधानिक कुछ भी नहीं है। सविनय अवज्ञा के अंतर्गत सत्याग्रही द्वारा कानून को जरुर तोड़ा जाता है। लेकिन ऐसी स्थिति में भी सत्याग्रही उस कानून को तोड़ने की कानून द्वारा निर्धारित सजा भुगतने के लिए भी तैयार रहता है। इस तरह सत्याग्रही कानून को तोड़ते हुए भी सरकार को कानून बनाने और उसे लागू करने के अधिकार को चुनौती नहीं देता, बल्कि वह स्वयं कष्ट सहकर किसी कानून-विशेष के न्यायपूर्ण चरित्र की ओर अपनी सरकार और आम जनता का ध्यान आकर्षित करता है। इसलिए सत्याग्रह की विधि को हिंसा और आतंकवाद की तरह असंवैधानिक भी नहीं कहा जा सकता। यह सही है कि भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में संवैधानिक विधि का दायरा काफी व्यापक है। राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आम तौर से कानूनी तरीकों को ही अपनाना चाहिए लेकिन सत्याग्रह तो एक अंतिम औजार है। गांधी और जयप्रकाश जैसे सत्याग्रह के समर्थक भी अंतिम विकल्प के रूप में ही सत्याग्रह की विधि का समर्थन करते थे।

सत्याग्रह, विशेषकर सविनय अवज्ञा के औचित्य के बारे में गांधी के विचार बिल्कुल स्पष्ट हैं। गांधी के अनुसार आम नागरिकों को यह ध्यान रखना चाहिए कि उनके सहयोग के बिना सरकार काम नहीं कर सकती है। इसलिए उन्हें सरकार के कल्याणकारी कार्यो में, अच्छे कानूनों का पालन करने में और राज्य की रक्षा करने में सरकार के साथ पूरा सहयोग करना चाहिए। लेकिन दूसरी ओर अगर राज्य जनता का शोषण करे उनके विकास में बाधा उत्पन्न करे, तो नागरिकों का यह दायित्व हो जाता है कि वे अपना सहयोग वापस ले ले; और नैतिक दबाव एवं अंहिसक असहयोग द्वारा सरकार को सुधरने के लिए बाध्य करें।

संक्षेप में, सरकार द्वारा अनैतिक और अन्यायपूर्ण आचरणकी स्थिति में ही सत्याग्रह का औचित्य है। अतः सरकार द्वारा बनाए गए अनैतिक कानूनो का पालन करना नागरिकों का नैतिक दायित्व नहीं है। सत्याग्रह की विधि सामाजिक-राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए एक उत्तम विधि है। यह सत्य और अहिंसा के मूल्यों पर आधारित एक उच्च आदर्श है। सरकार द्वारा लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए संवैधानिक विधि और अंतिम विकल्प के रूप में सविनय अवज्ञा का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनीतिक लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिए हिंसा और आतंकवाद के इस्तेमाल का कोई नैतिक औचित्य नहीं है। जहां पर परिस्थितियां अलोकतांत्रिक हो वहां पर भी जहां तक संभव हो, इसी विधि का इस्तेमाल किया जाना चाहिए जैसा कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में किया गया था।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. 1939 में सुभाष चंद्र बोस से मतभेद के समय लिखा गया जवाब।
2. 'हरिजन' (5 फरवरी 1939)।
3. आधुनिक भारत का इतिहास, (संपादक-आर.एल.शुक्ल)
4. इंडिया टुडे (ज्ञानभंडार) जून-2006
5. आधुनिक भारत, लेखक-सुमित सरकार
6. नील संघर्ष और गांधीः ब्रज किशोर सिंह, प्राच्य प्रकाशन, पटना 2009
7. मेरी विचार यात्राः जयप्रकाश नारायण, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी 2004
8. महात्मा गांधी का सामाजिक एवं आर्थिक दर्शन, डॉ. अनुराधा कुमारी, प्राच्य प्रकाशन, पटना 2009
9. गांधी जी की देनः डॉ. राजेंद्र प्रसाद, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली 2008
10. समाज और राजनीति दर्शन, डॉ. रमेंद्र, मोतीलाल बनारसी दास, 2003
11. महात्मा गांधी का समाज दर्शन, महादेव प्रसाद, हरियाणा साहित्य अकादमी 1973
12. Economic of Alternative: Khadi and Village Industries, Shyam Mohan, Janki Prakashan, 2001

***

गांधीः वाद और दर्शन

डॉ. राजीव रंजन गिरि[33]

गांधी सेवा संघ के मलिकंदा सम्मेलन में गांधी और गांधीजनों के समक्ष विरोध में नारे लगे। 'गांधीवाद ध्वंस हो' चिल्ला रहे थे कई लोग। ऐसे नारों से गांधीजन आहत हुए। पर गांधीजी परेशान नहीं हुए। नारेबाजी के बाद जो भाषण गांधीजी ने दिया, उससे यह पता चलता है। गांधीजी ने अपने लोगों को समझाया। उन्होंने कहा कि जो लोग गांधीवाद के विरुद्ध कुछ कहना चाहते हैं, उन्हें वैसा कहने की आजादी दीजिए। इतना ही नहीं, विरोध में नारेबाजी करनेवालों से किसी प्रकार का द्वेष या वैर न करने की सलाह दी। यहाँ भी अहिंसा की कसौटी की याद दिलायी। अहिंसा के लिये जरूरी बताया कि विरोधियों के साथ शांति से निबाहें।

गांधीजी के समक्ष उनके शब्द और कर्म के विरोध में नारेबाजी का यह पहला वाकया नहीं था। दक्षिण अफ्रीका के दिनों से ही ऐसा होता रहा था। पहले व्यक्ति गांधी का विरोध शुरू हुआ। फिर उनके विचारों का। पर गांधीजी के यहाँ अपने विरोधियों के प्रति भी वैर-भाव का साक्ष्य नहीं दिखता।

इतिहास के उस दौर में गांधी के विचार लीक से हटकर थे। उनके चिंता और चिंतन में लोगों को अपने से भिन्न सोच दिखता था। विचार की इस भिन्नता को लक्षित करते हुए उसे गांधीवाद कहा गया। जैसे-जैसे गांधीजी की स्वीकार्यता का दायरा बढ़ा, उनके विचार-दर्शन से प्रभावित और उस राह पर चलने वालों को 'गांधीवादी' कहा जाने लगा।

किसी भी व्यक्ति या विचार को खाँचे में बाँटकर देखने में, देखनेवालों को सुविधा होती है। जिस किसी व्यक्ति या विचार में समाज को कुछ अलग, थोड़ा भिन्नजिसे वह मौलिक मानने की भी जिद करता हैदिखता है, उसकी एक अलग कोटि बना देता है। उस व्यक्ति या विचार को 'वाद', 'सम्प्रदाय' या 'पंथ' का नामकरण करता है। मानव-इतिहास पर गौर करने पर दिखता है कि कई दफे उस विचार के नाम पर 'वाद', 'सम्प्रदाय' या 'पंथ' प्रत्यय चस्पा किया जाता है तो कई बार विचार-प्रणेता या प्रवक्ता के नाम के साथ। कभी उस प्रणेता के जीवन-काल में ही वाद, सम्प्रदाय, पंथ बनने लगते हैं अथवा इसकी संज्ञा मिलने लगती है तो कभी उसके मरणोपरांत।

कोटि-निर्माण का यह कार्य कभी प्रशंसक, समर्थक, अनुयायी, भक्त करते हैं तो कभी उससे घनघोर अहसमति रखने वाले भी। यदा-कदा यह भी दिखता है कि विचार-परम्परा को समझने के दौरान अध्येता खास विचार को रेखांकित करने, उस पर अतिरिक्न बल देने के लिए उसे 'विचारधारा' या 'वाद' कहकर संबोधित करते हैं।

इतिहास में ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जब किसी व्यक्ति या समूह ने पंथ, मठ, गढ़ की सता-संरचना के खिलाफ विचार व्यक्त किए, कालांतर में उसे भी खास पंथ, मठ या गढ़ में तब्दील कर दिया

---

[33] सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, राजधानी कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) दिल्ली

गया। विरोधी ऐसा करें तो समझा जा सकता है विडंबना यह है कि चाहने वाले भी ऐसा करते हैं। संत कबीर इसकी बेहतरीन मिसाल हैं।

महात्मा गांधी के जीवनकाल में ही उनके नाम के साथ 'वाद' जोड़ दिया गया। मानव सभ्यता के इतिहास में गांधीजी विरले हैं, जिन्होंने कई दफे इसे अस्वीकार किया। साथ ही जोर देकर कहा कि मैंने कोई नये सिद्धांत प्रस्तुत नहीं किये हैं, बल्कि पुराने सिद्धांतों को ही पुनः प्रतिस्थापित करने का प्रयास किया है।

'यंग इण्डिया' (25 अगस्त 1921) में उन्होंने लिखा,

"मैं स्वयं को भारत और मानवता का एक अदना सेवक मानता हूँ और इसी प्रकार सेवा करते हुए मर जाना पसंद करूँगा। मुझे कोई संप्रदाय चलाने की कामना नहीं है। मैं सचमुच इतना महत्वाकांक्षी हूँ कि मेरा अनुगमन केवल एक संप्रदाय करे, इससे मुझे संतोष नहीं होगा। चूँकि मैं किन्हीं नये सत्यों का प्रतिनिधित्व नहीं करता, मैं (चिरंतन) सत्य का, जैसा कि उसे जानता हूँ, अनुगमन और प्रतिनिधित्व करने का प्रयास करता हूँ। हाँ, यह अवश्य है कि मैं अनेक पुराने सत्यों पर नयी रोशनी डालता हूँ।"

यहाँ गांधीजी ने स्वयं के बारे में जो कही है और जो कामना की है, महत्त्वपूर्ण हैं। वे खुद को भारत का सेवक मानते हैं, अदना सेवक। मानो गांधी यह जताना चाहते हों कि सिर्फ सेवक कहने से थोड़े अहंकार का गंध आता है इसलिए 'अदना' जोड़ दिया। अहंकार किसी किस्म का हो, किसी का भी, सेवक या स्वामी का उन्हें गवारा नहीं, । वे मृत्युपर्यंत सेवक बने रहना चाहते हैं, कुछ और नहीं। सेवक भी सिर्फ भारत का नहीं, मानवता का भी। मानवता भारत की सीमाओं से बंधी नहीं है। इसमें सम्पूर्ण संसार समा गया है। मानवता शब्द में निहित व्यापकता और गहराई इतनी है कि यह मनुष्य जाति तक सीमित नहीं रह सकती। इसमें गोचर-अगोचर सभी शामिल हैं। गांधी को जानने वाले इस की तस्दीक करेंगे कि मानवता तमाम हदबंदी के पार जाती है। हद और बेहद दोनों को तज देती है, कबीर की तरह। इसमें समूची प्रकृति के लिए चिंता और संवेदना है। तब यह पारे की तरह साफ है कि इस सेवक के लिए भारत-सेवा और संपूर्ण मानवता की सेवा के बीच लेशमात्र भी फर्क नहीं। गांधी की भारत-सेवा समूची मानवता की सेवा है। भारत उनकी चिंता के केंद्र में है और यह चिंता उनके हिसाब से मानवता की चिंता ही है।

यह सवाल किया जा सकता है कि अगर कभी नौबत आए, जब भारत-हित-साधना मानवता को नजर अंदाज करे तब गांधी-मार्ग क्या होगा ? इसमें दो मत नहीं कि गांधी मानवता की फिक्रमंदी की राह चलते।

देश-काल ने जब कभी ऐसा प्रश्न गांधी के समक्ष प्रस्तुत किया, उन्होंने मानवता की पूरी परवाह की। उनकी अगुवाई में चल रहे स्वाधीनता-संग्राम-जिसे वे सच्चे मायने में मानवता को सिद्धांत देने की व्यावहारिक कार्रवाई बनाना चाहते थे-में ऐसे अवसरों की पहचान कर सनद किया जा सकता है। इतिहास ने तलवार की धार पर चलने जैसी, इस तरह की, चुनौती जब कभी गांधी के सामने प्रस्तुत की, वे डिगे नहीं। उन्होंने मानवता का साथ न छोड़ा। कीमत की परवाह किये बगैर। तब खूब आलोचना हुई गांधी की। निंदा तक को स्पर्श करते हुए।

जो लोग गांधी में विश्वास प्रगट करते थे, वे भी गांधी के ऐसे निर्णयों पर दुविधाग्रस्त दिखे। कई तो हिल भी गए। गांधी अडिग दिखे। संभव है कि ऐसे मौके गांधी के आस्तिक मन को भी संशय में डालने में सफल होते हों पर वे निर्णय मानवता के पक्ष में ही करते थे। ऐसे प्रश्नों पर गांधी के द्वारा लिये गए फैसले अब बताते हैं कि दुविधा का कुहासा छँटने में देर न लगता था।

कहना न होगा कि ऐसे ही संदर्भ और प्रसंग गांधीजी को अपने दौर का, न सिर्फ भारत अपितु दुनिया का एक महान नेता साबित करते हैं। ये अवसर और निर्णय गांधीजी को तत्कालीन ऐसे नेताओं जो किसी समूह, जाति, धर्म, भाषा या भूगोल के प्रतिनिधि थे से अलग करते हैं साथ ही विशिष्ट और श्रेष्ठ भी साबित करते हैं।

संप्रदाय चलाने की कामना से जिद भरा इंकार करने वाले गांधीजी यह भी कहते हैं कि उनका अनुगमन केवल एक सम्प्रदाय करे, उतने से संतोष नहीं होगा कि उनकी महत्वाकांक्षा की भरपाई नहीं होगी। इनको संतोष तब मिलेगा जब सम्प्रदायों की सीमायें मिटाकर सभी आएं। ऐसा लगता है कि गांधीजी भारत में मौजूद विभिन्न सम्प्रदायों की प्रकृति, आदर्श और असलियत नजदीक से देख रहे थे। इन सम्प्रदायों की विचारधारात्मक दीवारें इतनी मजबूत और ऊँची थीं कि इतर सम्प्रदायों के गुण और सुगंध बाहर रोक देती थीं। गांधी सरीखा व्यक्ति ऐसे सम्प्रदायों से हमनवाई कैसे रख सकता था! इनका तो स्पष्ट मानना था कि अपने विचार की जमीन पर पैर टिके रहे और खिड़कियाँ भी खुली रहे ताकि बाहर की हवा आ-जा सके। दरअसल सम्प्रदाय किसी-न-किसी सत्य पर निर्मित होते हैं, पर धीरे-धीरे ऐसा बन जाते हैं कि दूसरे सम्प्रदायों का सत्य स्वीकार नहीं कर पाते। गांधीजी के मुताबिक यह भारतीय विचार नहीं हो सकता जिसमें भिन्न सत्यों की स्वीकृति न हो।

गांधी सत्य की बहुलता के समर्थक थे। अपना सत्य मानते थे पर दूसरों के सत्य के प्रति भी संवेदनशील एवं उदार रूख अख्तियार करते थे। वे सत्य को बहुवचनात्मक प्रत्यय मानते थे, एकास्मिक नहीं। 'सत्य' के स्थान पर 'सत्यों' का प्रयोग संबंधी समझ गांधी-चिंतन का महत्वपूर्ण और मजबूत पक्ष है। उनका यह कहना काबिलेगौर है कि मैं किन्हीं नये सत्यों का प्रतिनिधित्व नहीं करता। जो सत्य गांधी जानते-मानते हैं, जो उनके विचार में चिरंतन हैं, उसका अनुगमन और प्रतिनिधित्व करने की कोशिश भी करते हैं। गांधी-चिंतन में 'सत्य' केंद्र-बिंदु है। वे अनुगमन और प्रतिनिधित्व अगर किसी का करते हैं तो इसी 'सत्य' का, किसी और का हरगिज नहीं।

वे साफ शब्दों में कहते हैं कि मैं अनेक पुराने सत्यों पर नयी रोशनी डालता हूँ। गांधीजी की दृष्टि में पुराना, चिरंतन 'सत्य' भी एक नहीं, अनेक हैं और नया सत्य भी। वे पुराने सत्यों पर नयी रोशनी डालते हैं। नये परिप्रेक्ष्य में पुराने सत्यों की व्याख्या करते हैं उसे नवीन संदर्भ और अर्थवत्ता प्रदान करते हैं। जिन्हें विचार की व्यापक परम्परा का अभिज्ञान नहीं, उन्हें यह मौलिक लगता है। गांधीजी इससे भली-भाँति अवगत हैं, फिर वे स्वयं को किसी नये सत्य का प्रस्तावक कैसे कहें ? पर लोग हैं कि उन्हें पुराने सत्य नहीं दिखते, वे नयी रोशनी मात्र ही देख पाते हैं। और इस रोशनी को ही नया सत्य मानने-बताने की जिद करते हैं। जो लोग इस रोशनी के पार जाकर अनेक सत्यों की बहुल परंपरा देखने में सफल होते हैं, वे मानते हैं कि गांधीजी भारत की विशाल परम्परा के मौलिक प्रतिनिधि हैं। इसलिए

गांधी-चिंतन के इंद्रधनुष में वे अनेक रंगों को लक्षित भी कर पाते हैं। विचार-दर्शन परम्पराओं के ये इंद्रधनुषी रंग गांधी विचार को सौंदर्य एवं गहराई प्रदान करते हैं और मजबूत भी बनाते हैं।

2 दिसंबर 1926 के 'यंग इंडिया' में भी उन्होंने इसरार किया कि "मैंने कोई नये सिद्धांत प्रस्तुत नहीं किए हैं बल्कि पुराने सिद्धांतों को ही पुन स्थापित करने का प्रयास किया है।"

गांधीवाद की चर्चा जोर-शोर से होती थी। यही वजह है कि अलग-अलग संदर्भ और प्रसंग में गांधीजी इस पर जोर देकर अपना मत स्पष्ट करते थे। 'हरिजन' (28 मार्च 1936) में उन्होंने पूरी साफगोई से कहा है, "गांधीवाद जैसी कोई चीज नहीं है और मैं अपने बाद कोई सम्प्रदाय छोड़कर जाना नहीं चाहता। मैं यह दावा नहीं करता कि मैंने किसी नये सिद्धांत को जन्म दिया है। मैंने तो सनातन सत्यों को अपने दैनंदिन जीवन और समस्याओं के समाधान में अपने ढंग से लागू करने का प्रयास भी किया है- दुनिया को सिखाने के लिए मेरे पास कोई नयी बात नहीं है। सत्य और अहिंसा उतने ही पुराने हैं जितने पर्वत। मैंने केवल इन दोनों को लेकर बड़े-से-बड़े पैमाने पर प्रयोग करने का प्रयास किया है। ऐसा करते समय मुझसे गलतियाँ हुई हैं और इन गलतियों से मैंने सबक लिया है। इस प्रकार, जीवन और उसकी समस्याओं ने मेरे लिए सत्य और अहिंसा पर आचरण के अनेक प्रयोगों का रूप ले लिया है।"

गांधी की मनोभूमि के मुताबिक कोई उनका अनुगामी भी नहीं हो सकता, भक्त तो दूर की बात है। इस लिहाज से गांधी अपवादस्वरूप हैं। ऐसे देश-काल में जब कई बड़े समझे जाने वाले लोग भी इस लोभ का संवरण नहीं कर पाते और अपने साथियों तक को अनुयायी बनने के लिए प्रेरित करते हैं यह प्रचारित-प्रसारित करते हैं कि उन्होंने सत्य की खोज कर ली है और एक मात्र सत्य यही है, शेष सबको महज अनुगमन करना है। तमाम ज्ञान-विज्ञान के विकास के बावजूद यह प्रवृत्ति आज और भी प्रबल हुई है, यह कहने की जरूरत नहीं! गांधी किसी को अपना अनुगामी नहीं मानते। वे साफ-साफ शब्दों में (2 मार्च 1940 हरिजन) कहते हैं, कोई यह न कहे कि वह गांधी का अनुगामी है। अपना अनुगमन मैं स्वयं करूँ, यही काफी है। मुझे पता है, मैं अपना कितना अपूर्ण अनुगामी हूँ, क्योंकि मैं अपनी आस्थाओं के अनुरूप जी नहीं पाता। आप मेरे अनुगामी नहीं हैं बल्कि सहपाठी हैं, सहयात्री हैं, सहखोजी हैं और सहकर्मी हैं।

यहाँ दो बातों पर ध्यान देने की जरूरत है। एक, ऐसा व्यक्ति जो संख्या के लिहाज से खुद को अपना अनुगमन करने हेतु पर्याप्त मानता हो, साथ ही स्वयं को भी खुद का अपूर्ण अनुगामी कहता हो, यह समझता हो कि मैं भी अपनी आस्थाओं के अनुरूप जी नहीं पाता और वह व्यक्ति महात्मा गांधी हो तो उसकी आस्था की विराटता का अनुमान किया जा सकता है। दूसरी बात यह कि गांधी के यहाँ कोई अनुगामी नहीं है। गांधी जिस सत्य की तलाश में अहिंसा की राह पर चल रहे हैं जिसे हम गांधी-मार्ग कह सकते हैं उस पर विश्वासपूर्वक चलने वाले सहपाठी, सहयात्री, सहखोजी और सहकर्मी तो हो सकते हैं, अनुगामी या अनुयायी तो कतई नहीं। गांधीजी के बारे में सभी वाकिफ हैं कि वे ऐसा कुछ नहीं कहते जिस पर पहला कदम खुद न उठा सकें। यह उनका जीवन-सत्य है। ऐसा शख्स भी स्वयं को खुद का अपूर्ण अनुगामी कहे तो इसकी अभिव्यंजना सहज ही समझी जा सकती है।

अव्वल तो यह कि गांधीजी ऐसे किसी व्यक्ति को अपना अनुगामी बनाना नहीं चाहते जो उनके हर कहे-अनकहे का अनुसरण करे। वे लोगों को परामर्श देते हैं। गोया उन्हें परामर्शदाता की भूमिका से परहेज नहीं; शर्त इतनी भर कि जब तक गांधीजी का परामर्श उस व्यक्ति के दिलो-दिमाग को सही न लगे, तब तक उसे मानने की जरूरत नहीं। ऐसे वक्त में जब अनेक लोग गांधीजी के एक कथन पर अपना पूरा जीवन होम करने के लिए तत्पर हों, वे जोर देकर कहते हैं (हरिजन, 15 जुलाई 1939) कि जिसे सचमुच अपने अंदर की आवाज सुनाई देती है, उसे मेरा परामर्श मानने की खातिर अपने अंदर की आवाज की अवज्ञा नहीं करनी चाहिए। अपनी यह बात दूसरे शब्दों में भी अभिव्यक्त करते हैं, "मेरा परामर्श उन्हीं के अनुसरण के लिए है जिन्हें अपने अंदर की आवाज का बोध नहीं है और जिन्हें मेरे अपेक्षाकृत अधिक अनुभव तथा सही निर्णय लेने की क्षमता पर भरोसा है।" मतलब साफ है। वे किसी को न तो अनुगामी बनाना चाहते हैं और न ही अंधभक्त इसलिए इसरार करते हैं कि जिसे सचमुच अंदर की आवाज सुनाई देती हो, उसे अपनी सुननी चाहिए न कि गांधीजी की। गांधीजी अपने सुनने वालों से अपेक्षा करते हैं कि केवल भावातिरेक में उनकी बातों पर अमल न करे। वे दिल और दिमाग दोनों पर जोर देते हैं। आशय है कि निर्णय में भावना और बुद्धि दोनों का सामंजस्य हो। गांधी-मार्ग पर चलने वालों से कामना सिर्फ इतनी कि भावना और बुद्धि किसी की उपेक्षा न करें। किसी एक को दूसरे से कमतर न मानें। दिल भावना पर जोर देता है तो दिमाग तर्क पर। दोनों साथ होते हैं तो भावना तर्क से पुष्ट होती है और तर्क भी महज बुद्धि-विलास का अभिप्रेत नहीं होता। तर्क विहीन भावना विवेक शून्य बना देती है और अंध-भक्ति के लिए प्रेरित करती है। भावना रहित तर्क चालाकी और धूर्तता की जमीन तैयार करता है, संवेदनहींन भी बना देता है। कहना होगा कि सिर्फ तर्क की भावना मनुष्य की संवेदनाशीलता और मानवीयता को निगल जाती है तो केवल भावना का तर्कभावना मात्र पर आधरित तर्क-भी दूसरे का पक्ष देखने-समझने से इंकार कर असंवेदनशील बनने की दिशा में धकेल देता है। इसलिए गांधी-मार्ग पर चलने का सच्चे मायने में अधिकारी वही है जिसका भावनात्मक लगाव तर्क से परिचालित हो और तार्किकता भावना रहित न हो। दरअसल तर्क और भावना (बुद्धि और हृदय) को निहायत भिन्न और परस्पर विरोधी देखने-समझने की बौद्धिक रवायत रही है। गांधी के शब्द और कर्म इसका रचनात्मक प्रतिवाद करते हैं। हमें भूलना नहीं चाहिए कि तर्क की भी भावना होती है और भावना का भी तर्क होता है।

मलिकंदा सम्मेलन में गांधीजी ने इसरार किया कि "आपको 'गांधीवाद' नाम को ही छोड़ देना चाहिए नहीं तो आप अंध-कूप में जाकर गिरेंगे। " इन्होंने 'वाद' की परिणति सम्प्रदाय बनने और बनाने में देखी। कहा कि,

"आप सांप्रदायिक न बनें। (यह) मेरे ख्वाब में भी नहीं आया। मेरे मरने के बाद मेरे नाम पर अगर कोई सम्प्रदाय निकला तो मेरी आत्मा रूदन करेगी। इतने बरसों तक हमने जो चीज चलाई, वह कोई वाद नहीं है। हमें किसी वाद में नहीं पड़ना है मौन धारण करके अपने सिद्धांतों के अनुसार सेवा करते रहना है। लोग चाहे जो कहें, सेवा का कोई सम्प्रदाय नहीं बन सकता। वह तो सबके लिए है। हम

सबको स्वीकार करेंगे। सबके साथ चलने की कोशिश करेंगे। यही अहिंसा का रास्ता है। अगर हमारा कोई वाद है तो वह यही है। गांधीवाद कोई चीज नहीं। "

गांधी का रास्ता अहिंसा का है। इसमें सबके लिए सेवा-भाव है। गांधी की भाषा कोमल होती थी। यह सौम्यता की भाषा है। अपवादस्वरूप ही कठोर भाषा का प्रयोग दिखता है उनके लेखन या भाषण में। 'वाद' के बारे में वे कहते हैं कि यह 'निकम्मी चीज' है। इसलिए वे सम्प्रदाय के अर्थ में 'गांधीवाद' से सहमत नहीं हैं। वे कहते हैं

"गांधीवाद का ध्वंस हो' की आवाज मुझे प्यारी लगती है। वाद का तो नाश ही होना उचित है। वाद तो निकम्मी चीज है। असली चीज अहिंसा है। वह अमर है। वह जिंदा रहे, इतना मेरे लिए काफी है। गांधीवाद का ध्वंस तो मैं शीघ्र ही देखना चाहता हूँ। "

इतिहास में ऐसा उदाहरण शायद ही मिले कि किसी नेता, विचारक या दार्शनिक ने इतनी स्पष्टता से अपने नाम के साथ जुड़े 'वाद' के प्रति निरपेक्ष भाव से विचार प्रकट किया हो।

जेहन में यह सवाल उठता है कि लोग 'गांधीवाद' का अभिप्राय क्या समझते थे ? इसके विरोधी हों या समर्थकय इस शब्द के जरिये क्या अर्थ ग्रहण करते थे ? और आज भी इससे क्या मतलब हासिल करते हैं ?

गांधी का नाम लेते ही एकबारगी दो शब्द मस्तिष्क में आते हैं सत्य और अहिंसा। ये गांधी के बीज भाव हैं। गांधी-चिंतन में सत्य और अहिंसा परस्पर संबद्ध विचार-प्रत्यय के रूप में दिखते हैं। दुनिया के तमाम विचार, धर्म, दर्शन, 'सत्य' के नाम पर ही सामने आये। पर, अपने 'सत्य' के नाम पर दूसरों के 'सत्य' का कितना हनन हुआ, मानव-सभ्यता इसकी गवाह है।

गांधी-दर्शन में अहिंसा का वितान काफी विस्तृत है और बहुआयामी भी। मूल्य के तौर पर अहिंसा साधन भी है और साध्य भी। गांधी के लिए सत्य और अहिंसा सिद्धांत मात्र नहीं हैं। वे लिखते हैं "सत्य और अहिंसा कोई आकाश-पुष्प नहीं हैं। वे हमारे प्रत्येक शब्द, व्यापार और कर्म से प्रकट होने चाहिए।" वे सत्य और अहिंसा को दुनियावी जीवन में उतारना चाहते हैं। इसे सिद्धान्त से आगे जीवन के हर क्षेत्र में सिद्ध करना चाहते हैं। सत्य के संदर्भ में कहते हैं

"आज कहा जाता है कि सत्य व्यापार में नहीं चलता, राज-प्रकरण में नहीं चलता। तो फिर वह कहाँ चलता है ? अगर सत्य जीवन के सभी क्षेत्रों में और सभी व्यवहारों में नहीं चल सकता, तो वह कौड़ी कीमत की चीज नहीं है। जीवन में उसका उपयोग ही क्या रहा ? मैं तो जीवन के हर व्यवहार में उसके उपयोग का नित्य नया दर्शन पाता हूँ। "लोग गांधी के दौर से लेकर आज तक सत्य को सबसे बड़ा मूल्य स्वीकार करते हैं पर साथ ही राजनीति, व्यापार सरीखे क्षेत्र के लिए इसे अनुपयुक्त मानते हैं। 'सत्य' में ईश्वर तक का दर्शन करने वाले गांधी का आस्तिक मन आहत होता था ऐसे विचारों से। कारण कि वे जीवन के हर क्षेत्र, प्रत्येक आयाम और सभी व्यवहार में इसे आजमाते थे, प्रयोग करते थे और कारगर भी पाते थे। इसके जरिये सत्य का नित्य नवल दर्शन करते थे। अगर कभी कारगर न पाते तो इसे अपनी कमी मानते न कि सत्य की। वे पुनः प्रयोग करते। फिर आजमाते। उनका दृढ़ विश्वास था सत्य पर। कहना न होगा कि गांधीजी सत्य को लाभ-लोभ के परिप्रेक्ष्य में नहीं आँकते। जो लोग

तात्कालिक लाभ-लोभ की परवाह करते हैं, वे सत्य को जीवन के सभी कार्य-व्यापार में कारगर नहीं मानते। बावजूद इसके, सिद्धांत के रूप में सत्य की महत्ता कोई अस्वीकार नहीं करता। अलबत्ता अहिंसा का विरोध गांधी-काल में भी खूब हुआ और आज भी देखने-सुनने को मिलता है।

अहिंसा का विरोध करने वाले सभी लोगों के तर्क एक-से नहीं हैं। अहिंसा को मानने वालों की राय में भी एका नहीं है। इसे स्वीकार और विरोध करने वाले ऐसे बहुतायत में मिलते हैं जो निजी गुण के रूप में इसे जायज मानते हैं। ऐसे लोगों के लिए व्यक्तिगत गुण के तौर पर अहिंसा स्वीकृत हो सकती है, सार्वजनिक विशेषता के रूप में नहीं। गांधी-विचार में ऐसा नहीं है। उनके यहाँ हिंसा न तो सिर्फ मनोवैज्ञानिक समस्या है और न अहिंसा व्यक्तिगत गुण मात्र। गांधी इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं-

"अहिंसा अगर व्यक्तिगत गुण है तो वह मेरे लिए त्याज्य वस्तु है। मेरी अहिंसा की कल्पना व्यापक है। वह करोड़ों की नहीं हो सकती, वह मेरे लिए त्याज्य है, और मेरे साथियों के लिए भी त्याज्य ही होनी चाहिए। हम तो यह सिद्ध करने के लिए पैदा हुए हैं कि सत्य और अहिंसा केवल व्यक्तिगत आचार के नियम नहीं हैं। वह समुदाय, जाति और राष्ट्र की नीति हो सकती है। -मेरी श्रद्धा इतनी गहरी है। इसे सिद्ध करने के लिए मैं जीऊँगा और उसी प्रयत्न में मरूँगा। -मेरा यह विश्वास है कि अहिंसा हमेशा के लिए है। वह आत्मा का गुण है, इसलिए वह व्यापक है, क्योंकि आत्मा तो सभी के होती है अहिंसा सबके लिए है, सब जगहों के लिए है, सब समय के लिए है। अगर वह दरअसल आत्मा का गुण है, तो हम सबके लिए वह सहज हो जाना चाहिए। "

ऐसी अगाध श्रद्धा थी गांधी की अहिंसा पर। अदम्य विश्वास था उनका। क्या यह कहने की जरूरत है कि सत्य और अहिंसा की राह पर चलना ही वह कारण था कि एक क्रूर पागल ने उनकी हत्या की ?

गांधी-दर्शन में सत्य-अहिंसा की व्यापकता इतनी अधिक है कि वह हर जगह मुमकिन है। धरती के हर कोने में। यह आकाश-कुसुम नहीं है कि मस्तिष्क के विचार-व्यापार में ही रहे। बुद्धि-विलास के लिए यह हरगिज नहीं है। इसकी भौतिक जमीन है। यह भाववादी प्रत्यय तो बिल्कुल नहीं है। अहिंसा की जड़ें समाज और संस्कृति में नहीं देख पाने के कारण कई लोग इसे भाववाद से जोड़ते हैं। ऐसे लोगों को हिंसा का भौतिकवाद से रिश्ता दिखता है, पर अहिंसा का नहीं। दरअसल हिंसा की विचारधारा और विचारधारा की हिंसा ऐसे लोगों के अवचेतन में जड़ जमा लेती है। ऐसे लोग हिंसा को ऊपरी तौर पर स्वीकार करने से परहेज करें, पर विचारधारात्मक हिंसा का कारण ढूँढ ही लेते हैं, भले ही भौतिकवाद के नाम पर। गांधी की 'प्रौढ़ बात' समझ न पाने के कारण अनेक लोग यह आरोप उल्टे गांधी पर मढ़ देते हैं कि हिंसा की भौतिक संरचना की उपेक्षा कर रहे हैं कि उसे मनोवैज्ञानिक सवाल मान रहे हैं।

क्या यह कहने की जरूरत है कि अभी भी अहिंसा का शास्त्र पूर्णरूपेण बन नहीं पाया है, भले ही अहिंसा चाहे जितनी पुरानी हो। मनुष्य जाति की जितनी प्रतिभा हिंसा के विभिन्न उपकरणों-उपादानों की खोज में लगती है, उसका अल्पांश ही हिंसा की शास्त्र-निर्मिति में लगता है। हिंसा के संरचना-निर्माण में मानव-सभ्यता का बहुलांश लगा है। यह गांधी को चिंतित करता था। वे अपने साथियों से सत्य-अहिंसा का शास्त्र गढ़ने, इस दिशा में नये-नये शोध करने के लिए अपील करते थे,

"हिंसा के आधार पर बना हुआ समाज भी विशारदों द्वारा ही चलता है। हम एक नये समाज का निर्माण सत्य और अहिंसा के आधार पर करना चाहते हैं। उनका शास्त्र बनाने के लिए हमें विशारदों की जरूरत है। जिस तरह से आज जगत चल रहा है, वह हिंसा और अहिंसा का मिश्रण है। जगत का बाह्य रूप उसकी भीतरी हालत का प्रतीक है। जर्मनी जैसा मुल्क जो हिंसा को ही ईश्वर मानता है, रात-दिन उसी के विकास में लगा है, उसी को सुशोभित करने की कोशिश में लगा हुआ है। हिंसा के पुजारी जो-जो कर रहे हैं, हम देख रहे हैं। "

गांधीजी यह समझ रहे थे कि, "हिंसा का मार्ग पुराना और रूढ़ है। उसमें खोज करना उतना कठिन नहीं है, अहिंसा का रास्ता नया है। अहिंसा का शास्त्र अभी बन रहा है। हम उसके सारे अंग नहीं जानते। इसमें खोज और प्रयोग का विशाल क्षेत्र पड़ा है। आप अपनी सारी बुद्धि लगा सकते हैं। "

क्या यह कहने की आवश्यकता है कि कितने विशारदों ने अपनी बुद्धि लगायी अहिंसा के विशाल क्षेत्र की खोज में या अहिंसा का प्रयोग करने में। अब तो लगभग सारी दुनिया के देश जर्मनी की राह पर ही दौड़ रहे हैं। गांधी के दौर की जर्मनी को पछाड़ भी चुके हैं। तमाम विशारदों की बुद्धि भी इसी में अपना लाभ और भविष्य देख रही है।

हिंसा की तुलना में अहिंसा का दर्शन नया है। अहिंसा का विचार समाज में मौजूद रहा है। इसकी जड़ें गहरी धँसी हैं। लेकिन जैसे जीवन-जगत के हर क्षेत्र में, राज-काज से समाज-काज तक, गांधीजी प्रयोग कर रहे थे, उस तरह बड़े पैमाने पर उसके प्रयोग की मिसाल न के बराबर रही है। इसीलिए गांधीजी अहिंसा को लेकर लगातार प्रयोग पर बल दे रहे थे। अहिंसा के संदर्भ में नये-नये शोध करने के लिए बुद्धि-विशारदों से अपील भी कर रहे थे।

सत्य और अहिंसा को लेकर प्रतिरोध के नये तरीकों की खोज करते हुए गांधीजी 'सत्याग्रह' तक पहुँचे थे। इसमें विसम्मति प्रगट करने से लेकर विरोध में सड़क पर उतरना भी शामिल था। संघर्ष का यह रास्ता इतना नया और जोखिम भरा था कि लोग इसे सर्वथा अपरिचित मान रहे थे। गांधी सत्य और अहिंसा पर आधारित ढाँचा और साँचा तैयार कर रहे थे। इसका नूतन होना मालूम था उन्हें।

"हमने एक अनोखी नीति को लिया है। उस नीति के प्रयोग के साधन भी अनोखे होंगे। वे क्या होंगे, उसकी मैं खोज करता रहता हूँ। प्रयोग कर रहा हूँ। बदलती हुई परिस्थिति में मुझे अपने तरीके भी बदलने पड़ते हैं। लेकिन मेरे पास कोई बना-बनाया शास्त्र नहीं है। हमारा प्रयोग एकदम नया है। उसके कदमों का क्रम कहीं निश्चित नहीं है। मैं तो एक जिज्ञासु हूँ। सत्याग्रह के विज्ञान की खोज और विकास मैं धीरज के साथ कर रहा हूँ। इस खोज से नित नया ज्ञान और नित नया प्रकाश पा रहा हूँ। "

लोग संघर्ष के इस तरीकों को गांधी से जोड़कर 'गांधीवाद' कहते थे। जबकि प्रयोग में परिस्थिति के साथ आये बदलावों को भी विकास-क्रम में नहीं देख पा रहे थे। और उसका विरोध भी करते थे अहिंसा पर आधारित यह संघर्ष गांधी के मुताबिक वीरों का धर्म है पर लोग इसे डरपोक का मजबूरी में उठाया कदम समझ रहे थे। गांधी की मजबूती के पर्याय को कमजोर का अस्त्र समझने की भूल हो रही थी। ऐसी गलती सिर्फ अहिंसा के विरोधी ही कर रहे होते तो उतनी चिंता की बात न थी। गांधी के पीछे चलने वालों में से भी कुछ ऐसा भाव रखते थे, यह तथ्य उन्हें ज्यादा व्याकुल करता था।

"अगर हमारी अहिंसा वीर की अहिंसा न होकर कमजोर की अहिंसा है, अगर वह हिंसा के सामने झुकती है, हिंसा के आगे लज्जित और बेकार हो जाती है तो ऐसे गांधीवाद का भी ध्वंस होना चाहिए। उसका ध्वंस होने ही वाला है। हम अंग्रेजों से लड़े, मगर उसमें हमने अशक्त लोगों के शस्त्र के रूप में अहिंसा का प्रयोग किया। अब हम उसे बुलंद, शक्तिशाली का शस्त्र बनाना चाहते हैं। अहिंसा एक हद तक अशक्तों का शस्त्र भी हो सकती है। लेकिन एक हद तक ही। परंतु वह बुजदिलों का, कायरों का शस्त्र तो हरगिज नहीं हो सकती। "

सत्य और अहिंसा के बारे में गांधी की निजी भावना उदात्त है। इसमें वे किसी तरह का हीला-हवाला नहीं देते। कोई समझौता नहीं करते। अगर इसका पालन ठीक से नहीं होता तो वे जरा भी नहीं बख्शते। चाहे इसका नाम गांधी से जोड़कर 'गांधीवाद' ही क्यों न कहा जा रहा हो, उसके नाश की कामना करने में लेश भर भी नहीं हिचकते।

सत्य और अहिंसा गांधी-चिंतन के निर्गुण-भाव हैं। जीवन-जगत में भले ही हर पल देखा-महसूस किया जाता हो और व्यवहार में भी लाया जाता हो, पर है तो निराकार ही। उनके चिंतन का सगुण भाव है चरखा। गांधी का नाम लेने पर जैसे सत्य और अहिंसा शब्द मस्तिष्क में उगते हैं, वैसे ही चरखा का बिंब या चित्र आंखों के सामने बनता है।

लोकमान्य तिलक के निधनोपरांत गांधीजी ने तिलक स्वराज फंड बनाकर इसके जरिये चरखे का व्यापक प्रचार-प्रसार किया प्रयासों के कारण चरखा राष्ट्रीय आंदोलन का अनिवार्य उपादान बना। इसके माध्यम से स्वदेशी आंदोलन मजबूत हुआ और गहरा भी। गांधीजी ने चरखे के जरिये अंग्रेजी साम्राज्यवाद की अर्थव्यवस्था को चुनौती दी। चरखा से हाथों को काम मिला। इसके सूत से लोगों को मिला पेट के लिए भोजन और तन ढँकने के लिए कपड़ा। इस हुनर ने लोगों को स्वावलंबी बनाया। आत्मसम्मान की भावना पल्लवित हुई। आम लोग स्वाधीनता की आर्थिकी समझने लगे। गांधीजी के चरखा-प्रयोग पर बल देने के कारण इसकी लोकप्रियता इस कदर बढ़ी कि उनके नाम के साथ चरखा चस्पां हो गया। धीरे-धीरे चरखा स्वाधीनता आंदोलन का प्रतीक बन गया।

जिक्रतलब यह है कि गांधीजी किसी भी विचार या वस्तु को प्रतीक बनाने के पक्षधर नहीं। प्रतीकीकरण उनके विचार से मेल नहीं खाता। आखिर प्रतीक से वे परहेज क्यों करते थे ? इसका सीधा जवाब प्रतीक के साथ अनिवार्यतः जुड़ा इसका कमजोर पक्ष है। प्रतीक में जितनी पवित्रता और प्रतिबद्धता अपेक्षित होती है, वह धीरे-धीरे नष्ट होती जाती है। समय के साथ एक कामचलाऊपन की प्रवृत्ति पनपने लगती है। प्रतिबद्धता के स्थान पर प्रतीक के साथ कट्टरता पैदा होती है और अंधश्रद्धा भी। इसके इर्द-गिर्द पाखण्ड भी निर्मित होने लगता है। गांधी का मानस इसे स्वीकार नहीं कर सकता।

लोग भले चरखे में स्वदेशी की आर्थिकी और स्वराज-प्राप्ति का मार्ग देख रहे हों साथ ही गांधीजी द्वारा चरखा को केन्द्र में रखकर विकास की रूपरेखा को भी बड़े पैमाने पर समझ रहे हों पर गांधीजी के लिए चरखा इतना ही नहीं था। वे इसकी ध्वनि में संगीत सुनते थे। इसको चलाना आध्यात्मिक अनुभव था। उनके लिए चरखा अहिंसा से जुदा नहीं था। उनका चरखा व्यापक और बहुआयामी अर्थबोध से भरा था। वे चरखा को सूत कातने वाला महज यंत्र नहीं समझते थे, पर विरोध करने वाले स्वर इससे ज्यादा

देख नहीं पा रहे थे। और इसे सीमित कर रहे थे। विडंबना तो यह है कि चरखा चलाने वाले काफी लोग और गांधी से जुड़े कतिपय नेता भी चरखा को यंत्र मात्र ही समझते थे। कहने की जरूरत नहीं कि मौजूदा दौर में भी गांधी की आलोचना की एक बड़ी वजह चरखा है। इस चरखा के कारण लोग उन्हें तकनीक विरोधी समझ लेते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश के नियंता भी यह सोचते थे आज भी ऐसा सुनने को मिलता है कि चरखा चलायेंगे तो देश पीछे रह जायेगा।

चरखा प्राथमिक तौर पर यंत्र है। गांधी ने चरखा में काफी अनुसंधान करवाया था। विकास भी हुआ चरखे का। पर इस यंत्र के साथ गांधी ने जिस संरचना की कल्पना की थी उसकी भरपूर उपेक्षा हुई। दिलचस्प यह है कि एक तरफ चरखा पर आधारित उनकी कल्पित संरचना विचार-विमर्श से बाहर रखी गयी, चरखा-भावना की कद्र तक न की गई दूसरी तरफ लोगों ने चरखा को यंत्र मात्र मानकर गांधी की एक छवि बनाई और समाज के सामने प्रस्तुत की। गांधी की पीड़ा कितनी बढ़ जाती होगी यह देखकर कि विरोधी और समर्थक दोनों उसकी भावना को समझ नहीं पा रहे हैं और चरखा को सिर्फ यंत्र समझ रहे हैं। उनके कथन से इस अभिप्राय को समझा जा सकता है

"अगर गांधीवाद का अर्थ सिर्फ यंत्र की तरह चरखा चलाना ही है तो उसका ध्वंस होना ही ईष्ट है। सिर्फ चरखा चलाने से देश का कल्याण नहीं होगा। पुराने जमाने में भी कई पंगु और स्त्रियाँ चरखा चलाती थीं तो वे भी गुलामी में डूबी हुई थीं। कौटिल्य ने जो लिखा है कि उस जमाने में चरखे चलाये जाते थे, उसी के साथ-साथ उन्होंने यह भी लिखा है कि राजदंड के डर से चरखा चलवाया जाता था। चरखा चलाने वाले अपनी इच्छा से नहीं, बल्कि मजबूरी से, बेगार के तौर पर, चरखा चलाते थे। औरतें चरखा चलाने के लिर हारबंद (कतार में) बैठती थीं, लेकिन वह सब जबरदस्ती का मामला था। अगर हमारा मतलब फिर से उसी चरखे को जारी करने से है, तब तो उस चरखे का ध्वंस ही होना चाहिए और उस चरखे का महत्त्व मानने वाले गांधीवाद का भी ध्वंस होना चाहिए। "

गांधी का अभिप्राय था कि जो कोई चरखा चलाये वह स्वेच्छा से चलाये। इसकी अहमियत समझकर सूत काते। इसके साथ ही चरखा पर टिकी संरचना को भी समझे।

गांधी-विचार का जब कभी सम्मेलन होता था, चरखा चलता था। पर सिर्फ इसे चलता देख खुश नहीं होते थे गांधी। वे कहते थे,

"हमें यह देखना चाहिए कि हम चरखा चलाते हैं तो क्या उसमें से हममें अहिंसा की शक्ति पैदा होती है ? सम्मेलन में सूत्र-यज्ञ के समय मात्र दो से चार तक चरखा चलाते हैं, क्या उस वक्त आप उसका अहिंसा से अनुसंधान करते हैं। क्या उसमें से आपकी अहिंसा की शक्ति नित्य बढ़ती रहती है ? कोई दो घंटे में छह सौ गज काते या एक घंटे में छह सौ गज काते, उसका महत्व तो है, लेकिन सबसे महत्त्व का सवाल तो यह है कि क्या कातने से हमारी अहिंसा -शक्ति बढ़ी ? हमारा अहिंसा का दर्शन बढ़ा ? अगर हमारा चरखा हमारी अहिंसा को नित नया बल नहीं देता, हमारा अहिंसा का दर्शन नहीं बढ़ता तो मैं कहता हूँ कि गांधीवाद का ध्वंस हो। "

अहिंसा-दर्शन की श्रीवृद्धि के साथ असम्बद्ध मानकर चरखा चलाने और उससे अच्छा-भला सूत कात लेने वाले की तुलना गांधीजी ने जड़वत माला फेरने वाले से की और इसे आत्मवंचना माना। यही

वजह है कि वे देश में तमाम चरखा चलाने वालों को 'गांधी सेवा संघ' में शामिल नहीं करना चाहते। स्मरणीय तथ्य है कि प्राथमिक तौर पर चरखा और उससे काते गए सूत की आर्थिकी को गांधी तवज्जो देते थे पर चरखे की भूमिका यहीं तक सीमित नहीं मानते थे। वे इसकी भूमिका वृहत्तर परिप्रेक्ष्य में देखते थे। तभी वे यह कहते थे कि "चरखे में जो अर्थ भरे हैं उनको न समझकर अगर आप चरखा चलाते हैं तो या तो उसे पद्मा नदी में फेंक दीजिए या जलाकर जाइए। तब सच्चा गांधीवाद प्रकट होगा। सिर्फ चरखा चलाने तक ही जो गांधीवाद सीमित है, उसके लिए तो मैं भी कहूंगा कि 'गांधीवाद का ध्वंस हो। "

उन्होंने यह याद दिलाया है कि "वे लोग ध्वंस के नारे पागलपन में लगा रहे हैं, रोष में आकर कह रहे हैं। लेकिन मैं तो बुद्धिपूर्वक कह रहा हूँ। "

गांधी के हिसाब से अहिंसा का अनुसंधान करते हुए ध्यान पूर्वक चरखा चलाना है। चरखा और अहिंसा गांधी- दर्शन में एक-दूसरे से गहरे सम्बद्ध हैं और पूरक भी। ये गांधी- दर्शन के सगुण और निर्गुण रूप हैं।

गांधीजी के शब्द-कर्म और संदेश की भावना को न समझ इसे यंत्रवत मानने वाले नयी चुनौतियों के संदर्भ में गांधी-मार्ग को देखने में असफल साबित होते हैं। गांधी ने व्यक्ति, प्रकृति, समाज, देश और दुनिया के आपसी सम्बन्धों को जिस रूप में व्याख्यायित किया अपने युग की चुनौतियों को समझा और हल निकाला कहना होगा कि उसमें अंतर्निहित विचार-भाव आज की समस्याओं में भी राह सुझाते हैं।

गांधी-दर्शन में गत्यात्मकता है। जहाँ गति होगी, परिवर्तन भी होगा। इसलिए उसमें परिवर्तनशीलता भी है। गांधी -विचार नदी की कल-कल बहती घारा है, किसी सरोवर का ठहरा पानी नहीं। गांधी बदलती परिस्थितियों के हिसाब से विचार बदलने में हिचकते नहीं थे। करणीय और अकरणीय का जाग्रत विवेक था उनके पास। पहले कोई बात कह दी, इसलिए सदा उसका बचाव करना है गांधी उसे ठीक नहीं मानते थे। पूर्ववर्ती विचार की कमी का अहसास होते ही उसे नूतन समझ से परिवर्तित कर लेते थे। उनके विचार के प्रवाह को जो देखते हैं, उन्हें परेशानी नहीं होती। जो साँचे और खाँचे में देखने के आदी हैं, वे विचारों की प्रवहमानता को देख उलझ जाते हैं। गांधी के यहाँ नित्य नवनीत की अपेक्षा है। अपने पाठकों से वे (29 अप्रैल, 1933, 'हरिजन') इसरार भी करते हैं

"मेरे लेखों का मेहनत से अध्ययन करनेवालों और उनमें दिलचस्पी लेनेवालों से, मैं यह कहना चाहता हूँ कि मुझे हमेशा एक ही रूप में दिखाई देने की कोई परवाह नहीं है। सत्य की अपनी खोज में, मैंने बहुत से विचारों को छोड़ा है और अनेक नई बातें मैं सीखा भी हूँ। उमर में भले मैं बूढ़ा हो गया हूँ, लेकिन मुझे ऐसा नहीं लगता है कि मेरा आन्तरिक विकास होना बन्द हो गया है या देह छूटने के बाद मेरा विकास बन्द हो जाएगा। मुझे एक ही बात की चिन्ता है, और वह है प्रतिक्षण सत्य-नारायण की वाणी का अनुसरण करने की मेरी तत्परता। इसलिए जब किसी पाठक को, मेरे दो लेखों में विरोध जैसा लगे, तब अगर उसे मेरी समझदारी में विश्वास हो, तो वह एक ही विषय पर लिखे, दो लेखों में से, मेरे बाद के लेख को प्रमाणभूत माने।"

इस प्रवहमानता को गर 'गांधीवाद' कहने का लोभ संवरण न किया जाए (गांधीजी के बार-बार रोकने के बावजूद) तब यह सोचना होगा कि इस नवनीत अर्थ में भी 'गांधीवाद' रहे या न रहे ? स्वयं

गांधी क्या सोचते ? गांधीजी कतई नहीं चाहते कि केवल विचार मात्र के तौर पर उनके मत की मौजूदगी बनी रहे। कारण कि विचार-दर्शन प्रस्तावित करना उनके चिंतन का नियामक नहीं था। वे तो अपने देश-काल की चुनौतियों की नदी में गहरे उतरे थे। उससे पार पाने के क्रम में विचारों का हिलोरा निर्मित हुआ था। यही वजह है कि गांधी को जब अपना विचार नयी चुनौतियों के लिए नाकाफी लगता, स्वयं रद्दोबदल करते थे। लिहाजा वे 'वाद' के रूप में बचने या बचाये रखने का मोह क्यों करते! गांधी कामना करते थे मानवीय सभ्यता और संस्कृति के आदर्श रूप की, जो मनुष्य, परिवार, समाज, देश-दुनिया और प्रकृति के तमाम अंगों-उपांगों में बराबरी व अहिंसा के मूल्यों और पारस्परिकसम्बन्धों पर आधारित हो, अगर यह कायम हो जाये; तब भी 'वाद' के तौर पर क्यों कर रहे!

***

शांति का अंतरराष्ट्रीय संदर्भ

डॉ. राधा कुमारी[34]
डॉ. शीला राय[35]

आज जहाँ प्रत्येक राष्ट्र आन्तरिक संकटों से पीड़ित है, वहाँ अंतरराष्ट्रीय संकट उनसे भी भयानक रुप में वर्तमान विश्व के समक्ष हैं। प्रत्येक राष्ट्र शांति, व्यवस्था और लोककल्याण के नाम पर अपना स्वार्थ साधने में तत्पर है। वह समझता है कि जिस मार्ग का वह अनुसरण कर रहा है, वही विश्व के लिए सबसे अधिक हितकर मार्ग है। अपरिमित शक्ति को पाकर मानव की पाशविक वृत्तियाँ जाग उठी हैं और वह लोभ-भोग और पशुता की दुष्प्रवृत्तियों का शिकार बन गया है। उसका उपयोग अभ्युदय और विनाश दोनों के लिए समान रुप से संभव है। फ्रॉयड के शब्दों में यह कहा जा सकता है कि मनुष्य ने प्रकृति को वशीभूत करके अपनी शक्ति को उस बिन्दु पर पहुँचा दिया है, जब उसका उपयोग करके वह अपनी ही जाति के अंतिम प्राणों तक को मिटा देने में समर्थ हो सकता है। इस आशंका से आतंकित होकर आज का युग शांति की पुकार मचाने लगा है। यदि गम्भीरता से विचार करें तो स्पष्ट हो जायेगा कि विज्ञान की उन्नति भी इस बात के लिए प्रेरित कर रही है कि आज की विश्वव्यापी समस्याओं का समाधान अवश्य ढूँढा जाय।

गांधी ने अंतरराष्ट्रीय सन्दर्भों की विशिष्टता लक्षित कर शांति संस्थापन के प्रयासों की नई सूत्रबद्ध रुपरेखा प्रस्तुत नहीं की। तथ्य यह है कि भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अत्यन्त अल्पकाल तक जीवित रहने के कारण विभिन्न देशों के मध्य तनाव उपस्थित होने पर वे अपने विचारों को किस तरह क्रियान्वित करते तथा कहाँ तक सफलता अर्जित कर पाते, यह देख पाने का विश्व को मौका नहीं मिला। किन्तु यह स्थिति शांति के संदर्भ में गांधी के व्यवस्थित दृष्टिकोण के विश्लेषण की सम्भावना का निषेध नहीं करती। गांधी का समस्त जीवन मानव की अनेकानेक समस्याओं के समाधान से सम्बन्धित रहा। गांधी अनेक जगह कहते हैं कि मेरा जीवन ही मेरा संदेश है। अतः अंतरराष्ट्रीय शांति के गांधीय प्रतिमान के निरुपण के प्रयास में गांधी की विश्वजनीन दृष्टि की समीक्षा समीचीन लगती है। गांधी ने अपने जीवन काल के दौरान विश्व में युद्ध, अणुबम आदि के बारे में अनेक साक्षात्कारों के दौरान विचार व्यक्त किये, साथ ही राष्ट्रीय समस्याओं व अंतरराष्ट्रीय समस्याओं के समाधान के प्रति उनके दृष्टिकोण में साम्य पाया जाता है। गांधी के शांति प्रतिमान की रुपरेखा निर्मित करने में गांधी की शांति की अवधारणा सहायक सिद्ध होती है। अन्य शांतिवादियों की भाँति गांधी युद्ध के अभाव मात्र को शांति नहीं मानते। गांधी के लिए शांति एक सकारात्मक अवस्था है जिसमें युद्ध के अभाव के साथ प्रत्येक व्यक्ति को राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक समता और न्याय का सम्मानजनक स्तर प्राप्त हो

---

[34] सहायक प्रोफेसर, माता सुंदरी कॉलेज, दिल्ली
[35] प्रचार्या, सेण्ट जेवियर्स महाविद्यालय, जयपुर

सके। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अपने रचनात्मक कार्यक्रम जैसे चरखा चलाना, अस्पृश्यता निवारण, मद्य निषेध और बुनियादी शिक्षा के द्वारा वे स्थायी शांति की दिशा में प्रयासरत थे। सबसे प्रमुख बात यह है कि गांधी के लिए शांति की समस्या, मानव जीवन की आधारभूत समस्या थी, क्योंकि शांति को उन्होंने व्यापकतम सन्दर्भों में समझा। अतः गांधी का अंतरराष्ट्रीय शांति प्रतिमान उनके विकास दर्शन एवं कृत्यों की इसी समालोचना का परिणाम रहेगा। शांति और अंतरराष्ट्रीय सहयोग का प्रश्न दो पूरक दृष्टिकोणों से देखा जाता है। एक दृष्टिकोण राष्ट्रों एवं राज्यों के मध्य शांतिपूर्ण सहयोग का है। यह युद्ध से बचाव पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है। साथ ही इसमें वे रणनीतियाँ, प्रक्रियाएँ शामिल की जाती हैं जो कि तनाव को कम करती हैं, शक्ति के संतुलन में वृद्धि करती हैं एवं शस्त्र एवं सशस्त्र बलों को घटाने का प्रयास करती हैं और अंतरराष्ट्रीय समस्याओं का बातचीत से समाधान को प्रोत्साहित करती हैं। यह महाशक्तियों की प्रतिद्वन्द्विता, क्षेत्रीय संघर्ष, सुरक्षा, तकनीकी एवं संगठनात्मक अविष्कारों एवं अंतरराष्ट्रीय सम्बन्धों के विशाल अनुसंधान पर आधारित है ताकि शस्त्र नियंत्रण वार्ताओं के प्रबन्धन एवं शांतिकाल के दौरान राष्ट्रों के सैनिक एवं नागरिक समूहों के मध्य परस्पर सम्बन्धों को प्रोत्साहित किया जा सके।

दूसरा दृष्टिकोण जिसे हम गांधीय दृष्टिकोण कह सकते हैं, शांति को राष्ट्रों के मध्य नहीं अपितु व्यक्ति की अंतश्चेतना में तलाशता है।

निशस्त्रीकरण और शांति की समस्या वस्तुतः निशस्त्रीकरण और शांति की समस्या है ही नहीं, जैसा कि यह प्रतीत होती है। आज के मानव की सबसे बड़ी समस्या स्वयं मानव ही है। मानवता का अस्तित्व और इसके उच्च आदर्शों की प्राप्ति प्राणी मात्र को समझने पर ही संभव है।

जीवन के भौतिक पहलू को अधिक महत्व देने के कारण आत्मरक्षा ही मानव की सर्वोच्च प्राथमिकता बन गई है। मनुष्य के लिए शांति उसके भौतिक अस्तित्व के लिए किसी भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष खतरे की संभावना का अभाव मात्र है। उपनिषदों में कहा गया है कि परायेपन का भाव भय एवं खतरा उत्पन्न करता है किन्तु साथ ही साथ मनुष्य अकेला भी खुश नहीं रह सकता। वह अन्य लोगों की संगति चाहता है किन्तु पूर्णतया अपनी सुविधानुसार। वह अपनी भौतिक शक्ति में वृद्धि अपने पड़ोसी के प्रति प्रतिरोधक क्षमता के रुप में करता है। जिस भी तरफ से वह खतरा महसूस करता है वह उसे अपने नियंत्रण में कर लेना चाहता है।

वेदों में ऋषियों ने समस्त पृथ्वी, मध्य आकाश, स्वर्ग, समस्त वनस्पतियों के लिए शांति की कामना की किन्तु मनुष्य ने समस्त पृथ्वी, वायु, अंतरिक्ष एवं प्रकृति को अपने नियंत्रण में लाने हेतु नियोजन किया। सर जेम्स एल्फ्रेड विंग ने 1932 में मनुष्य को चेतावनी दी कि क्या मनुष्य विज्ञान पर नियन्त्रण के लिए उपयुक्त है? मनुष्य के हाथों में स्वयं को नियंत्रित कर पाने में समर्थ होने से पूर्व ही प्रकृति की शक्ति को नियंत्रित करने की सामर्थ्य आ गई है। सर जोसिया स्टाम्प ने समस्त जगह फैलते इन रोगों के कारणों का सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया है जिनमें कुछ मुख्य इस प्रकार हैं-

1.आज तक पदार्थ विज्ञान पर बहुत अधिक ध्यान दिया गया किन्तु मानव के विज्ञान पर बहुत ही कम।

2.भौतिक एवं पदार्थ विज्ञान ने समाज विज्ञानों को एकदम किनारे पर कर दिया है तथा वैज्ञानिक खोजों एवं उनकी सामाजिक संदर्भों में प्रयुक्ति के मध्य अंतराल की प्रवृति बढ़ती जा रही है।

3.मानव की नैतिक और आध्यात्मिक प्रकृति और उसकी बौद्धिक उन्नति साथ-साथ नहीं चल पाये हैं।

4.मनुष्य ने बाह्य जगत पर विजय प्राप्त कर ली है और प्रकृति की शक्ति को नियंत्रित कर लिया है लेकिन उसे अभी भी आंतरिक जगत को विजित करना है और उसकी आंतरिक प्रकृति की शक्तियों पर नियंत्रण प्राप्त करना है।

शांति एक सकारात्मक वस्तु है। यह एक ऐसी जीवन पद्धति है जो सत्य, अहिंसा, प्रेम पर आधारित है। भौतिक सम्पत्ति में वृद्धि मात्र से शांति न तो स्थापित होगी, न हो सकती है। विज्ञान और अभियांत्रिकी में प्रगति ने उत्पादन और यातायात की समस्या लगभग हल कर दी है। विज्ञान भौतिक सम्पदा में अभिवृद्धि तो कर सकता है किन्तु यह मनुष्य में आपस में वितरण की इच्छा उत्पन्न नहीं कर सकता। इस सम्पूर्ण भौतिक सम्पदा के पश्चात् भी जब तक इच्छाओं को सीमित करना तथा विचारों का सार्वभौमिकीकरण नहीं होगा तक तक पृथ्वी पर शांति स्थापित नहीं होगी।

लम्बे समय तक विकास को आर्थिक वृद्धि का पर्याय माना गया। उत्पादन को वृद्धि दर को अधिकतम करना तथा भौतिक कल्याण को ही उच्च प्राथमिकता दी गई। समस्त ध्यान साध्य पर ही केन्द्रित किया गया पर इस साध्य की प्राप्ति के लिए अपनाए साधनों की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। निवेश की उच्च दर विशेषतः भौतिक पूँजी, विशाल पूंजी गहन संयत्रों और तकनीकों के परिणाम स्वरुप कुछ देशों ने जो कि आज विकसित राष्ट्रों के रुप में जाने जाते हैं, आर्थिक वृद्धि की उच्च दरों को प्राप्त कर लिया। इन विकसित राष्ट्रों की प्रगति से प्रभावित होकर तृतीय विश्व के राष्ट्रों ने भी विकास का वही रास्ता चुन लिया। लेकिन पिछले दो और तीन दशकों का अनुभव यह दर्शाता है कि विकास के प्रतिमान ने तृतीय विश्व के देशों, साथ ही साथ तथाकथित विकसित राष्ट्रों, में भी गंभीर समस्याएँ उत्पन्न कर दीं।

इन तथाकथित विकसित राष्ट्रों में विकास का परिणाम इच्छाओं में वृद्धि एवं उपभोग की अधिकता में हुआ है। प्राकृतिक संसाधनों का शोषण एवं पर्यावरण प्रदूषण इस खतरनाक स्तर पर पहुँच गया है कि मानव का इस ग्रह पर आस्तित्व ही संकट में आ गया है। धनवान और गरीब के बीच आर्थिक असमानता, बेरोजगारी और गरीबी, उत्पादन में वृद्धि की उच्च दरों के साथ बढ़ रही है। विकास के पश्चिमी प्रतिमान के अनुगामी तृतीय विश्व के देशों में स्थिति और भी अधिक खराब है। विकास, जो कि आज विश्व में हो रहा है उसकी प्रकृति ऐसी है कि यह उत्तर में अधिक और दूषित विकास तथा दक्षिण में अल्प विकास के रुप में फलीभूत हो रहा है। लेकिन स्पष्टतः उत्तर एवं दक्षिण दोनों ही क्षेत्रों के लोग इस विकास से असंतुष्ट हैं।

सही मायनों में विकास का तात्पर्य सभी मनुष्यों एवं सम्पूर्ण समाज का अधिक सहभागिता पूर्ण मानवीय विकास है। यह अधिक न्यायपूर्ण वितरण में समानता तथा प्राकृतिक संसाधनों विशेषतः नवीकृत

न होने वाले संसाधनों का संरक्षण सुनिश्चित करने वाला होना चाहिए। संक्षिप्त रुप में विकास आवश्यकता आधारित निर्वाहक्षम व पर्यावरण की रक्षा करने वाला हो।

प्रथम संयुक्त राष्ट्र विकास दशक को जो कि 1961 में प्रारम्भ हुआ विकास को आर्थिक वृद्धि का लगभग पर्याय माना गया। इस दशक के दौरान विश्व के समस्त राष्ट्रीय उत्पाद में 1000 बिलियन डॉ.लर की वृद्धि हुई और इस वृद्धि का अस्सी प्रतिशत भाग उन राष्ट्रों को मिला जहाँ कि प्रति व्यक्ति वार्षिक आय एक हजार डॉ.लर थी और विश्व जनसंख्या का पच्चीस प्रतिशत भाग निवास करता था। इस वृद्धि का केवल छः प्रतिशत भाग उन राष्ट्रों को मिला जहाँ प्रति व्यक्ति वार्षिक आय औसतन 200 डॉलर अथवा इससे कम थी तथा जहाँ विश्व जनसंख्या का लगभग 60 प्रतिशत भाग निवास करता था।

विकास : गांधी दृष्टि

गांधी का विकास दर्शन मनुष्य, समाज और प्रकृति सापेक्ष रहा है। गांधी का दर्शन उद्यम, सम्पदा और सुख का दर्शन था जिसमें कि पूर्व के समान पाश्चिम की धार्मिक और नैतिक मान्यताओं को शामिल किया गया था। उनका दर्शन दो आधारभूत और परस्पर सम्बन्धित सिद्धान्त सत्य और अहिंसा से अनुशासित था। गांधी जीवन के प्रति समग्रता का दृष्टिकोण रखते थे। गांधी का विश्वास था कि मनुष्य द्वारा समाज के शोषण और पुनः मनुष्य और समाज दोनों द्वारा प्रकृति के शोषण के स्थान पर जीवन में ऐसा रास्ता अपनाया जा सकता है जिसमें परस्पर प्रेम और सामंजस्य हो। गांधी के विकास के ढाँचे में व्यक्ति का स्थान केन्द्रीय है। इसका उद्देश्य मनुष्य का आध्यात्मिक और नैतिक विकास करना है। मनुष्य आत्म चैतन्य युक्त है तथा उसमें जीवन के उच्चतम स्तर की प्राप्ति में सहायक तत्वों और बाधाओं, अच्छे और बुरे में भेद करने की क्षमता है यही क्षमता उसके उच्च स्तर की प्राप्ति का साधन होती है। गांधी स्व-प्रयास में विश्वास करते थे और नैतिक, आध्यात्मिक तरीकों से इस उच्च स्तर को प्राप्त करना चाहते थे। उनके नीतिशास्त्र की कुंजी प्रेम है जिसका तात्पर्य हितों की एकता की पहचान है। यह प्रेम सेवा और त्याग के रुप में अभिव्यक्त होता है।

साथ कार्य करने का सिद्धान्त गांधीय पद्धति का मुख्य आधार है। यह पूर्व के दोनों विकल्प, बाजार व्यवस्था के तहत प्रतिस्पर्द्धात्मक व्यक्तिगत व्यवहार और केन्द्रीकृत नियोजन व्यवस्था के तहत सामूहिक नौकरशाही के व्यवहार से भिन्न है। प्रथम में व्यक्ति की स्वायत्ता व स्व-प्रेरणा से व्यक्ति का कल्याण अधिकतम किया जाता है किन्तु बाद वाले में समूह के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण में वृद्धि की जाती है। सहकार्य व्यवस्था में वह इकाई जिसके कि कल्याण में वृद्धि की जाती है एक सामाजिक समूह होता है। गांधी का विश्वास था कि मानव कल्याण बाजार प्रणाली द्वारा जिसमें कि आर्थिक दृष्टि से सशक्त लोग समाज के कमजोर लोगों की कीमत पर अपना व्यापार करते हैं, वृद्धि नहीं हो सकता। न ही केन्द्रीकृत नियोजन व्यवस्था में जहाँ राजनैतिक दृष्टि से शक्तिशाली लोग ही मुख्य भूमिका में होते हैं। गांधी इनके स्थान पर छोटे-छोटे समूहों का निर्माण करना चाहते थे जो कि उनके सामान्य हितों को संगठित कर सकें। ये समूह अपने कल्याण में वृद्धि करने हेतु परस्पर सहयोग करेंगे। सामान्यतः बाजार एवं केन्द्रीकृत नियोजन दोनों ही प्रणालियों में इन सूक्ष्म समूहों के सहयोगी आर्थिक व्यवहार का महत्व पर्याप्त मान्य है। उदाहरण के तौर पर बाजार प्रणालियों में निर्मात्री फर्मों

द्वारा श्रम प्रबन्धन के प्रयास में छोटे-समूहों को उत्पादन प्रणालियों के साथ सहयोग करना होता है। एक सामुदायिक प्रणाली में जैसे चीन और क्यूबा में इन छोटे समूहों को पर्याप्त मान्यता प्राप्त है। इस प्रकार गांधी का छोटे समूहों पर इकाई रुप में बल देना उनकी दूरदर्शिता का सूचक है।

यदि सहयोगिता का यह सिद्धान्त अपना लिया जाता है तो यह एक भोगौलिक क्षेत्र के आर्थिक दृष्टि से कमजोर लोगों को स्थानीय अभिजनों के साथ कार्य करने हेतु प्रेरित करेगा। साथ ही बाह्य शोषणकारी शक्तियों के खिलाफ उन्हें संगठित भी करेगा। यह विकासशील देशों में वर्तमान में व्यापक रुप से प्रभावी उस गठबन्धन के विपरीत होगा जो कि स्थानीय अभिजनों द्वारा अपने संकीर्ण स्वार्थों की पूर्ति हेतु बाह्य शक्तियों के साथ कर लिए गए हैं। गांधी स्वार्थ और लोभ भावना से अनभिज्ञ नहीं थे। फिर भी उनका विश्वास था कि समाज के कमजोर सदस्यों द्वारा अहिंसक संघर्ष से शोषणकारी अभिजनों का पतन तथा ऐसे निर्णयकर्ताओं का उत्थान होगा जो कि सहयोग करनेवाले सिद्धान्त व समूह कल्याण को प्रोत्साहित करेंगे। गांधी की राजनीतिक सफलता यह दिखाती है कि सक्रिय, अहिंसक जन प्रतिरोध द्वारा ऐसे अच्छे निर्णयकर्ताओं का उद्भव हो सकता है।

घाना में जनजातीय क्षेत्रों में मुखिया का चुनाव इस सिद्धान्त के सफल क्रियान्वयन का उदाहरण प्रस्तुत करता है जो कि अपने समूह के कल्याण में वृद्धि के लिए स्वयं को उत्तरदायी मानता है। दुर्भाग्य से ये सांस्कृतिक व्यवस्थाएँ समाप्त होती जा रही हैं और इनका स्थान या तो बाजार प्रणाली की अराजकता ने ले लिया है अथवा वहाँ तानाशाही शासकों द्वारा अपने स्वार्थों की सिद्धि हेतु शक्ति का मनमाना प्रयोग किया जा रहा है।

वस्तुतः हिंसक प्रतिद्वन्द्विता का मूल कारण क्षेत्रीय एवं अन्तर्समूह असमानता ही है। एक देश के विभिन्न क्षेत्रों में लोगों का शोषण तृतीय विश्व के देशों के लिए बहुत खतरनाक है। अतः एक गांधी प्रतिमान निश्चित रुप से विचारणीय है।

अतः स्थायी शांति की स्थापना युद्धों और उनसे जुड़ी हुई समस्याओं के निदान मात्र से सम्भव नहीं है अपितु इसके लिए प्रत्येक समुदाय में विद्यमान सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक संरचनाओं और प्रवृतियों में अन्तर्गस्त हिंसा का सामाधान करना होगा तथा ऐसी संरचनाओं को विकसित करना होगा जो समता, सौहार्द्र और प्रेम को परिलक्षित करें ताकि तनावों की आशंका मात्र का निषेध हो सके। यह स्थिति ही स्थायी शांति का आश्वस्तकारी संकेत हो सकती है।

आसन्न युद्ध की परिस्थितियों में गांधीय प्रतिमान की व्यावहारिकता

गांधी की कल्पना का सर्वोदयी समाज, यदि वस्तुतः स्थापित हो जाये तो उन परिस्थितियों का स्थायी निराकरण भी सम्भव हो सकता है जो द्वन्द्व, अशांति अथवा युद्ध को जन्म दे सकती हैं। ऐसे समाज की स्थापना को यदि असाध्य आदर्श नहीं भी माना जाये तो भी इस तथ्य का संज्ञान आवश्यक होगा कि ऐसे समाज की स्थापना के लिए नैतिक रुपान्तरण की सुदीर्घ प्रक्रिया सम्पन्न करनी होगी। इस दिशा में प्रयासरत रहते हुये भी यह एक तार्किक सम्भावना होगी कि हितों के द्वन्द्वों के स्थायी समापन के लिए गम्भीर प्रयासों तथा साथ ही हितों के द्वन्द्व की स्थिति में अपने हितों को अग्रसर करने के लिए टकराव, बल प्रयोग व हिंसा की प्रवृत्तियों की समानान्तर उपस्थिति बनी रहे। स्थितियों की इस

पृष्ठभूमि में यह एक विचारणीय प्रश्न होगा कि सर्वोदयी समाज की संस्थापना के लिए नैतिक रुप से प्रतिबद्ध व्यक्ति टकराव और संघर्ष के प्रति केवल निरपेक्ष बना रह सकता है अथवा अपने मूल मन्तव्य के प्रति समर्पित रहते हुये भी उसे ऐसे टकरावों के आसन्न हो जाने पर इनसे निपटने के लिए कोई व्यावहारिक कार्यनीति अपनानी होगी।

गांधी ने स्वयं भी 1889 में बोअर युद्ध में तथा 1906 में जूलू विद्रोह में भाग लिया। गांधी ने 1914 में प्रथम विश्व युद्ध में भी भाग लिया। यद्यपि जिन कारणों से गांधी ने इन युद्धों में भाग लिया वे एक अवसर से दूसरे अवसर की भिन्नता रखते हैं लेकिन इससे हिंसा और युद्ध के प्रति उनका दृष्टिकोण धीरे-धीरे कैसे विकसित हुआ इसका मूल्यांकन किया जा सकता है। सर्वप्रथम बोअर युद्ध के संदर्भ में उनके युद्ध में भाग लेने का कारण ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति उनकी निष्ठा थी। गांधी की स्वयं की सहानुभूति बोअरों के साथ थी लेकिन उनका विश्वास था कि उन्हें उस राज्य पर अपनी व्यक्तिगत धारणा थोपने का कोई नैतिक अधिकार नहीं था जिसके कि वे ईमानदार नागरिक थे। वे लिखते हैं कि मेरी ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति निष्ठा मेरे ब्रिटिशों को युद्ध में साथ देने के कारण बनी। उन्होंने तर्क दिया कि यदि ब्रिटिश नागरिक होने के नाते वे अधिकारों की मांग कर सकते थे तो संकट के समय ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के लिए उसका साथ देना उनका कर्तव्य था। यदि हम राजनैतिक दृष्टिकोण से इस निर्णय की समीक्षा करें तो इस समय तक गांधी का दृढ़ विश्वास था कि भारत को पिछड़ापन, भूख, निर्धनता आदि सभी बुराइयों से ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर तथा ब्रिटिश साम्राज्य के तहत ही छुटकारा मिल सकता था। अतः गांधी ने अफ्रिका में बोअर युद्ध के दौरान भारतीयों का एम्बुलेंस सेवा दल भी तैयार किया था।

प्रथम विश्व युद्ध में अपने सक्रिय सहयोग की व्याख्या करते हुए गांधी ने ब्रिटिश साम्राज्य की निष्ठावान नागरिक होने का तर्क दोहराया। उन्होंने कहा कि बाह्य शत्रु के खिलाफ राज्य को सहायता देने में ब्रिटिश लोगों की तुलना में भारतीयों को आगे प्रतिष्ठा बढ़ेगी। भारत उस समय एक उपनिवेश था और भारतीय लोग उस समय ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन कष्टप्रद जीवन बिता रहे थे। किन्तु यह उनका सहानुभूति नहीं थी। संघर्ष निदान की पद्धति के रुप में सेवा और कर्तव्य की श्रेष्ठता में विश्वास रखते हुए गांधी ने सोचा कि ब्रिटिश लोगों को भी उनके प्रति शत्रुता का भाव रखकर तथा उनकी समस्याओं से उदासीन रहने की अपेक्षा उनके प्रति सक्रिय सहानुभूति रखकर फलतः आवश्यकता के समय उनकी सहायता करके उन्हें जीता जा सकता था। गांधी की यह धारणा थी कि जो कुछ भी प्रेम और विश्वास द्वारा प्राप्त किया जाता है वह बल की तुलना में प्राप्त किए जाने से अधिक स्थायी होता है। अतः उन्होंने 1914 में ब्रिटिश साम्राज्य को सहायता न दिए जाने के सुझाव से सहमति व्यक्त नहीं की।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि इन तीनों युद्धों में ब्रिटिश सरकार की सहायता करने का निर्णय मिले जुले उद्देश्यों से प्रेरित था। गांधी का इन युद्धों में ब्रिटिश सरकार को सहायता देने का तर्क उनकी सामान्य अहिंसा की भावना से कई बार असंगत प्रतीत होता है। उदाहरण के लिए जेनेवा के रेव बार्ट के अनुसार अहिंसा में विश्वास किसी भी प्रकार की युद्ध में सहभागिता से असंगत है। जुलू विद्रोह के समय ब्रिटिश सरकार को सहयोग देने के उनके फैसले ने तीव्र प्रतिक्रिया के स्वर को जन्म दिया है।

अन्ततः यह ध्यातव्य है कि जुलू लोगों का विद्रोह उपनिवेशवादी शक्तियों के खिलाफ था, अतः यह प्रश्न स्वाभाविक था कि साम्राज्यवादी शासन के भारत में उल्मूलन हेतु समर्पित व्यक्ति का ब्रिटिश शासकों के प्रति यह समर्थन कैसे उचित ठहराया जा सकता था?

इस प्रश्न का समाधान ढूँढते समय दो बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। प्रथमतः पश्चातवर्ती विश्लेषणों में मानवीय सहायता के नाम पर भी जुलू विद्रोह में अपनी भूमिका के लिए गांधी ने स्वयं को युद्ध में भागीदारी का दोषी माना। उन्होंने नैतिक इमानदारी का परिचय देते हुये इस संदर्भ में अपने बचाव के लिए युद्ध की कार्यवाही में प्रत्यक्ष भागीदारी और घायलों की सुश्रुषा के मध्य अन्तर किये जाने के तर्क को भी अमान्य कर दिया। द्वितीयतः जुलू विद्रोह में भागीदारी के समय तक ब्रिटिश लोगों और ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति गांधी का दृष्टिकोण पूर्णतः निर्धारित नहीं हुआ था, समस्याओं के समाधान की अचूक पद्धति के रुप में अहिंसा का विचार भी उद्विकास की प्रक्रिया के प्रारम्भिक चरण में था। इस परिस्थिति में उनकी किसी भूमिका से, अहिंसा के नियम के प्रति उनकी आस्था का अपवाद इंगित नहीं होता अपितु केवल इस तथ्य का ही आभास होता है कि वास्तविक जीवन की असंगतियों व विरोधाभासों के अनुभवों का उन्होंने सत्य के अनुसंधान की प्रक्रिया में अपने भावी दृष्टिकोण के परिमार्जन हेतु उपयोग किया।

गांधी के शांति प्रतिमान की रुपरेखा निर्मित करते समय यह अवश्य विचारणीय है कि गांधी का आदर्श प्रतिमान युद्ध के अभाव की स्थिति में एक आदर्श है जिसकी प्राप्ति की दिशा में प्रयासरत हुआ जा सकता है किन्तु एक ऐसी अवस्था जबकि युद्ध शुरु हो गया हो अथवा राष्ट्रों के आपसी सम्बन्धों की स्थिति इतनी तनावपूर्ण हो जिसमें कि सदैव युद्ध छिड़ने की आशंका हो तब क्या गांधी एक उपचार याग्य विकल्प प्रदान करते हैं? गांधी को हमेशा एक व्यावहारिक आदर्शवादी कहा जाता है। एक व्यावहारिक आदर्शवादी होने के नाते गांधीवाद में ऐसी परिस्थितियों में शांति स्थापना की दिशा में क्या रणनीति होनी चाहिए, उसकी समीक्षा समीचीन प्रतीत होती है। गांधी के समय में ही दोनों विश्व युद्ध हुए, उन्होंने प्रथम विश्व युद्ध में भारतीयों से ब्रिटेन को सहयोग देने की भी अपील की, बोअर युद्ध में भी सरकार को सहयोग दिया। उनके इन कदमों के पीछे उनकी क्या सोच थी तथा क्या वह उनके परवर्ती विचारों से सामंजस्य रखती है, अथवा समय के साथ उसमें क्या परिवर्तन होते हैं, इन सब के साथ ही द्वितीय विश्व युद्ध में हिरोशिमा व नागासाकी पर अणुबम के प्रयोग के साथ ही द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति तथा हिंसा के उस ताण्डव से उनका अहिंसा और सत्य में कितना विश्वास बना रहा, यह सभी जानना उचित प्रतीत होता है। भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् गांधी अधिक नहीं जिए तथा द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति तक भारत स्वयं एक पराधीन देश था। अतः उनका कार्यक्षेत्र एक देश की सीमाओं तक ही सीमित रह गया। अतः द्वितीय विश्व युद्धकालीन स्थिति तथा उसके पश्चात् उपजी स्थिति में गांधी क्या उपचार सुझाते, यह मात्र उनसे पूछे गए प्रश्नों के जवाब में बताए उपचारों का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है।

गांधी अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विचारक थे अतः समय-समय पर विभिन्न व्यक्तियों द्वारा उनसे अनेक प्रश्न किए गए। ये साक्षात्कार तत्कालीन समाचार पत्रों में प्रकाशित होते रहे। अध्यापकों की

मद्रास में एक बैठक में गांधी ने बहुत संजीदगी के साथ हिंसा, परमाणु बम से होने वाले नाश और उसके फलस्वरुप मिलने वाली विजय की चर्चा की और कहा, "मैंने इस मुद्दे पर भी विचार किया है। मैं महसूस करता हूँ कि सत्य और अहिंसा सचमुच परमाणु बम से अधिक शक्तिशाली है। उन्होंने कहा कि मुझे परमाणु बम का भय नहीं है। इनसे हमारे शरीर को चोट पहुँच सकती है लेकिन यह हमारी आत्मा को नष्ट नहीं कर सकते। एक बार यदि आप यह निश्चय कर लें कि आप पर कोई हिंसा से विजय प्राप्त नहीं कर सकता तो विजय भी आपकी है क्योंकि किसी बुराई के विरुद्ध नैतिक विरोध अपने आप में एक विजय है।

गांधी के मसूरी प्रवास के दौरान एक अंग्रेज मित्र ने उनसे पूछा कि परमाणु बम की भयानकता में ही क्या वह कारण मौजूद नहीं है जो विश्व को अहिंसा को अपनाने पर विवश कर दें। यदि सभी राष्ट्रों के पास परमाणु बम हो तो सब उसका उपयोग सिर्फ इसलिए नहीं करेंगे क्योंकि उसके उपयोग का मतलब होगा सभी सम्बन्धित राष्ट्रों का पूर्ण विनाश। गांधी का मत था कि ऐसा नहीं होगा।

बातचीत के दौरान एक अँग्रेज पत्रकार के इस प्रश्न पर कि परमाणु बम के बारे में आपकी क्या राय है? उन्होंने तुरन्त जवाब दिया, "आप निसंकोच होकर दुनिया को यह बता सकते हैं कि इस मामले में तो मेरी दृष्टि में कोई परिवर्तन नहीं होने वाला है। स्त्री-पुरुषों और बच्चों के सामूहिक विनाश के लिए परमाणु बम के उपयोग को मैं विज्ञान का नितांत दानवी प्रयोग मानता हूँ। अगले प्रश्न (इस विष का उपचार क्या है? क्या अहिंसा रुपी उपचार को इसने प्रभावहीन कर दिया है?) के उत्तर में उन्होंने कहा नहीं बल्कि यही एक चीज ऐसी है जिसे परमाणु बम नष्ट नहीं कर सकता। जब मुझे सबसे पहले यह समाचार मिला कि परमाणु बम ने हिरोशिमा को मिटा दिया है तो मैं तनिक भी विचलित नहीं हुआ। इसके विपरीत मैंने स्वयं को कहा अगर अब भी दुनिया अहिंसा को नहीं अपनाती तो निश्चय ही यह मानव-जाति के लिए आत्मघाती सिद्ध होगा।

ब्रिटेन के एक दैनिक पत्र के निदेशक के इस प्रश्न पर कि उनके विचार में, जैसी लड़ाई देखने का मौका अभी उन्हें मिला उसकी पुनरावृतियों को रोकने का क्या उपाय है? उन्होंने जवाब दिया, "मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि जब तक बड़े राष्ट्र अपनी शोषण की वासना का त्याग नहीं करते, हिंसा वृत्ति को, युद्ध जिसकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति और परमाणु बम अनिवार्य परिणाम है, नहीं छोड़ते, तब तक दुनिया में शांति कायम होने की कोई आशा नहीं है।

काँग्रेस कार्यकर्ताओं से बातचीत के दौरान उन्होंने कहा, "परमाणु बमों की इतनी अधिक उत्पत्ति होते हुए भी अहिंसा और सत्य में मेरी श्रद्धा आधिकाधिक दृढ़ होती जा रही है। सत्य और अहिंसा की शक्ति से बढ़कर संसार में दूसरी कोई शक्ति नहीं है। इस बारे में मुझे जरा सी भी शंका नहीं है। आप यह तो देखिए कि यह एक नैतिक और आध्यात्मिक बल है। इसमें आत्मा का अगाध बल काम करता है। दूसरी प्रकार की शक्ति में शारीरिक और अप्राकृतिक बल है जो नाशवान है। गांधी को एक बार फिनलैण्ड भ्रमण के लिए आमंत्रित किया गया। किन्तु गांधी फिनलैण्ड नहीं जा सके। तब उस प्रस्तावित दौरे के बारे में काकासाहब कालेलकर ने पूछा कि उनका फिनलैण्ड अथवा युरोप की समस्या हेतु क्या सुझाव होता? गांधी ने तुरन्त जवाब दिया कि उन्हें आमंत्रित करने वाले लोग उन्हें समस्या बताते और उनका एक

सार्वभौमिक व शाश्वत उपचार होता कि हमारा उद्देश्य एक संसार है। हमें उसके लिए कार्य करना है तथा सम्पूर्ण मानवता के भ्रातृत्व को बनाऐ रखने के लिए हमारा एक मात्र हथियार अहिंसा अथवा आत्मबल ही है।

जे.बी. कृपलानी लिखते हैं, "एक बार मेरी उपस्थिति में एक इंगलैण्ड के यात्री ने गांधी से पूछा क्या यह कहना सही नहीं होगा कि तुम जैसा कि भारतीय हो, अतः भारतीय लोगों को अन्य लोगों की तुलना में अधिक प्रेम करते हो?" गांधी का तुरंत जवाब था, "नहीं मै व्यक्ति और व्यक्ति के मध्य कोई भेद नहीं करता मेरे लिए सम्पूर्ण मानवता एक है"।

इस प्रकार से संसार में गांधी ने इस बात पर बल दिया कि सभी समाजिक और राजनैतिक गलतियों को केवल अहिंसक तरीकों से सुधार जा सकता है। यहाँ तक कि एक एटम बम को एटम बम द्वारा नहीं वरन् केवल अहिंसा के द्वारा जीता जा सकता है। गांधी का अहिंसा की अवधारणा के सम्बन्ध में यही ऐतिहासिक व आधारभूत योगदान है। उन्होंने हमेश बल दिया कि शक्ति को कभी भी राष्ट्रीय अथवा अन्तरर्राष्ट्रीय विवादों के समाधान में प्रयोग नहीं करना चाहिए।

काका कालेलकर अपनी पुस्तक में लिखते हैं-जब नेहरू प्रधानमंत्री बन गए तथा भारत का सैन्य बजट ब्रिटिश शासन के यथावत् ही बना रहा तो गांधी ने इस पर ऐतराज किया। मैंने हमारे लोगों को सेना व पुलिस की सहायता पर निर्भर न रहना सिखाया है ... आप किसी कृत्य को किसी एक स्थान पर अच्छा व अन्य स्थान पर गलत नहीं ठहरा सकते। सैन्य सहायता आपके नैतिक स्तर को गिराएगी। सैन्य सहायता का तात्पर्य है शांति को अलविदा।

गांधी के लिए परिवार और विश्व के लिए अलग-अलग नियम नहीं थे। यदि परिवार का एक सदस्य अन्य सदस्य के लिए अपना सहर्ष बलिदान करने को तत्पर हो सकता है तो एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र के लिए बलिदान क्यों नहीं? गांधी के अनुसार अहिंसा का पालन करते हुए यदि युद्ध में किसी राष्ट्र को अपना सर्वस्व समर्पण करना भी पड़े तो वह कभी भी निरर्थक नहीं होगा वरन् यह स्थायी प्रभाव वाला होगा और स्थायी शांति वाला भी। गांधी का राष्ट्रवाद कभी भी अन्तर्राष्ट्रवाद से विरोध नहीं रख सकता। गांधी के राष्ट्रवाद में अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम के साथ सदैव सम्पूर्ण विश्व के हित, उनके प्रति प्रेम की खातिर सदैव स्वसमर्पण का भाव विद्यमान और यही भाव विश्वशांति की स्थापना कर सकता है। यहाँ स्पष्ट हो जाता है कि गांधी आणविक युग हो अथवा युद्ध प्रारम्भ हो चुका हो, अहिंसा को ही श्रेष्ठतम उपाय मानते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. देवीदत्त शर्मा, गांधी और विश्व शांति-, काशी प्रकाशन, (अध्याय आधुनिक विश्व की पृष्ठभूमि), पृ. 2
2. गांधी और विश्व शांति, उपरोक्त, पृ. 3-4
3. पूर्वेक्त, पृ. 34
4. वोंक्त, पृ. 39

5. मार्जरी फर्नाण्डीस द्वारा रिफ्लेक्शन ऑन डेवलपमेण्ट, पीस एण्ड एडयूकेशन, उद्धृत आर. पी. मिश्रा, वही, पृ. 261-262
6. पूर्वोक्त, पृ. 262
7. वही, पृ. 54 आर.पी.मिश्रा
8. पूर्वोक्त, पृ. 184
9. पूर्वोक्त, पृ. 185
10. वही
11. एम.के. गांधी-आत्मकथा, अहमदाबाद 1965, पृ. 264
12. यंग इण्डिया, नवम्बर 1921
13. हीमो राव, महात्मा गांधी एज जर्मन्स सी हिम, होमोराव, पृ. 87, बॉम्बे, 1976
14. द हिन्दू-प्रश्नोत्तर-अध्यापकों की बैठक में, मद्रास, 30 जनवरी 1946
15. बातचीत-एक मित्र के साथ, हरिजन, 23.06.1946 सं. गॉ. वा. 84, पृ.218
16. .हिंसा का नतीजा, पूना 3.3.1946, हरिजन 10.03.1946, सं. गॉ.वा. 83 पृ. 236-237
17. .भाषण कटक में (20.01.1946) हरिजन, 24.02.1946, सं. गॉ. वा. 83, पृ. 5
18. परमाणु और अहिंसा (पूना 1-7-46) हरिजन 7.7.1948 सं. गा.वा. 84, पृ. 382-83
19. वही
20. बातचीत-एक अंग्रेज पत्रकार के साथ हरिजन, 29.9.1946, सं. गा.वॉ. 85, पृ. 358
21. बातचीत-ब्रिटेन के दैनिक पत्र के निदेशक से हरिजन 10.11.46, सं.गा.वॉ. 86,पृ. 54
22. बातचीत कांग्रेस कार्यकर्ताओं से (पटना 17.4.1947) सं. गां.वा. 87, पृ. 312-13
23. महात्मा गांधी एण्ड वन वर्ल्ड-काका साहेब कालेलकर, पृ. 23
24. वही, पृ. 29
25. डी. जी. तेन्दुलकर, महात्मा-खंड, 7, पृ. 334

***

आधुनिकता विमर्श : गांधी, टैगोर और कांट

डॉ. अभय प्रसाद सिंह[36]

यूरोप के उत्तर-प्रबोधन और उत्तर-वेस्टफेलिया चिंतन धारा ने दुनिया के विविधता मूलक समाजों को दो वर्गों में विभाजित किया। एक ओर आधुनिक समाज और आधुनिक राष्ट्र-राज्य थे जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे सार्वभौमिक सिद्धांतों की अगुवाई और पैरोकारी करते नजर आ रहे थे; जबकि दूसरी ओर वे समाज और राज्य थे जिन्हें ऐतिहासिक कालानुक्रम में मध्यकालीन, पारंपरिक व जड़वत माना जा रहा था। आधुनिकता के इस विमर्श में दुनिया के सभ्यताकरण की ऐतिहासिक जवाबदेही पाश्चात्य समाजों की थी, जिन्होंने अपने को स्वंय ही दार्शनिक, राजनीतिक और वैज्ञानिक रूप से प्रबुद्ध मान लिया था।

पाश्चात्य देशों के सभ्यताकरण के इस वैश्विक संकल्प ने न सिर्फ साम्राज्यवाद अपितु प्रबोधन जनित निरंकुशतावाद को भी वैधता प्रदान किया। विज्ञान और विवेक पर आधारित सत्य-अन्वेषण कालांतर में नियंत्रण एवं निश्चय मूलक हो गए। सत्य की वस्तुनिष्ठता को अब द्वैधता की कसौटी पर परखा किया जाने लगा। मानो यह तय कर दिया गया हो कि सत्य का गैर-प्रबोधन, गैर-वेस्टफेलियन आयाम तो सत्य का वह स्याह पक्ष है जिसे पाश्चात्य आधुनिकता के अहंकार का कोपभाजन होना ही है।

पाश्चात्य आधुनिकता के प्रभुत्ववादी प्रारूप की अन्तर्निहित निश्चितता व नियंत्रण की मनसा को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम आधुनिकता संबंधी कुछ अनछुए पक्षों का अन्वेषण करें । इस निमित्त इस आलेख में आधुनिकता के कुछ पक्षों पर गांधी, टैगोर और कांट के विचारों का विश्लेषण किया गया है ।

। .आधुनिकता के आइने में गांधी की भारत कल्पना

गांधी ने भारतीय गांव को अपनी राजनीतिक परिकल्पना एवं राजनीति के केंद्र में स्थापित किया। आशिस नंदी के अनुसार, गांधी की सोच में गांव भारतीय सभ्यता की मूलभूत इकाई थी, और उनके भारत के भविष्य की कल्पना गांव के इर्द-गिर्द ही थी। (Nandy 2010: 258)

गांधी का ग्राम स्वराज, खादी और चर्खा राष्ट्रीय सशक्तीकरण की दिशा में उनके राजनीतिक-अर्थशास्त्रीय दर्शन की अभिव्यक्ति हैं। गांधी नीतिशास्त्र (नैतिकता का दर्शन) और धर्म के पृथक्कीकरण के विरुद्ध) थे। उन्होंने सेवा धर्म को ही अपना धर्म माना क्योंकि सत्य और ईश्वर की प्राप्ति सेवा से ही संभव है। (Gandhi 1987: XXVI)

---

[36] सहायक प्रोफेसर, पी.जी.डी.ए.वी. महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

गांधी के बहुल-धार्मिक भारत में नैतिकता और धर्म को, नेहरु की धर्मनिरपेक्षता की समझ, से नहीं समझा जा सकता है। गांधी के लिए भारतीयता की पहचान एक अहिंसात्मक एवं नैतिक समुदाय से बना स्वराज्य है। जो मशीनी और निर्दयी आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता से स्वाधीन है। हमारे गांधी और वैश्विक गांधी शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के पैरोकार हैं। इसीलिए तो मार्टिन लूथर किंग जूनियर, नेल्सन मंडेला, दलाई लामा, आंग सान सू की, एडोल्फो पेरेज एसकीवेल जैसे नोबेल पुरस्कार विजेता अपने जीवन पर गांधी का दर्शन का प्रभाव स्वीकारते हैं।

II .टैगोर एवं गांधीः आधुनिकता पर विमर्श

(A) प्राकृतिक आपदा पर गांधी और टैगोर:

15 जनवरी 1934 में बिहार में आए भूकंप में हजारों व्यक्तियों की जाने चली गई। इस प्राकृतिक आपदा पर गांधी ने 24 जनवरी 1934 को तिरुनेलवेली में एक सभा को संबोधित करते हुए कहा कि यह आपदा हमारे पापों का फल है। गांधी ने उस आपदा को तत्कालीन भारतीय समाज में व्यवहृत अस्पृश्यता के पाप से जोड़ कर देखा । उन्होंने यह तर्क दिया कि यह हमारा नैतिक दायित्व है कि हम समाज में प्रचलित छुआछूत के भेदभाव को खत्म करें । बिहार में आए भूकंप पर गांधी के इस वक्तव्य को राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रमुखता से छापा गया और गांधी के प्रकाशित इस वक्तव्य ने गांधी और टैगोर के बीच भूकंप जैसी प्राकृतिक आपदा के वैज्ञानिक बनाम आध्यात्मिक व्याख्या के विमर्श की शुरुआत कर दी ।

टैगोर ने 28 जनवरी 1934 को इस संदर्भ में एक पत्र लिखा और कहा कि भूकंप जैसा प्राकृतिक आपदा प्रकृति के भौतिक नियमों से संचालित होता है इसलिए इसकी वैज्ञानिक व्याख्या करनी चाहिए। न कि आध्यात्मिक व्याख्या। टैगोर ने कहा कि ऐसे प्राकृतिक आपदाओं की आध्यात्मिक व्याख्या से समाज में अंधविश्वास को बढ़ावा मिलेगा। इस सन्दर्भ में हम पाते हैं कि टैगोर ने गांधी द्वारा बिहार में आए भूकंप के आध्यात्मिक व्याख्या को अवैज्ञानिक बतलाया। उन्होंने अपने तर्क विन्यास में कहा कि इतिहास के कालक्रम में अन्याय के प्रचलन एवं व्यवहार को प्राकृतिक आपदाओं से जोड़कर देखने का नजरिया वैज्ञानिक नहीं है। टैगोर के अनुसार गुरुत्वाकर्षण का नियम जैसे अन्य प्राकृतिक नियमों को हमने कभी अच्छे इंसान और बुरे इंसान में फर्क करते हुए नहीं देखा। गांधी और टैगोर में शुरू इस विमर्श में प्राकृतिक नियमों की वैज्ञानिकता बनाम ईश्वरीय नियमों की नैतिकता एवं उसके नैतिक सरोकारों का प्रश्न बहस का विषय बन गया।

गांधी ने टैगोर के साथ बिहार भूकंप पर किए गए पत्राचार में बार-बार यह तर्क दिया कि ईश्वरीय नियम तथा मानवीय व्यवहार आपस में जुड़ा हुआ है तथा नैतिक मानवीय व्यवहार ही ईश्वरीय कानून के अनुकूल है I(Paranjape 2016 : 119-35)। हालांकि, टैगोर ने ईश्वरीय कानून की सत्ता को माना लेकिन उन्होंने इस बात से इंकार किया कि ईश्वरीय कानून अपने ही कानून में हस्तक्षेप करेगा और वह इसलिए कि इंसानी समाज नैतिकता का पालन नहीं कर रहा है । बिहार भूकंप पर गांधी और टैगोर के मतभेदों को हम कुछ निम्न लिखित बिंदुओं के आधार पर समझ सकते हैं:

1.गांधी के अनुसार प्राकृतिक परिघटनाएं भौतिक व आध्यात्मिक दोनों तरह के परिणाम लाते हैं।

2.इस बहस से यह स्पष्ट होता है कि विज्ञान और अध्यात्म का वर्तमान ज्ञान प्राकृतिक नियमों एवं आपदाओं की पूर्ण व्याख्या करने में सक्षम नहीं है।

3.जिस प्रकार यह साबित करना मुश्किल है कि ईश्वर असीम और सर्वव्यापी है उसी प्रकार यह भी साबित करना मुश्किल है कि प्राकृतिक आपदाओं का अनैतिक सामाजिक व्यवहार से कोई सीधा संबंध है।

4.इसके बावजूद गांधी इस बात को साबित करने में अक्षम थे कि किस प्रकार प्राकृतिक आपदा सामाजिक अस्पृश्यता से संबंधित था लेकिन वे इस आपदा को एक ऐसे अवसर के रूप में देख रहे थे जिससे समाज में छुआछूत रूपी भेदभावपूर्ण व्यवहार के निराकरण की दिशा में साझा पहल किया जा सकता था।

5.गांधी बिहार में आए भूकंप को आत्म शुद्धि और आत्म सुधार के संदर्भ में व्याख्यायित कर रहे थे। (Paranjape 2016 : 136)

बिहार भूकंप पर गांधी और टैगोर के बीच इस विमर्श में हम आधुनिकता संबंधी दो दृष्टिकोण पाते हैं-यह दोनों भारतीय दृष्टिकोण आधुनिकता के दो विपरीत पक्षों की व्याख्या करते हैं । जहां टैगोर विज्ञान एवं आध्यात्म में द्वैध पाते हैं वही गांधी एकत्व । जहां टैगोर के दृष्टिकोण से सर्वशक्तिमान ब्रह्मांड के भौतिक नियमों में हस्तक्षेप नहीं करता वहीं गांधी का ईश्वर ब्रह्मांड के हर हिस्से और कन कन में मौजूद है इसलिए गांधी भौतिक और आध्यात्मिक के बीच अलगाव नहीं पाते। टैगोर का चिंतन प्राकृतिक और आध्यात्मिक के बीच में विभाजन करता है जबकि गांधी इसे एकीकृत मानते हैं तथा इसे एक बड़े नैतिक व्यवस्था का अभिन्न अंग भी मानते हैं।

31 मई 1935 में जब क्वेटा में भूकंप आया और एक पत्रकार ने गांधी का साक्षात्कार किया तो उसमें गांधी ने दोबारा इस आपदा को समाज में व्यावहारिक नैतिकता से जोड़ा। हालांकि, उन्होंने यह माना कि चूँकि वह क्वेटा के सामाजिक व्यवहार से अनभिज्ञ हैं इसलिए उन्होंने इस आपदा को क्वेटा के किसी सामाजिक बुराई से नहीं जोड़ा। गांधी ने क्वेटा के भूकंप का सामान्यीकरण नहीं किया। इससे यह स्पष्ट होता है कि गांधी भूकंप जैसे प्राकृतिक आपदा से संबंधित कोई अंधविश्वास के पक्षधर नहीं थे । (Paranjape 2016 : 142-47) .

मूलतः गांधी और टैगोर दोनों आधुनिकता के अलग.अलग पक्षों के पैरोकार थे और वह दोनों ईश्वरीय एवं नैतिक सत्ता की महत्ता को मानते थे। उन दोनों का उद्देश्य था कि समाज में ऐसी नैतिकता का व्यवहार हो जिससे समाज एक ऐसे लोक विवेक पर आधारित जनजीवन को स्थापित करे और समाज में समरसता का संचार हो।

(B) राष्ट्र-राज्य की प्रासंगिकता पर गांधी और टैगोर:

टैगोर की मान्यता है कि आधुनिक राष्ट्र-राज्य आक्रामक और प्रतिस्पर्धी है जो विविधता में ह्रास लाता है। इसलिए यह आंतरिक और बाह्य अभिविन्यास में उस स्वतंत्रता का प्रतिवाद है जो जीवंत जगत में साहित्य, कला, सामाजिक अनुष्ठानों एवं प्रतीकों में अभिव्यक्त होता है। (Tagore:1991: 1)

टैगोर ने पाश्चात्य आधुनिकता वाले देशों की आलोचना करते हुए कहा कि प्रत्येक ऐसे राष्ट्र जिसने भौतिक समृद्धि हासिल की है, वह उसे वाणिज्यिक चालाकी या औपनिवेशीकरण या दोनों की आक्रामक स्वार्थपरकता से प्राप्त हुई है। (Tagore:1991: 2)

टैगोर ने राष्ट्र को राष्ट्र-राज्य और समाज में वर्गीकृत किया है। उनके अनुसार राष्ट्र राज्य अपने भू-क्षेत्रीयता, यांत्रिक नौकरशाही और राजनीति पर आलंबित है जबकि समाज निस्वार्स्थ व सृजनात्मक सामाजिक जन की सहजीविता पर आधारित है। इसीलिए टैगोर राष्ट्र विचारधारा को "स्वदेशी समाज" विचारधारा से प्रतिस्थापित करते हैं। टैगोर का स्वदेशी समाज प्यार व सहयोग के ताने-बाने से बुना है। रवींद्रनाथ के लिए भारत की परंपरा 'नस्लों के आपसी समायोजन' के लिए सक्रिय रहती है और नस्लों के बीच वास्तविक अंतर को स्वीकार करते हुए एकता का आधार तलाश करती है। (Gupta 2005: 30)

जहां गांधी ने पाश्चात्य सभ्यता एवं सशस्त्र राष्ट्रवाद की तीखी आलोचना की, वहीं टैगोर ने भारतीय सभ्यता के समन्वयकारी तत्वों की महत्ता को उद्धत किया। गांधी और टैगोर समकालीन जगत परंपरा बनाम आधुनिकता के बहस की अलग-अलग व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। आधुनिकतावादी होने के बावजूद रवींद्रनाथ के लिए आधुनिक दुनिया का महत्त्व कालांतर में कम होता चला गया। उधर प्रति-आधुनिक होने के बावजूद गांधी आधुनिकों की निगाह में आधुनिकता के ऐसे प्रमुख आलोचक बनकर उभरे, जो परंपरा के पक्ष में खड़ा होकर उत्तर-आधुनिकता की पैरोकारी कर रहा था। (Nandi 2005: 24)

रवींद्रनाथ और गांधी दोनों को लगता था कि सांस्कृतिक रूप से टिके रहने के लिए भारत को एक 'राष्ट्रीय विचारधारा' की जरूरत है। इसी जरूरत के तहत उन्होंने मान्यता बनाई थी कि भारत को या तो पश्चिमी राष्ट्रवाद की अवधारणा से अपना पिंड छुड़ाना होगा या फिर उसे इस अवधारणा में एकदम नई सारवस्तु का समावेश करना होगा। (Nandi 2005: 25)

गांधी और टैगोर विषाक्त, आक्रामक और हिंसात्मक राष्ट्रवाद के विरुद्ध थे। नंदी के अनुसार, बीसवीं सदी के भारत के दो प्रमुख नायकों गांधी और टैगोर ने उत्तर-औपनिवेशिक भारत की ओर देखा, साथ ही उत्तर-राष्ट्रवादी भारत की ओर भी। (Nandi 2010)

नेहरु अपनी सोच में टैगोर के ज्यादा समीप आ जाते हैं जब वह आस्था पर विवेक और तर्क बुद्धि और अध्यात्म पर विज्ञान की वरीयता के पक्षधर हो जाते हैं। हालांकि, औपनिवेशिक हुकूमत के दौरान उनका लगभग 10 वर्ष का बंदी-जीवन उन्हें राज्य के सर्वसत्तावादी चरित्र की संभावना पर सोचने को विवस करता है, शायद इसीलिए नेहरु जन जीवन में जन-विवेक की पैरोकारी पर बल देते नजर आते हैं । (Khilnani 2015: 93-103)

III . शांति पर गांधी और कांट के विचार

यह तो स्पष्ट है कि गांधी और कांट इतिहास के विभिन्न कालखंड एवं विभिन्न सभ्यताओं के चिंतन का प्रतिनिधित्व कर रहे थे लेकिन आधुनिक समाज में शांति की स्थापना के प्रश्न पर इन दोनों के दृष्टिकोणों का मूल्यांकन समकालीन अशांत मानव समाज के बाक्स महत्वपूर्ण व प्रासंगिक हो जाता है । हम इस आलेख में कांट द्वारा प्रस्तावित आंतरिक शांति की संस्तुतियों को गांधी के अहिंसात्मक व शांति-परक स्वराज की अवधारणा के संदर्भ में विश्लेषित करेंगे। यह सत्य है कि गांधी ने पाश्चात्य देशों

द्वारा शांति स्थापित करने की दिशा में किए गए प्रयासों की आलोचना नहीं की लेकिन उनके लिए अहिंसा अथवा पर-पीड़ा निषिद्ध मानवीय व्यवहार ही शांति सुनिश्चित कर सकता है। (Paranjape 2016 : 154-61)

गांधी यह मानते थे कि जब तक घृणा का व्यवहार एवं घृणा की राजनीति पल्लवित होती रहेगी तब तक कालजयी शांति की स्थापना नहीं की जा सकती। विश्व शांति स्थापित करने की दिशा में कांट ने संविधान की विधि, अंतरराष्ट्रीय विधि और अंतर्देशीयता की महती भूमिका पर बल दिया है, जबकि इसके विपरीत गांधी ने अहिंसा की विधि को महत्वपूर्ण माना है। गांधी ने अहिंसा को औरों के प्रति प्रेम, स्नेह, सरोकार, सेवा, आदि के संदर्भ में विमर्श किया है। कांट के विपरीत गांधी विधि को धर्म से जोड़कर देखते हैं, न कि शासकीय अधिनियम से। गांधी का मानना है कि धर्म ही विधि और न्याय का स्रोत है। धर्म आधारित न्याय और विधि गांधी के अनुसार आधुनिक शासकीय न्याय से पूर्व-कालिक है इसलिए जरूरत इस बात की है कि हम किस निष्ठा से इसको अपने जीवन में व्यवहार में लाते हैं। कांट की तुलना में गांधी मानव स्वभाव को सदैव युद्ध की स्थिति में नहीं पाते, अपितु वह मानते हैं कि स्नेह और प्रेम पर आधारित अहिंसात्मक जीवन ही सभी प्राणियों के बीच पारस्परिक व्यवहार को अभिव्यक्त करता है। गांधी का यह तर्क है कि यदि सभी प्राणी सदैव युद्ध-रत होते तो इस दुनिया में अब तक इंसानी प्रजाति शेष नहीं रह पाती। इसलिए गांधी का तर्क है कि मनुष्य निर्मित कानून तथा शासन अधिनियमित विधि से ज्यादा महत्वपूर्ण है नैतिकता की सत्ता। गांधी ने इसी नैतिकता को स्थापित करने की दिशा में औपनिवेशिक हुकूमत के विरुद्ध कई सत्याग्रह किए। कांट के विपरीत गांधी का यह भी तर्क था कि सत्य ही सर्वोच्च मूल्य है न कि विवेक की सत्ता व प्रभुता। गांधी ने कालांतर में सत्य को ही ईश्वर माना। उन्होंने कहा कि सत्य-निष्ठा ही मानवीय अस्तित्व की वैधता है। गांधी ने सत्य को सिर्फ अहिंसा से नहीं जोड़ा बल्कि उसे ब्रह्मचर्य, सच्चरित्रता और सेवा से भी जोड़ा। (Paranjape 2016 : 162-64)

इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि गांधी का चिंतन गहन रूप से भारतीय सभ्यता, धर्म एवं आध्यात्मिकता से जुड़ा हुआ था। गांधी चिंतन एवं व्यवहार की द्वैधता तथा साधन और साध्य के बीच की द्वैधता को स्वीकार नहीं करते थे। वह हमेशा इन दोनों के बीच में एकत्व की वकालत करते थे। गांधी की सार्वभौमिकता भी कांट की सार्वभौमिकता से अलग है। औपनिवेशिक हुकूमत के विरुद्ध गांधी ने हमेशा कहा कि उनका लक्ष्य सिर्फ भारत की स्वतंत्रता नहीं है बल्कि मानव बंधुत्व भी है। मूलतः गांधी मनुष्यों को आंतरिक शत्रु से स्वराज की भी बात कर रहे थे। जो लोग मोह, लालच और कदाचार के मकड़जाल में उलझ चुके थे। गांधी उनलोगों के परिमार्जन की वकालत कर रहे थे। इन लोगों में सेवा, सौहार्द, स्नेह जैसे जन-सद्गुणों की महत्ता पर बल दे रहे थे। इस प्रकार हम पाते हैं कि जहां गांधी शांति को मनुष्य के नैतिक व्यवहार और नैतिक आदर्श के अवलंब पर आधारित करते हैं वहीं कांट इसे मानव निर्मित कानूनों, विधियों और संवैधानिक व्यवस्थाओं से विनियमित करना चाहते हैं। (Paranjape 2016 : 164-67) इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कांट जहाँ सतत शांति की तलाश में आधुनिक विधिक समाधान ढूंढते हैं, वहीं गांधी सतत शांति स्थापित करने की दिशा में नैतिक एवं आध्यात्मिक समाधान

प्रस्तुत करते हैं। गांधी ने अहिंसा और सत्याग्रह पर आधारित स्वराज की स्थापना की अनुशंसा की है, जबकि कांट इसके विपरीत आधुनिक अधिनियमित विधियों द्वारा शांति पूर्ण नागरिक समाज की परिकल्पना प्रस्तुत करते हैं।

आधुनिकता का स्याह पक्ष हमने वैश्विक आंतकवाद के अलकायदा, आई.एस.आई., और बोको हरम के पाशविक चरित्र में देखा है। मोसूल, अलेप्पा और अल्जीरिया में रूसी, अमेरिकी और नैटो सेनाएं कट्टरपंथी आतंकवादी संगठनों से युद्धरत हैं। भारत के पड़ोसी मुल्कों में भी प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से सैन्य और हिंसा का शासन है। अफगानिस्तान, पाकिस्तान और म्यांमार अब तक भी एक समावेशी लोकतांत्रिक राष्ट्र-राज्य बनने में असफल रहा है। उत्तर-वेस्टफेलियन आधुनिक राष्ट्र-राज्य अपने भूभागिता, नागरिकता एवं संप्रभुता के सार्वभौमिक वैश्विक अंतर्द्वंद से उत्पन्न टूटन का कोई दूरगामी समुचित हल प्रस्तुत करने में सफल होता नजर नहीं आ रहा है। औद्योगिक आधुनिकता ने पर्यावरण असंतुलन की स्थिति उत्पन्न कर दी है। प्राकृतिक आपदाओं को नैतिकता की संकट से जोड़ने की भी आवश्यकता है। नागरिक सद्गुणों को नैतिकता के आधार पर ही जनहित के लिए निष्ठाबद्ध किया जा सकता है। किसी भी राजनीतिक समुदाय की जन सेवा प्रदायगी की क्षमता को निष्पादन इस दिशा में नैतिक सामुदायिक सेवा भाव से ही संभव है।

नित-नियामक, सैन्य-औद्योगिक आधुनिक राज्य और समाज विज्ञान, वस्तुनिष्ठता, नियंत्रण, और सार्वभौमिक विधियों की केन्द्रीय भूमिका पर आधारित कथानक की उत्तरोत्तरता पर बल देता है जबकि गांधी और टैगोर लोक विवेक, लोक संस्कृति, सेवा और नैतिकता को मानवीय समाज के साझे सृजनात्मक जीवन की सार वस्तु मानते हैं। कांट, गांधी और टैगोर विश्व मानवता के शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के मूर्धन्य चिन्तक हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

i. Dev, Arjun, 2011, Gandhi-Nehru Correspondence: A Selection, New Delhi : National Book Trust.
ii. Gandhi, M., K., 1957, An Autobiography: The Story of My Experiments with Truth, Boston: Beacon Press.
iii. Gupta, K.S., 2005, The Philosophy of Rabindranath Tagore, Aldershot: Ashgate.
iv. Khilnani, Sunil, 2015, 'Nehru's Faith', in Needham, A.D.and Rajeshwari Sunder Rajan (eds) The Crisis of Secularism in India, New Delhi : Permanent Black.
v. नंदी, आशीष, 2005, राष्ट्रवाद बनाम देशभक्तिः रवींद्रनाथ ठाकुर और इयत्ता की राजनीति, (अनुवाद-अभय कुमार दुबे), नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन एवं सीएसडीएस
vi. Nandy, A., 2010, Ashis Nandy Reader, Shanghai : West Heavens Project and Nanfang : Nanfang Daily Press.
vii. Paranjape, R. Makarand, 2016, Cultural politics in Modern India: Postcolonial Prospects, Cultural Cosmopolitanism, Global proximities, Oxon: Routledge Taylor & Francis Group.
viii. Tagore, R., 1991, Nationalism, London: Papermac (Quoted in L.P. Thompson's introduction to Rabindranath Tagore).

***

गांधी की सभ्यता-दृष्टि

प्रो. शंभु प्रसाद सिंह[37]

महात्मा गांधी ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि हिंदुस्तान पश्चिमी सभ्यता के कारण ही गुलाम हुआ है और हिंदुस्तान की दुर्दशा के लिए अंग्रेजी राज से अधिक अंग्रेजी (पश्चिमी) सभ्यता जिम्मेदार है।[1] इसलिए यदि हम भारतीय पश्चिमी सभ्यता के मायाजाल से निकलकर हिंदुस्तानी सभ्यता-संस्कृति के मूल्यों को आत्मसात कर लें, तो हमें आजाद होने में देर नहीं लगेगी। एंथनी जे. परेल के शब्दों में, "गांधी अपने देशवासियों से कहना चाहते थे कि ब्रिटिश उपनिवेशवाद उनका असली दुश्मन नहीं, वरन् असली दुश्मन तो पाश्चात्य सभ्यता है। जबतक वे पाश्चात्य सभ्यता की राजनीतिक चकाचौंध से चौंधियाते रहेंगे, तबतक परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़े रहेंगे, चाहे भले ही वे राजनीतिक आजादी क्यों न हासिल कर लें।" [2]

गांधी के अनुसार आधुनिक (पश्चिमी) सभ्यता 'बिगाड़ करने वाली' और 'अधर्म' का पर्याय है। यह हमें भौतिकवादी दृष्टिकोण देती है और हमारे विचारों को शरीर एवं ऐंद्रिक सुख की वृद्धि के साधनों पर केंद्रित करती है। इसमें लोग बाहरी (दुनिया) की खोजों एवं शारीरिक सुखों में धन्यता-सार्थकता और पुरूषार्थ मानते हैं। इसलिए इसमें मनष्य मख्यतः शरीर के लिए ही उद्योग करता है। वास्तव में, यह एक 'शैतानी सभ्यता' है, जो 'जिसकी लाठी उसकी भैंस', 'योग्यतम की रक्षा' या 'दूसरों को मारकर जियो के सिद्धांत पर आधारित है। इसके दुष्परिणाम स्वरूप लोगों ने अधिकाधिक भौतिक संपदाओं को संग्रहित करने की होड़ लगी रहती है। इस होड़ में शक्तिशाली शक्तिहीनों का शोषण करते हैं। इसकी वजह से लोगों के नैतिक विकास की गति अवरूद्ध हो गयी है और प्रगति का मापदंड रूपया ही हो गया है। इस कथित सभ्यता के निर्माण के लिए स्त्री-पुरूषों और बालकों की लाशों पर बड़े-बड़े कल-कारखाने खड़े किये गये हैं।

गांधी ने 'हिंद-स्वराज' में आधुनिक सभ्यता के खोखलेपन से संबंधित कई उदाहरण दिये हैं। मसलन, यूरोप के लोग अच्छे घरों में रहने और अच्छे कपड़े पहनने को सभ्यता की निशानी मानते हैं। भाप के यंत्र से हल चलाकर एक आदमी बहुत सारी जमीन जोत सकता है और बहुत-सा पैसा जमा कर सकता है, यह भी सभ्यता की निशानी है। गांधी आगे कहते हैं, "पहले लोग कुछ ही किताबें लिखते थे और वे अनमोल मानी जाती थीं। आज हर कोई चाहे जो लिखता है, छपवाता है। और लोगों के मन को भरमाता है। पहले लोग बैलगाड़ी से रोज बारह कोस की मंजिल तय करते थे। आज रेलगाड़ी से चार सौ कोस की दूरी तय कर लेते हैं। ... पहले लोग लड़ना चाहते थे, तो एक दूसरे से शरीर बल आजमाते थे।

---

[37]जीएफ-1 शैल निकेतन, लालकोठी, भागलपुर - 812002 (बिहार)

आज तो तोप के एक गोले से हजारों जानें ली जा सकती हैं। पहले जैसे रोग नहीं थे, वैसे रोग आज लोगों में पैदा हो गये हैं।"[3]

गांधी मानते हैं कि पश्चिमी सभ्यता में नीति या धर्म की बात नहीं है। यह सभ्यता हिंसक एवं अधार्मिक है। इस सभ्यता की खूबी यह है कि लोग इसे अच्छा मानकर इसमें कूद पड़ते हैं और फिर वे न तो घर के होते हैं, न घाट के। वे सच बात को भी भूल जाते हैं। यह सभ्यता स्वार्थ से भरी, दंभपूर्ण और ईश्वर को भी भूलाने वाली है। इसमें अपने के अलावा अन्य लोगों को तुच्छ एवं असभ्य माना जाता है। यह सभ्यता दूसरों का नाश करने वाली और खुद भी नाशवान है। इसलिए, इस सभ्यता की चपेट में आए लोग खुद की जलाई हुई आग में जल मरेंगे।

जाहिर है कि पश्चिमी सभ्यता न केवल भारत, वरन् पूरी मानवता के लिए घातक है। इसलिए, गांधी इसका पुरजोर विरोध करते हैं। वे साफ-साफ कहते हैं, "मैं तो यूरोप की आधुनिक सभ्यता का शत्रु हूँ। 'हिंद-स्वराज' में मैंने अपने इसी विचार को निरूपित किया है। यह बताया है। कि भारत की दुर्दशा के लिए अंग्रेज नहीं, बल्कि हम लोग ही दोषी हैं, जिन्होंने आधुनिक सभ्यता स्वीकार कर ली है। यदि हम इस सभ्यता को छोड़कर सच्ची धर्म-नीति से युक्त अपनी प्राचीन सभ्यता पुनः अपना लें, तो भारत आज ही मुक्त हो सकता है। " [4] इस तरह गांधी भारतीयों से अपनी जड़ों की ओर लौटने की अपील करते हैं और भारतीय सभ्यता-संस्कृति को बचाने एवं अपनाने की प्रेरणा देते हैं।

गांधी के अनुसार, "सभ्यता वह आचरण है, जिससे आदमी अपना फर्ज अदा करता है। यहाँ फर्ज अदा करने का मतलब है नीति का पालन और नीति के पालन का अर्थ है, अपने मन एवं इंद्रियों को बस में रखना। ऐसा करते हुए व्यक्ति अपने आपको, अपने असली स्वरूप को पहचानता है।" [5]हिंदुस्तान की सभ्यता में ये सारी बातें मौजूद हैं और उसका झुकाव नीति को मजबूत करने की ओर है, इसलिए यह सच्ची सभ्यता है। सच्ची सभ्यता का लक्षण भी अपरिग्रह है, परिग्रह को विचार एवं इच्छापूर्वक घटाना है। ज्यों-ज्यों परिग्रह घटता है, त्यों-त्यों सच्चा सुख, सच्चा संतोष और सेवा-शक्ति बढ़ती है। इसमें हमारा ध्यान जीवन की ऊँची प्रवृत्तियों, ईश्वर के प्रति प्रेम, पड़ोसियों के प्रति शिष्टता और आत्मा के अस्तित्व की अनुभूति पर जाता है। प्राचीन भारतीय सभ्यता संयम प्रधान है। वह हमें बताती है कि मनुष्य ज्ञानपूर्वक अपनी आवश्यकताओं को जितना कम करता है, वह उतना ही आगे बढ़ता है। इसमें बाह्य प्रवृत्तियों की अपेक्षा आंतरिक प्रवृत्तियों को ज्यादा महत्त्व दिया गया है। वे कहते हैं, "भोग भोगने से भोग की इच्छा ही बढ़ती है। इसलिए, हमारे पूर्वजों ने भोग की सीमाएँ हद, बाँध दी। ऐसा नहीं था कि हमें यंत्र वगैरह की खोज करना ही नहीं आता था। बल्कि, हमारे पूर्वजों ने देखा कि लोग अगर यंत्र आदि की झंझट में पड़ेंगे, तो गुलाम ही बनेंगे और अपनी नीति को छोड़ देंगे। [6]

गांधी लिखते हैं, "जो सभ्यता हिंदुस्तान ने दिखायी है, उस तक दुनिया में कोई नहीं पहुँचा सकता। जो बीज हमारे पूर्वजों ने बोये हैं, उनकी बराबरी कर सके, ऐसी कोई चीज देखने में नहीं आयी। रोम मिट्टी में मिल गया, ग्रीस का सिर्फ नाम ही रह गया, मिस्र की बादशाही चली गयी, जापान पश्चिम के शिकंजे में फंस गया और चीन का कुछ भी कहा नहीं जा सकता। लेकिन, गिरा-टूटा जैसा भी हो, हिंदुस्तान आज भी अपनी बुनियाद में मजबूत है।"[7] उन्होंने पाश्चात्य विचारकों द्वारा हिंदुस्तानी सभ्यता

को जड़ एवं पिछड़ा बताने का प्रतिकार किया है। वे तो यहाँ तक कहते हैं, "हिंदुस्तान के हित चिंतकों का हिंदुस्तानी सभ्यता से ऐसे ही चिपटा रहना चाहिए, जैसे बच्चा माँ से चिपटा रहता है।"[8] जाहिर है कि गांधी भारतीय जनमानस में अपनी सभ्यता-संस्कृति के प्रति प्रेम एवं स्वाभिमान जगाना चाहते थे।

गांधी पश्चिमी सभ्यता की बजाय भारतीय सभ्यता के हिमायती थे। उनका मानना था कि पश्चिमी सभ्यता विनाशक है, जबकि भारतीय सभ्यता विधायक। पश्चिमी सभ्यता केंद्र से दूर ले जानेवाली भारतीय सभ्यता केंद्र की तरफ ले जानेवाली है। इसलिए, पश्चिमी सभ्यता तोड़नेवाली और जबकि भारतीय जोड़ने वाली है। पश्चिमी सभ्यता का कोई लक्ष्य नहीं है जबकी भारतीय सभ्यता के सामने सदा लक्ष्य रहा है। यहाँ यह स्पष्ट करना जरूरी है कि गांधी पश्चिमी सभ्यता को मूलतः अनैतिक और विनाशकारी मानने के बावजूद उसकी अच्छाइयों को अपनाने से गुरेज नहीं करते थे। गांधी कहते हैं, "यद्यपि मैं पाश्चात्य भौतिकवाद से बराबर सशंकित रहता हूँ। फिर भी, पश्चिमी सभ्यता में जो अच्छाई है, उनका मैं सदैव स्वागत करूंगा।" गांधी कहते हैं, "मैं यह नहीं मानता कि या तो भारत ऊपर-ऊपर से यूरोपियन रहन-सहन स्वीकार कर ले या उसे प्राचीन आर्य-परंपरा पर ही लौटने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग नहीं है। यदि यह इष्ट हो तो भी प्राचीन परंपरा पर पूरे तौर से ठीक-ठाक लौट पाना असंभव है। पहले तो यही कोई निश्चित और प्रामणिक रूप से नहीं जानता कि आर्य-परंपरा क्या थी अथवा क्या है? स्वर्ण-युग का समय ठीक-ठीक निश्चित करना और न करना अत्यंत कठिन है। मुझे यह मानने की नम्रता है कि पश्चिम से भी बहुत-सी लाभदायक बातें सीख सकते हैं। मैं तो इस आधार पर पश्चिमी सभ्यता का विरोध करता हूँ कि उसकी नकल बिना विचारे की जाती है और वह इस बात से कि एशियाइयों को केवल पश्चिम की नकल उतारने भर के लिए ही योग्य माना जाता है। मैं विश्वास करता हूँ कि यदि भारत को कष्ट की आग में तपना और उसकी सभ्यता पर, जो अपूर्ण ही सही, पर अब समय की चोटें सहती आई है, आक्रमणों का विरोध करने की शक्ति हो, तो वह संसार की शांति और ठोस उन्नति में स्थाई मदद दे सकता है।" [10]

संस्कृति-दर्शन

गांधी ने देश-समाज की विभिन्न समस्याओं एवं परिस्थितियों को समझते हुए यह निश्चित किया कि भारत को अपनी संस्कृति एवं परंपराओं से तटस्थ होकर, विदेशी सभ्यता व संस्कृति के बहाव में बहने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि उसे आधुनिक युग को ध्यान में रखते हुए भारतीयता के आधार पर ही अपने समाज एवं संस्कृति का आवश्यक परिमार्जन करना चाहिए। उन्होंने कहा, "मैं नहीं चाहता कि मेरा घर चारों ओर से दीवारों से घिरा हो और उसकी सभी खिड़कियाँ बंद हों। मैं चाहता हूँ कि सभी देशों की संस्कृतियों की सुवासित वायु मेरे घर के चारों ओर बहे। लेकिन मैं ऐसी किसी वायु से अपने पाँव नहीं उखड़ने दूंगा। मुझे औरों के घर में दस्तंदाज, भिखारी या गुलाम बनकर रहने से इंकार है। "[11]

यह बात मेरे मन में दूर-दूर तक नहीं है कि हम एकांतिक बन जाएँ या अपने चारों ओर अवरोध खड़े कर लें लेकिन औरों की संस्कृति की सराहना का प्रश्न अपनी संस्कृति की सराहना और उसके आत्मसातीकरण के बाद उठना उचित है, उससे पहले कदापि नहीं। जो बहुमूल्य रत्न हमारी संस्कृति के पास हैं, वे किसी अन्य संस्कृति के पास नहीं हैं। पर हमें उनका ज्ञान ही नहीं है, हमें अपनी संस्कृति के

अध्ययन का विरोध करने और उसका अवमूल्यन करने की पट्टी पढ़ाई गयी है। परिणाम यह है कि हमने अपनी संस्कृति को जीना लगभग छोड़ ही दिया है। आचरण के बिना कोरा शास्त्रीय ज्ञान एक संलेपित शव के समान होता है, जो देखने में भले ही सुंदर लगे, पर वह प्रेरणा देने या उदारीकरण करने वाला सिद्ध नहीं हो सकता।

हमारा धर्म अन्य संस्कृतियों का अनादर अथवा उनकी उपेक्षा नहीं करता है, साथ ही वह मुझसे अपनी संस्कृति को आत्मसात करने और उसे जीने का आग्रह भी करता है क्योंकि ऐसा न करना हमारे लिए निश्चित रूप से आत्मघाती होगा। भारतीय संस्कृति उन विभिन्न संस्कृतियों का संश्लेषण है, जो इस देश में रच-बस गयी हैं और जिन्होंने भारतीय जीवन को प्रभावित किया है तथा स्वयं इस धरती की आत्मा से प्रभावित हुई है। स्वभावतया इस संश्लेषण का स्वरूप स्वदेशी है, जिसमें हर संस्कृति के लिए उचित स्थान सुनिश्चित है।

भारतीय सभ्यता भिन्न-भिन्न धर्मों का प्रतिनिधित्व करने वाली और अपने-अपने भौगोलिक तथा अन्य पर्यावरणों से प्रभावित संस्कृतियों का संगम है। तदनुसार इस्लामी संस्कृति अरब, तुर्की, मिस्र और भारत में एक जैसी नहीं है, लेकिन वह स्वयं इन देशों की परिस्थितियों से प्रभावित हुई है। अतः भारतीय संस्कृति भारतीय है। यह न पूरी तरह हिंदू है, न इस्लामी और न कोई अन्य। यह इन सबका मिलाजुला रूप है और मूलतः पूर्वी है। जो व्यक्ति स्वयं को भारतीय कहता है, उसका यह कर्तव्य है कि इस संस्कृति की कद्र करे, इसका न्यासी बने और यदि इस पर कोई आँच आए, तो उसका प्रतिकार करे।

गांधी यह मानते थे कि हमारे युग की भारतीय संस्कृति अभी निर्माणाधीन है। हममें से अनेक लोग उन संस्कृतियों का, जिनके बीच आज टकराव की स्थिति दिखाई दे रही है, एक मिश्रण तैयार करने का प्रयास कर रहे हैं। जो संस्कति एकांतिक रहने का प्रयास करेगी वह जीवित नहीं रह, सकेगी। आज भारत में विशद्ध आर्य संस्कति जैसी कोई चीज विद्यमान नहीं है। आर्य लोग भारत के ही मूल निवासी थे या वे यहाँ जबर्दस्ती घुस आए, इस संदर्भ में गांधी तर्क देते हैं कि उनकी रूचि तो इस तथ्य में है कि बहुत पहले के पूर्वज पूरी स्वतंत्रता के साथ एक-दूसरे से घुल-मिल गये थे और हमारी वर्तमान पीढ़ी उसी मिश्रण का परिणाम है। यह भविष्य ही बताएगा कि क्या हम अपनी जन्मभूमि का और उस छोटी-सी संस्कृति का जो सुंदर मिश्रण तैयार किया गया है, उसे बनाए रखने और सुदृढ़ करने का प्रयास करेंगे या उस दिन की खोज में लग जाएंगे, जब हिंदुस्तान में केवल एक धर्म था और अपने कदम उसी एकांतिक संस्कृति की ओर वापस मोड़ ले जाएंगे। उन्होंने कहा कि यह भी संभव है कि हम ऐसी किसी ऐतिहासिक तिथि की खोज में सफल ही न हो पाएँ और अगर हो भी जाएँ और अपने कदम वापस मोड़ लें, तो अपनी संस्कृति को किसी कुरूप युग की ओर धकेल दें। यदि ऐसा हुआ तो दुनिया हमें कोसेगी, जो उचित ही होगा।

गांधी की मान्यता है कि यूरोपीय सभ्यता निस्संदेह यूरोपवासियों के अनुकूल है, लेकिन हम यदि उसके अनुकरण का प्रयास करेंगे, तो बर्बाद हो जाएंगे। कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि उसमें जो कुछ अच्छा और अंगीकार करने योग्य है, हम उसे भी न अपनाएँ। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि यूरोपीय सभ्यता में यदि बुराइयाँ पैदा हो गयी हों, तो उन्हें निकालना यूरोपवासियों के लिए लाजिमी नहीं है।

भौतिक सुखों के पीछे लगातार दौड़ना और उनमें अंधाधुंध वृद्धि करना ऐसी ही एक बुराई है। और, यूरोपवासी जिन सुखों के गुलाम हुए जा रहे हैं, अगर उनके भार तले दबकर नष्ट हो जाना नहीं चाहते, तो उन्हें अपने दृष्टिकोण में बदलाव लाना होगा। गांधी ने स्वयं भी कहा है, "मैंने अपने ऊपर पाश्चात्य संस्कृति के ऋण को खुलकर स्वीकार किया है, पर मैं यह कह सकता हूँ कि इस राष्ट्र की जो भी सेवा मुझसे बन पड़ी है, वह केवल इसलिए कि क्योंकि मैंने प्राच्य संस्कृति का दामन पकड़े रहने की कोशिश की है। मैं अगर अँग्रेजी को अपनाकर एक विराष्ट्रीय व्यक्ति बन गया होता और भारत की आम जनता के बारे में कुछ न जानता और उनकी चिंता ही न करता तथा उनके तौर-तरीकों, आदतों, विचारों और आकांक्षाओं को तिरस्कार की दृष्टि से देखता, तो मैं उनके लिए बिलकुल बेकार साबित हुआ होता।"[12] उन्होंने यह अनुशंसा कि हमें 'सादा जीवन उच्च विचार' वाले आदर्श वाक्य को अपने हृदय-पटल पर अंकित कर लेना चाहिए। हम लाखों-करोड़ों लोगों को उच्च स्तर का जीवन उपलब्ध नहीं करा सकते और हम मुट्ठीभर लोग जो सर्वसाधारण के हित की बात सोचने का दावा करते हैं, उच्चतर जीवन स्तर की खोज में तो कामयाब हो नहीं पाएँगे उच्च विचार के आदर्श को भी खो बैठेंगे।

पश्चिमी संस्कृति के प्रभुत्व के विरुद्ध गांधी की मान्यता है कि हमारे लिए हमारी संस्कृति की रक्षा कोई दूसरा नहीं कर सकता। इसकी रक्षा हमें स्वयं करनी होगी और हम इसे अपनी मूर्खता के कारण नष्ट भी कर सकते हैं। यद्यपि हमें राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त हो गयी है, पर हम पश्चिम के सूक्ष्म प्रभुत्व से राजनीतिज्ञों के उस संप्रदाय से कुछ नहीं कहना जो यह मानता है कि ज्ञान केवल पश्चिम से मिल सकता है। विश्वास को सही मानता हूँ कि पश्चिम से हमें कोई अच्छी चीज नहीं मिली लेकिन मुझे भय है कि हम अभी तक इस मामले में किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सके हैं। यह दावा कोई नहीं करेगा कि चूंकि हमें विदेशी आधिपत्य से राजनीतिक स्वतंत्रता मिल गयी है, अतः मात्र यही तथ्य हमें विदेशी भाषा और विदेशी विचारों के सूक्ष्मतर प्रभाव से भी स्वतंत्रता दिलाने के लिए पर्याप्त है। गांधी पूरी दुनिया का एकीकरण चाहते थे। उन्होंने तो यहाँ तक कहा है, "अगर दुनिया को एक नहीं होना है, तो मैं इसमें रहना नहीं चाहूँगा। मैं निश्चित रूप से यह चाहता हूँ कि यह सपना मेरे जीवनकाल में ही सच हो जाए।" [13]

गांधी के लिए अंग्रेजों की प्रत्यक्ष उपस्थिति साम्राज्यवाद का मुख्य पहलू नहीं था, वे तो आर्थिक और बौद्धिक गुलामी को ज्यादा खतरनाक मानते थे। वे हिंदुस्तान को हिंदुस्तान बनाना चाहते थे, इंग्लैंड या अमेरिका नहीं क्योंकि, भारत के इंग्लैंड या अमरीका बनने के लिए दुनिया में कुछ अन्य जातियों और स्थानों को ढूंढना होगा, ताकि उनका शोषण किया जा सके। इसलिए गांधी शोषण एवं अनैतिकता के रास्ते पर चलकर भारत की तथाकथित आर्थिक उन्नति के पक्षधर नहीं थे। इसके विपरीत वे चाहते थे कि भारत स्वेच्छा से सादगी को अपनाये और दुनिया के सामने स्थायी विकास एवं संतुलन का आदर्श प्रस्तुत करे।

कुल मिलाकर, हम देखते हैं कि संस्कृति की गांधी-दृष्टि आधुनिक पश्चिमी सभ्यता की दानवी प्रवृतियों के विपरीत प्राचीन भारतीय संस्कृत में अंतर्निहित मानवीय मूल्यों, नैतिक संस्कारों एवं

सामाजिक सरोकारों का संरक्षण एवं संवर्द्धन करती है। आज जिस तरह से संस्कृति का बाजारीकरण हो रहा है, तो हमें गांधी-दृष्टि से प्रेरणा लेने की जरूरत है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. गांधी, मोहन दास करमचंद, हिंद स्वराज, अमृतलाल ठाकोरदास नानावटी (अनुदित), सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वारणसी (उत्तर प्रदेश), आठवाँ संस्करण-2009, पृ. 44.
2. मिश्रा, अनिल दत्त, "हिंद स्वराज : विषय और संदर्भ", गांधी : एक अध्ययन, संपादक : सुरजीत कौर जौली, कन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, 2007, पृ. 52.
3. गांधी, मोहन दास करमचंद, हिंद स्वराज, पूर्वोक्त, पृ. 38-39.
4. गांधी, मोहन दास करमचंद, नवजीवन, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद (गुजरात), 29 दिसंबर 1920.
5. गांधी, मोहन दास करमचंद, इंडियन ओपीनियन, 29 अप्रैल 1914.
6. गांधी, मोहन दास करमचंद, नवजीवन, पूर्वोक्त, 29 दिसंबर, 1920.
7. गांधी, मोहन दास करमचंद, यरवदा जेल, 26 अगस्त, 1930.
8. गांधी, मोहन दास करमचंद, हिंद स्वराज, पूर्वोक्त, पृ. 55.
9. वही, पृ. 57.
10. गांधी, मोहन दास करमचंद, इंडियन ओपीनियन, 6 जून 1908.
11. गांधी, मोहन दास करमचंद, यंग इंडिया, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद (गुजरात), 26 दिसंबर 1924.
12. गांधी, मोहन दास करमचंद, यंग इंडिया 1 सितंबर 1921, पृ. 277.
13. वही.

***

वैश्वीकरण और अहिंसा

डॉ. मुकेश कुमार वर्मा[38]

वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में मानव ने जहाँ एक ओर समृद्धि प्राप्त की है, वहीं दूसरी ओर उसने स्वास्थ्य, लोभ, हिंसा आदि भावनाओं के वशीभूत होकर आपसी कलह, अतिक्रमण आदि का भी अकल्याणकारी और विनाशकारी मार्ग अपनाया है। अतः आज संसार में चारों ओर कुछ दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएं जैसे हिंसा, धार्मिक उन्माद और साम्प्रदायिक दंगे, नस्लीय टकराव, कट्टरपंथी और जातीय जनसंहार, सांस्कृतिक फासीवाद और ऐसी ही अन्य गंभीर समस्याओं का बोलबाला है। विश्व सभ्यता के इतिहास को भी हिंसा और अहिंसा के संघर्ष की कहानी कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि आज संसार का प्रत्येक भाग हिंसा की पीडा से त्रस्त है। प्रत्येक दिन मीडिया में हिंसक घटनाओं की खबरें आती है और कोई ऐसा देश नहीं है जहाँ के समाचार पत्रों में मृत्यु, हिंसा और मानव हत्याओं का हिंसक समाचार न हो।

वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में भौगोलिक दृष्टि से दूरी कम हुई है लेकिन व्यक्ति से व्यक्ति के बीच अन्तर बढ गया है। सहयोग का स्थान प्रतिस्पर्धा एवं उपभोक्तावाद ने ले लिया है। वर्तमान में विश्व के सभी देशों के बीच परमाणु शक्ति बनने की होड लगी हुई है। आतंकवाद चारों ओर फैला हुआ है। कई देशों में गृह युद्धों की भयावह स्थिति बनी हुई है। अतः दुनिया आज जिन समस्याओं का सामना कर रही है, उसकी जड़ में गांधीवादी अहिंसक मूल्यों से दूर चला आना है। जिस वातावरण एवं जिन परिस्थितियों में आज विश्व है, जो घटनाएँ हमारे सामने घटित हो रही हैं इन परिस्थितियों में विश्व को यह समझ जगाने की जरूरत है कि हिंसा से कभी किसी समस्या का समाधान नहीं हो सकता। यह लक्ष्य सिर्फ तकनीकी शक्तियों के उपयोग से हासिल नहीं किया जा सकता बल्कि अहिंसात्मक तरीके से हासिल करना होगा। निःसन्देह वर्तमान समस्याओं का एकमात्र हल यही है कि संघर्षों का समाधान करने के लिए गांधीयन अहिंसात्मक तरीके अपनाए जायें।

वस्तुतः अहिंसा एक अत्यन्त प्राचीन शब्द हैं जो परम्परा का हिस्सा सदियों से रहा है किन्तु इतिहास लेखन की दृष्टि से अहिंसा शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 'छन्दोग्योपनिषद् में किया गया है। इसमें कहा गया है यज्ञ, हवन आदि में भी अहिंसा को महत्त्व दिया जाना चाहिए। महाभारत का 'अनुशासन पर्व भी अहिंसा का ही पर्व है इसमें अहिंसा को परम धर्म, परम तप, परम सत्य, परम संयम, परम यश, परम मित्र, परम सुख कहा गया है। मनुस्मृति में भी लिखा गया है जो मनुष्य होकर भी निरपराधी प्राणियों को अपने सुख के लिए दुःख देता है वह न तो इस जन्म में सुखी रहता है और न ही मरने के बाद सुख प्राप्त कर सकता है। जैन वाड्मय में भी अहिंसा को परमब्रह्म कहा गया है। हिन्दू धर्म शास्त्र के अलावा

[38] सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

अन्य धर्मों में भी अहिंसा का एक प्रमुख धरोहर रही है। उदाहरण के तौर पर इस्लाम इन्सान की बराबरी और भाईचारा सिखाता है। इस्लाम परायण खलीफाओं व औलियाओं में भी किसी न किसी रूप में अहिंसा अखण्ड रूप से प्रवाहित हुई है। काका कालेलकर नवी शाहब भी नवाज अदा करने के आदेश का जिक्र करते हैं जिसमें प्रहार सहकर रणक्षेत्र में भी समय पर नवाज अदा करना कर्त्तव्य कहा गया है। कुरान जहां अहिंसावादी दर्शन से भरा पड़ा है वहीं ईसायत और बाइबिल में भी अहिंसावादी दर्शन मिलता है। ईसाइ धर्म कृतघ्न के प्रति करुणा प्रदर्शित करना सिखाता हैं। बाइबिल में विभिन्न रीतियों से सच्ची शांति को सिखाया गया है। भारतीय धर्मों जैन, बौद्ध और हिन्दू धर्म में भी अहिंसा के विभिन्न स्रोतों के दर्शन होते हैं। भगवान महावीर ने अहिंसा को परिभाषित करते हुए कहा है कि मन, वचन और काया इनमें से किसी एक द्वारा भी किसी प्रकार के जीवों पर हिंसा न हो। गौतम बुद्ध ने अहिंसा की परिभाषा देते हुए कहा है कि त्रय या स्थावर जीवों को न मारे, तमारते से आज्ञा दे, न मारने वालों का अनुमोदन करे। पाश्चात्य विद्धानों जिन्होंने गाँधी को प्रभावित किया उनकी रचनाओं एवं विचारों में अहिंसा व अहिंसात्मक तत्व का पर्याप्त मात्रा में समर्थन दिखाई देता है। टॉलस्टाय कहा करते थे कि घृणा करनी हो तो पाप से की जाय न की पाप करने वालों से। इसी तरह डेविड थ्योरों के विचारों में जो कि "सविनय अवज्ञा" में व्यक्त किये गये हैं अहिंसा के पूरक विचारों के दर्शन होते हैं। उनका मानना है कि प्रत्येक उस आदेश का विरोध किया जाना चाहिए जो कि असत्य एवं अन्याय पर आधारित हो। अन्तर गांधी ने अहिंसा के सिद्धान्तों को न केवल अपने पारिवारिक सूत्रों (माता, पिता, पत्नी), राजा हरिश्चन्द्र, भक्त प्रहलाद जैसे प्रभावी नाटकों, जैन, बौद्ध तथा वैष्णव धर्मों, रामायण तथा महाभारत जैसे धर्म ग्रन्थों टॉलस्टॉय के लेखों तथा बाईबिल के 'सरमन ऑन द माउण्ट' (पर्वत प्रवचन) से ग्रहण किया बल्कि अपने 55 वर्षों के सार्वजनिक जीवन में भी गांधी ने हिंसा के अवसर टालने तथा अहिंसा के प्रयोग के अवसर खोजने का निरन्तर प्रयत्न किया है। गाँधी ने अहिंसा को व उसके दर्शन को अपने हाथों में लेकर एक नवीन आकार व व्यवहारिकता प्रदान की। अहिंसा का प्रयोग उन्होंने सत्य व सत्याग्रह जैसी अन्य अवधारणाओं के साथ संयुक्त कर इसे एक जीवन दर्शन का समूह बना दिया। गांधी ने घोषणा की थी कि सत्य और अहिंसा व्यक्तिगत आधार के नियम नहीं है वे समुदाय, जाति और राष्ट्र की नीति का रूप ले सकते हैं। उनका मानना था कि अहिंसा सब जगहों और समय के लिए उपयुक्त है।

परन्तु वर्तमान संदर्भों में समाज में गांधीवादी अहिंसात्मक आन्दोलनों की व्यावहारिक क्रियान्विति के समक्ष अनेक चुनौतियाँ है जिनमें भौतिकतावाद एक भयावह समस्या के रूप में अपने पैर पसार रही है क्योंकि विदित है कि हिंसा का मूल कारण है-भौतिकतावाद है, जिसके चलते समाज अपनी सुख-सुविधाओं की अभिवृद्धि को निरन्तर तुलनात्मक रूप से और अधिक पुष्ट करने का प्रयास कर रहा है इसके लिए मबुस्य सृष्टि के अन्य प्राणियों का संहार करने के लिए भी नहीं हिचक रहा है। नित नये अनुसंधानों एवं खोजो के नाम पर या अपनी भौतिकतावादी पिपासा को शान्त करने के नाम पर या अपने जीवन रक्षण के नाम पर प्राणियों की जीवन की बलि देना भी हमारे लिए कोई चिन्ता की बात नहीं है। इतना ही नहीं वैश्विक परिदृश्य में भी विकसित और सम्पन्न देश अपनी सुख-सुविधाओं के लिए विकासशील देशों को भौतिकतावाद के लिए अपना साधन बनाने के लिए भी नहीं हिचक रहे हैं। भौतिकतावादी जीवन

में हर राष्ट्र स्वार्थपरक और प्रभुत्व का लोभी हो गया है जिसके कारण आम आदमी से लेकर अंतरराष्ट्रीय राजनीति में संघर्षमय वातावरण बन चुका है। वहीं भारत सहित सम्पूर्ण विश्व में आतंकवाद, नक्सलवाद जैसी घटनाएं लगातार बढ रही हैं। वर्तमान समय में मनुष्य भौतिकवादी हो गया है तथा उसकी महत्वाकांक्षाएं बहुत बढ गई हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रो में भी शीघ्र विकास करने तथा दूसरे राष्ट्रों को पराजित करने की होड मची हुई है। वैश्वीकरण ने विश्व को एक परिवार बना दिया लेकिन महाशक्तियों का द्विपक्षीय मामलों में हस्तक्षेप तथा विकाससील दश्म की आर्थिक लाचारी ने विश्व में संकट उत्पन्न कर दिया है। आज विश्व के राष्ट्रों ने हथियारों को त्याग कर अहिंसा को नहीं स्वीकार किया तो भविष्य में विश्व का विनाश निश्चित है।

आज आतंकवाद भारत सहित सम्पूर्ण विश्व में गांधी के अहिंसावादी सिद्धान्त के समक्ष एक प्रमुख चुनौती है। इसका उद्देश्य लोगों में दहशत फैलाना होता है। आतंकवादी यह कार्य बेकसूर लोगों की सामूहिक हत्या, सार्वजनिक भवनों, रेलवे स्टेशनों, व्यापारिक केन्द्र, दूतावास, बाजार आदि में भीषण बम विस्फोट करके फैलाते हैं। उन्हें इस बात से कोई मतलब नहीं होता कि मरने वाला बिल्कुल निर्दोष है। इसकी जड़ें सम्पूर्ण विश्व में हैं। अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद की पराकाष्ठा का सर्वाधिक ज्वलंत उदाहरण 11 सितम्बर 2001 को अमेरिका में विश्व व्यापार केन्द्र की इमारतों पर हुए हमले के रूप में हुआ था। इसके अतिरिक्त 13 दिसम्बर 2001 को भारतीय संसद पर हुए हमले ने लगभग सभी देशों में अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद के विरुद्ध संघर्ष के लिए एकजुट होने की प्रवृत्ति विकसित की। यह आतंकवादी समस्या गांधीवादी अहिंसक नीति के समक्ष बहुत बडी चुनौती है।

देश में लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था होने के कारण राजनैतिक दलों द्वारा समाज को भाषा, जाति एवं क्षेत्र के आधार पर बांटने की नीति अपना रखी है जिससे समाज कई वर्गों में बंट जाता है और अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए वह हिंसा का सहारा लेने से भी नहीं चूकता है, जो कि आज के इस युग में अहिंसा की व्यवहारिक क्रियान्वति के लिए यह एक भयावह चुनौती है।

शस्त्रीकरण की होड़ भी अहिंसा की व्यवहारिकता के समकक्ष एक प्रमुख चुनौती है। शस्त्रों की प्रतिस्पर्द्धा के बावजूद निशस्त्रीकरण के लिए द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अनेक प्रयास किये गये हैं। वर्तमान में कोई राष्ट्र युद्ध को महत्व नहीं दे रहा लेकिन निशस्त्रीकरण को स्वीकार करने में भी इन महाशक्तियों को परेशानी है। शस्त्रीकरण की होड़ ने मानव में भय और हिंसा का वातावरण पैदा कर दिया है। राष्ट्रों के मध्य शांति और समझौते भी नैतिक हिंसा के भय पर आधारित है।

वर्तमान अहिंसावादी आन्दोलनों के समक्ष पर्यावरण असन्तुलन भी एक भयावह समस्या है जिसका दुष्प्रभाव समस्त मानव-जाति पर पड़ रहा है। दुनिया में पर्यावरण को लेकर चेतना में वृद्धि तो हो रही है परन्तु वास्तविक धरातल पर उसकी परिणति होती दिखाई नहीं दे रही है। देश और दुनियाभर में पर्यावरण असन्तुलन और उससे समाज और राष्ट्र के जीवन पर पडने वाले प्रभावों की चिंता व्यक्त की जा रही है, लेकिन पर्यावरण असन्तुलन को कम करने की कोशिशें इतनी प्रभावपूर्ण नहीं है जितनी आवश्यक है। पर्यावरण असन्तुलन के प्रमुख कारण है बढ़ती जनसंख्या व बढ़ती मानवीय आवश्यकताएं तथा उपभोक्तावादी प्रवृति इनका असर प्राकृतिक संसाधनों पर पड़ता है। पेड़ों के कटने, भूमि के खनन,

जल के दुरुपयोग और वायुमण्डल के प्रदुषण ने पर्यावरण के लिए गंभीर खतरा पैदा किया है। यह खतरा मानवता के लिए भी है। इससे प्राकृतिक आपदाएं भी बढी हैं, हवा को शुद्ध करने और वर्षा जल को भूमि में रिसने की शक्ति लगातार क्षीण हो रही है। इसी का परिणाम है कि भूरक्षण, भूस्खलन और भूमि कटाव बढ़ रहा है। इससे पहाडों व ऊँचाई वाले इलाको की उर्वरता समाप्त हो रही है तथा मैदानों में यह मिट्टी पानी का घनत्व बढ़ाकर और नदी जल को ऊपर उठाकर बाढ़ की विभिषिका को बढ़ा रही है। उद्योगों और उन्नत कृषि ने पानी की खपत को बेहताश बढ़ाया है। उद्योगों के विषैले घोलों तथा गंदी नालियों के निकास ने नदियों को विकृत करके रख दिया है और उनकी शुद्धिकरण की आत्मशक्ति समाप्त हो गई है। कारखानों और वाहनों के गन्दे धुएँ और हरितगृह प्रभाव से विर्सजित गैसों ने वायुमण्डल को प्रदुषित कर दिया है। यह प्रदूषण जितना बढ़ेगा पृथ्वी पर प्राणियों का जीवन उसी मात्रा में दूभर हो जायेगा। स्पष्ट है कि जब तक पर्यावरण असन्तुलन बना रहेगा व औद्योगिकरण बढता रहेगा और गरीब जनता इन समस्याओं से परेशान रहेगी तब तक हम गांधीवादी अहिंसा को प्राप्त नहीं कर सकेंगे। ये समस्या गांधी की अहिंसा के समक्ष एक बहुत बडी चुनौती है।

अप्रासंगिक

केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति भी समाज में हिंसा को जन्म देती है। केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति के अन्तर्गत सत्ता का संचालन उच्च स्तर से होता है साथ ही बड़े-बड़े उद्योग धन्धों की स्थापना होती है जिसके कारण मानवीय श्रम का स्थान मशीने ले लेती है। पूंजी समाज के कुछ ही लोगों के हाथ में आ जाती है और समाज में बेरोजगारी फैल जाती हैं समाज दो वर्गों में बंट जाता है-पूंजीपति और श्रमिक। अतः वंचित वर्ग अपने आपको ठगा सा महसूस करता है और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह हिंसा पर उतारू हो जाता है।

भूमण्डलीकरण पूरे विश्व को एक वैश्विक गांव बनाने की बात करता है। यह देश की सीमा को आर्थिक रूप से रूकावट रहित कर देती है तथा राज्य की भूमिका कानून व्यवस्था तक ही सीमित मानती है। भारत में 1991 के बाद भुगतान सन्तुलन की समस्या तथा विदेशी ताकतों के दबाव के कारण भूमण्डलीकरण की नीतियाँ लागू हुई। हालांकि भूमण्डलीकरण ने वैश्विक व्यापार एवं पूंजी प्रवाह में व्यापक परिवर्तन किये हैं तथापि सामाजिक क्षेत्र में इसके कुप्रभाव भी परिलक्षित होते है जिससे मनुष्य हिंसा की ओर उतारु हो रहा है। भूमण्डलीकरण मनुष्य की आवश्यकता की पूर्ति हेतु आस-पास के संसाधनों से न करके दूर-दराज क्षेत्र पर निर्भर करता है। देशी अर्थव्यवस्था विश्व बाजार के लिए चलाई जाती है। जिससे लघु उत्पादन नष्ट होते है। जिससे चारों ओर गरीबी बढ रही है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों का जाल तेजी से फैलता जा रहा है और वे अर्थव्यवस्था के सभी अंगों पर कब्जा करके शोषण को बढावा दे रही है। समाज में गैर बराबरी बढ रही है जिससे सामाजिक बुराईयों की बाढ सी आ गई है। गरीबों की आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं हुआ है। अपितु उच्च वर्ग में उपभोगवादी संस्कृति का व्यापक असर हुआ है। साथ ही जातिवाद और साम्प्रदायिक मानसिकता बढ़ती जा रही है। भ्रष्टाचार, आतंक और हिंसा में वृद्धि हो रही है।

साम्प्रदायिकता अहिंसात्मक आन्दोलनों के समक्ष एक बडी समस्या है। साम्प्रदायिकता के नाम पर दंगे फसाद होते हैं जो हिंसा का रूप ले लेते हैं। वर्तमान में धर्म सम्प्रदाय की राजनीति के अगुवा चाहे वे हिन्दू हो, मुसलमान हो, सिख हो, इसाई हो, या किसी अन्य धर्म को मानने वाले आमतौर पर वही लोग है जो वर्तमान शोषणकारी व्यवस्था से अपना निहित स्वार्थ साध रहे हैं।

समाज में लैंगिक विषमता भी हिंसा को जन्म दे रही है। विभिन्न महिला संगठन, महिला आन्दोलन, नारीवादी विचारक तथा राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अनेक संगठन स्त्री की स्वतन्त्रता, समानता, अस्मिता, न्याय और गरिमा की स्थापना के लिए प्रयत्नशील होने के बावजूद लैंगिक असमानता समाज में विद्यमान है। बाल-विवाह, विधवाओं की स्थिति, पर्दाप्रथा ऐसी कुप्रथाएं है जिन्होंने स्त्री के साथ असमानता के व्यवहार को अन्याय तथा शोचनीय स्थिति में पहुंचा दिया है। समाज में आज महिलाओं के साथ घरेलु हिंसा अत्याचार बढ रहा है।

समाज में अहिंसा की व्यवहारिक क्रियान्विति के लिए भ्रष्टाचार एक भयावह समस्या है। भ्रष्टाचार और कालेधन की समस्या आज देश के प्रत्येक विभाग में फैली हुई है। गांधी ने अपनी हिन्द-स्वराज नामक कृति में लिखा था कि "भौतिक सम्पन्नता को हासिल करने की कोशिशों में व्यक्ति और देश हिंसा में लिप्त हो जायेंगे और मानवता खतरे में पड जायेगी, ऐसी स्थिति में समाज पशुबल से चालित होंगे। आज हम देख रहे हैं धनबल, बाहुबल और बुद्धिबल भी पशुबल से ही चालित हो रहे हैं। इस बल के अधीन होकर डर द्वारा और हिंसा के द्वारा व्यक्ति और समूहों को अंकुश में रखा जाता है। ऐसी स्थिति में गांधीय अहिंसावादी नीति के समक्ष भ्रष्टाचार भी प्रमुख चुनौती है।

गांधीयन अहिंसा के समक्ष चुनौतियों के समाधान हेतु सुझाव

वर्तमान समाज में अहिंसा की व्यावहारिक क्रियान्विति के समक्ष अनेक चुनौतियाँ है जिनका समाधान आवश्यक है जिसके लिये कतिपय सुझाव निम्न है-

अहिंसा के लिए आवश्यक है अपरिग्रह। अपरिग्रह का अर्थ है जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं को ग्रहण, सुविधाभोगीवृत्ति का त्याग। सुविधाभोगी वृत्ति का त्याग करने पर ही हम अहिंसक हो सकेंगे। अहिंसा के संबंध में गांधी का चिंतन मानव की अन्तर्जात प्रवृत्ति का द्योतक रहा है। उन्होंने मानव में अहिंसा को ईश्वर की अभिव्यक्ति के रूप में माना है। अहिंसा मानव स्वभाव की स्वतः स्फूर्ति अभिव्यक्ति है न कि बाह्य दबावों से प्रेरित कृत्रिम आचरण। यदि मनुष्य भयवश, प्रतिकार स्वरूप अपेक्षित व्यवहार का त्याग करे और अहिंसा का दम्भ भरे तो यह हिंसा से बदत्तर है। अहिंसा एक नैतिक सद्गुण है, एक अन्तर्जात मनोवृत्ति है। गांधी की भावात्मक अहिंसा के अनुसार एवं बीजरूप में विद्यमान परोपकार, दया, प्रेम, करूणा, सहानुभूति, सदाश्यता, सहअस्तित्व, संवेदनशील भावों को अपने से भरकर प्राणि मात्र के साथ व्यवहार करना चाहिए।

जब समाज, राष्ट्र, विश्व अथवा परिवार में विभिन्न समस्याओं, दुर्भावनाओं, विषमताओं अथवा दुराचारों का बोलबाला होता है तो उनके निराकरण के लिए प्रतिरोध भी जन्म लेते है। समस्या के समाधान के लिए विषमताओं के अभाव के लिए अथवा दुष्प्रवृत्तियों के निवारण के लिए अहिंसात्मक साधन सदा से प्रयोग में आते रहे हैं। अहिंसात्मक साधनों की सफलता किसी से छिपी हुई नहीं है। गांधी

ने देश की स्वतन्त्रता सिर्फ अहिंसा एवं अहिंसात्मक प्रतिरोध के प्रयोग के माध्यम से ही हासिल की थी। अहिंसात्मक प्रतिरोध के द्वारा ही समस्या का स्थाई हल प्राप्त किया जा सकता है। किसी भी विषमवादी परिस्थिति कानून अथवा प्रवृत्तियों के विरोध के लिए हिंसा के बजाय अहिंसा एक स्वस्थ दृष्टिकोण है। बुराई कैसी भी हो चाहे पारिवारिक स्तर की दुष्प्रवृत्तियां हो, समाज एवं राष्ट्र अथवा विश्व में व्याप्त आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक अथवा अन्य प्रकार की विषमताएं हो, किसी भी प्रकार की अव्यवस्था हो, लोभ, लालच की प्रवृत्तियां हों, सभी का प्रतिरोध अहिंसात्मक साधनों से किया जाए तो उन दुष्प्रवृत्तियों एवं विषम व्यवस्थाओं पर नियन्त्रण किया जा सकता है, उनका निराकरण किया जा सकता है। अहिंसात्मक प्रतिरोध का प्रयोग सफल तभी हो सकता है जब वह प्रयोग भी अहिंसा की ही भांति सहिष्णुता, प्रेम, मैत्री, क्षमा, करूणा, सत्य, अचौर्य, सदाचार, मानवीय समता, एकता एवं सह-अस्तित्व एवं हृदय परिवर्तन की भावना पर आधारित हो न कि ईर्ष्या, जलन, विद्वेष, साम्प्रदायिकता अथवा वातावरण को दुषित किये जाने के उद्देश्य से उठाया गया कोई कदम। सर्वप्रथम तो अहिंसक प्रतिकार का कदम उठाने वाले अहिंसक व्यक्तियों में अहिंसा के प्रति अटूट श्रद्धा का होना परमावश्यक है।

अशिक्षा और बेरोजगारी जैसी चुनौती से बचने के लिए उचित यह होगा कि शिक्षार्थियों को प्रारम्भ से ही अहिंसा का प्रशिक्षण दिया जाए। पाठ्यक्रम में मूल्यों के विकास का शिक्षण दिया जाए, तो अहिंसा के संस्कार जैसे दया, प्रेम, मैत्री का विकास हो सकता है और नियन्त्रण की क्षमता आ सकती है। इसी के साथ-साथ बालक को किताबी ज्ञान के साथ-साथ दस्तकारी की शिक्षा भी दी जानी चाहिए जिससे की वह अपनी पूर्ण शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् वह स्वयं स्वावलम्बी बनकर अपना जीवन निर्वाह आसानी से कर सके और बेरोजगारी से मुक्ति प्राप्त कर सके जिससे की वह हिंसा से दूर रहेगा और अहिंसा के मार्ग को अपनाते हुए अपना जीवन निर्वाह कर सकेगा। इसके साथ-साथ शिक्षण पद्धति एवं पुस्तकों का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि छात्र-छात्राओं को वैज्ञानिक सोच की दिशा में प्रेरित किया जा सके। अहिंसक विचारों एवं नीतियों को पाठ्यक्रम में समावेश किये जाने पर शिक्षाविद् जोर डाले। शिक्षण संस्थाओं में गांधी के अहिंसक विचारों के दर्शन का अध्ययन-अध्यापन एवं अहिंसा केन्द्रों की स्थापना करना अनिवार्य हो। उच्च शिक्षा के लिए गांधी के अहिंसक प्रयोगों पर आधारित कार्यशाला एवं संगोष्ठियों का आयोजन विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों में अधिक से अधिक हो।

हिंसा सदा अशान्ति, अभाव, बुराई, कलह और विग्रह में गृह करती है। जबकि अहिंसा स्वयं एक शान्ति है, समृद्धि है। उसमें समता है, सौहार्द व स्वावलम्बन है और आत्मानुभूति का सुख है। हिंसा एक ऐसा मानसिक रोग है जिससे न केवल शारीरिक स्वास्थ्य ही बिगडता है वरन् अधिभौतिक और आध्यात्मिक उन्नति का द्वार भी अविरुद्ध हो जाता है। आदमी अधःपतन की ओर अग्रसर हो जाता है और अहिंसा ऐसा स्वास्थ्य जिससे आदमी अधिभौतिक और आध्यात्मिक उन्नति और उपलब्धि के साथ सहज ही आत्मानंद और परमानंद का अधिकारी बन जाता है।

हिंसा से निपटने के लिए जनता में अहिंसा का प्रशिक्षण दिया जाए। अहिंसक प्रतिरोध के साधनों का प्रयोग देश, काल एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किया जाये। जैसे यदि हमारे अस्तित्व पर ही किसी के द्वारा आक्रमण हो रहा हो, हमारे अस्तित्व को ही मिटाये जाने का प्रयत्न किया जा रहा हो

वहाँ पर अहिंसक प्रतिरोध के स्थान पर जैनाचार में विरोधी हिंसा के प्रयोग को भी स्वीकार किया गया है लेकिन वह केवल अपने अस्तित्व को बचाने के लिए ही स्वीकृत है। अहिंसक प्रतिरोध का आधार विनम्रता, जनजागृति, आग्रह मुक्तता (तटस्थता) होना चाहिए। किसी भी विचार के प्रति पूर्वाग्रह एवं अहं भाव नहीं चल सकता। प्रतिरोध के प्रति समर्पण की भावना हो।

केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति हिंसा को जन्म देती है? लेकिन गांधीवादी अहिंसक विचारधारा को अपनाकर विकेन्द्रीकरण की स्थापना करके इस समस्या का निवारण किया जा सकता है। विकेन्द्रीकरण से तात्पर्य यह है कि बडे उद्योगों के स्थान पर कुटीर व लघु उद्योग धन्धों की स्थापना की जाये जिससे उत्पादन से उत्पादित वस्तुओं का स्वामी स्वयं श्रमिक होता है जिससे समाज में न कोई शोषक होगा न शोषित होगा न पूंजीवादी व्यवस्था होगी न जमींदारी होगी। जिसमें उत्पादन कर लाभ केवल सामाजिक आवश्यकता के आधार पर होगा। गांधी स्वयं मानते थे कि यन्त्रों का प्रयोग मानवश्रम को बेकार करने के लिए नहीं बल्कि कुशल बनाने के लिए किया जाना चाहिए।

वैश्वीकरण के माध्यम से विश्व स्तर पर मानव का पारस्परिक जुडाव हुआ है। गांधीवादी अहिंसावादी सिद्धान्त को अपनाकर वैश्वीकरण के माध्यम से विश्व स्तर पर भाईचारे की भावना पैदा की जा सकती है। वैश्वीकरण बेरोजगारी की समस्या के निवारण के लिए तथा कल्याणकारी कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए महत्वपूर्ण है। वैश्वीकरण के माध्यम से जब पूरा विश्व एक गांव की भांति काम करेगा तो आतंकवाद, हिंसा जैसी समस्याएं नहीं पनपेगी। विश्व के सभी लोग पारस्परिक समानता रखते हुए कार्य करेंगे। इसमें पिछडे हुए देशों को भी उन्नत देशों के साथ रहने से उन्नति के अधिक अवसर मिलेंगे।

वर्तमान विश्व में होने वाले विनाशकारी युद्धों के पीछे राष्ट्रों में शस्त्रीकरण की होड एक प्रमुख कारण रही है। लेकिन इस शस्त्रीकरण की होड को दूर करने के लिए गांधीवादी अहिंसा के द्वारा हल किया जा सकता है। निशस्त्रीकरण को अपनाकर ही इस समस्या का हल किया जा सकता है। निशस्त्रीकरण का शाब्दिक अर्थ है शारीरिक हिंसा के प्रयोग के समस्त भौतिक तथा मानवीय साधनों का उन्मूलन। यह एक कार्यक्रम है जिसका उद्देश्य हथियारों के अस्तित्व और उनकी प्रकृति से उत्पन्न कुछ विशिष्ट खतरों को कम करना। अहिंसात्मक आन्दोलन निशस्त्रीकरण के लिए लाभकारी सिद्ध होगा।

प्रकृति का यह स्वाभाविक नियम है कि मनुष्य संघर्ष के पश्चात् शांति चाहता है। आज विश्व जिस भीषण संकट व भय से ग्रहस्थ है उसे समाप्त करने हेतु वैश्विक स्तर पर अहिंसा को स्वीकार कर लेना हमारे लिए आवश्यक होगा। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् शांति एवं सुरक्षा के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ का जन्म मानव की शांति की आकांक्षा ही है। विश्व बन्धुत्व तथा "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना जागृत करने हेतु अहिंसात्मक आन्दोलन आवश्यक है। जब तक पृथ्वी पर मानव जाति विद्यमान है तब तक अहिंसा का महत्त्व समाप्त नहीं होगा।

लैंगिक समानता महिला सशक्तीकरण का आधार है। स्त्री-पुरुष में मूलभूत एकता के सिद्धान्त को माना जाये तथा स्त्रियों को पुरुषों के समान प्रस्थिति के रूप में स्वीकार किया जाये। यह सच है कि विभिन्न महिला संगठनों, आन्दोलनों, नारीवादी विचारकों, राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय संगठनों व समाज

सुधारकों के अथक प्रयासोपरान्त भी लैंगिक असमानता समाज में विद्यमान है। सनातन काल से ही उपेक्षित स्त्री को पुरुष के समान प्रस्थिति के रूप में स्वीकारने हेतु प्रत्येक काल में विभिन्न विभूतियों द्वारा प्रयास किये जाते रहे हैं। इस संदर्भ में "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" प्रासंगिक है। परम् स्त्री-पुरुष दोनों को प्रकृति के एक तत्व के रूप में स्वीकारने, जीवन रूपी एक ही गाडी के दो पहियों के रूप में स्वीकारने, भावनात्मक रूप से समानता देने, समाज में पुरुष प्रधान व पितृसत्तात्मक व्यवस्था के स्थान पर मानव प्रधान समाज व मानव सत्तात्मक व्यवस्था प्रकाश में लाने से ही लैंगिक विषमता को समाप्त किया जा सकेगा। नवीन पीढ़ी में इस प्रकार के संस्कार दिये जाना आवश्यक होगा जो स्त्री को पुरुष का पूरक न मानकर प्रतिरूप स्वीकार करे। हमारी शिक्षा पद्धति को लैंगिक विभेदता से मुक्त अधिकार सौंपने वाली बनाना होगा। ऐसी शिक्षा ही समाज में स्त्रियों के प्रति फैली बुराईयों जैसे, बालविवाह, विधवाओं की स्थिति, पर्दाप्रथा, स्त्री पुरुष के प्रति दोहरे दृष्टिकोण व सामान्य गृहणी जैसी बुराईयों को दूर करने में सक्षम होगी।

अतः वर्तमान वैश्वीकरण के दौर में भारत एवं विश्व जिन समस्याओं से घिरा है, हुआ उनके निवारण में गाधीवादी अहिंसा का महत्त्वपूर्ण स्थान है, परन्तु समाज में अहिंसा की व्यावहारिक क्रियान्विति के समक्ष अनेक चुनौतियाँ है जिनका समाधान आवश्यक है क्योंकि अहिंसा ही विश्वशांति, समन्वय एवं सौहार्द का एक सच्चा उपाय है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

- जैन प्रतिभा, " गाँधी चिन्तन," राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1998
- जोशी, पुष्पा (सं.), "गाँधी ऑन विमन-कलेक्शन ऑफ महात्मा गाँधीज स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स", अहमदाबाद, नवजीवन, 1988
- कौशिक आशा, "पोलिटिक्स सिम्बल्स एण्ड पोलिटिकल थ्योरी : रिथिकिंग गांधी" रावत पब्लिकेशन्स जयपुर, 2000
- कौशिक, आशा, "ग्लोबलाइजेशन, डेमोक्रेसी एण्ड कल्चर-सिचुएटिंग गाँधीयन आल्टरनेटिव्ज", पोईन्टर पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2002
- कौशिक, आशा, (सं.), "गाँधी नयी सदी के लिए: प्रत्यय एवं परिवर्तन", रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, 2000
- पारीक अविनाश, "वर्तमान प्रजातन्त्र में गांधीजी के अहिंसात्मक विचारें की प्रासंगिकता" (सम्पादित-रावत राजेश, चतुर्वेदी सतीश, शर्मा अशोक-गांधी का अहिंसा दर्शन), आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2013
- आचार्य, मन्जू, "समसामयिक अहिंसात्मक सुरक्षा आन्दोलन उपयोगिता एवं सीमाएं : अंतरराष्ट्रीय संदर्भ में" (सम्पादित-रावत राजेश, चतुर्वेदी सतीश, शर्मा अशोक-गांधी का अहिंसा दर्शन), आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2013

- शर्मा, कुमोदिनी, "अहिंसा और समाज : समाज शास्त्रीय परिप्रेक्ष्य" (सम्पादित-रावत राजेश, चतुर्वेदी सतीश, शर्मा अशोक-गांधी का अहिंसा दर्शन), आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2013
- शर्मा, बीता, "अहिंसा व महात्मा गांधी" (सम्पादित-रावत राजेश, चतुर्वेदी सतीश, शर्मा अशोक-गांधी का अहिंसा दर्शन), आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2013
- मीणा, रूक्मणी, "लैंगिक समानता एवं महिला सशक्तिकरण में गांधी के अहिंसावादी सिद्धान्त की प्रासंगिकता" (सम्पादित-रावत राजेश, चतुर्वेदी सतीश, शर्मा अशोक-गांधी का अहिंसा दर्शन), आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2013
- गांधी, मो.क., "हिन्द स्वराज्य" सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2002
- अणुव्रत : गति, प्रगति, आचार्य तुलसी, आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन, 1977
- साध्वी शुभ्रयशा, "यत्र अप्रमादः तत्र अहिंसा" अहिंसा तत्व विशेष, नवम्बर, 2010, जैन भारती पत्रिका, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कोलकत्ता
- पचहरा, रीता "गांधीजी का विकेन्द्रित अहिंसक आदर्श समाज एवं प्रौद्योगिकरणजन्य परिवर्तित वर्तमान समाज" (सम्पादित-रावत राजेश, चतुर्वेदी सतीश, शर्मा अशोक-गांधी का अहिंसा दर्शन), आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2013.
- रत्नू कृष्ण कुमार, कमला रत्नू, "समग्र गांधी दर्शन, गांधी चिन्तन और वर्तमान प्रसंग" आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2009
- सिंह, रामजी, "गांधी और भावी विश्व व्यवस्था" कॉमनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2009
- गांधी महात्मा, "मेरे सपनों का भारत" नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, 2008
- गांधी, महात्मा, "द स्टोरी ऑफ माई एक्सपेरिमेन्ट विद ट्रूथ", नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, अहमदाबाद, द्वितीय संस्करण, 1940
- गांधी, एम.के., "सम्पूर्ण गांधी वांगमय", खण्ड-13, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 1985

***

वैश्वीकरण के दौर में गांधीवादी चिंतन

डॉ. शिव बहादुर सिंह[39]

वस्तु, सेवा तथा वित्त के मुक्त प्रवाह की प्रक्रिया ही वैश्वीकरण है और वैश्वीकृत विश्व ही इस प्रक्रिया का लक्ष्य है, जिसे पाया जाना है। वैश्वीकरण मूलतः एक आर्थिक संकल्पना है जिसका तात्पर्य घरेलू अर्थव्यवस्था का विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण है। परन्तु इसके सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक आयाम भी हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप शेष विश्व में हो रहे घटनाक्रम का घरेलू अर्थव्यवस्था पर असर पड़ता है। विदेशी वस्तुओं और पूंजी के लिए घरेलू बाजार खोलना होता है। विदेशी पूंजी और व्यापार से सभी प्रतिबन्ध हटा दिए जाते हैं। इससे घरेलू उत्पादों के लिए विदेशी बाजारों में पहुँच मिलती हैं। गुणवत्ता मुक्त उत्पादों का उत्पादन होता है, जिससे अंतराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में टिकने में मदद मिलती है। सरल अर्थों में भूमण्डलीकरण का अर्थ वस्तुओं, सेवाओं और पूंजी का विभिन्न देशों के बीच मुक्त व निर्बाध आवागमन है जिससे पूरा विश्व एक वैश्विक गाँव के रूप में तब्दील हो जाता है।

ओहमें के अनुसार, "भूमण्डलीकरण एक सीमा विहीन विश्व की कल्पना है, जिसमें भौगोलिक बाधाएं अप्रासंगिक हो जाती हैं तथा लोगों के मध्य देश काल की भिन्नता समाप्त हो जाती है।"

बॉरबॅरा वॉल्ड ने "भूमण्डलीकरण को एक विश्व के रूप में परिभाषित किया है"

वहीं मैक्लुहान ने इसे **"ग्लोबल विलेज"** की संज्ञा दी है।

यदि हम गांधीवादी चिंतन का सूक्ष्म विश्लेषण करें तो वैश्वीकरण की प्रक्रिया के नकारात्मक प्रभाव को समाप्त करने की एक नई राह दिखाई पड़ती है तो हमारे सामने यह प्रश्न उठता है कि वैश्वीकरण के इस दौर में क्या गांधीवादी चिंतन प्रासंगिक है?

वैश्वीकृत, समकालीन आधुनिक भौतिकतावादी समाज में जहाँ असंतोष, अवसाद, असमानता व असंवेदनशीलता जैसी समस्याएं हावी हैं, वहाँ विकास से जुड़ी समस्याओं के संदर्भ में गांधीवादी चिंतन ना सिर्फ प्रासंगिक है, बल्कि इसमें विशेष अभिरूचि भी ली जा रही है। वैसे तो गांधी जी ने विकास का कोई विशेष सिद्धान्त नहीं प्रस्तुत किया परन्तु विभिन्न अवसरों पर दिए गए व्याख्यान व देश की समस्याओं पर विचार राजनीतिक दर्शन में विकास के प्रतिरूप को देखा जा सकता है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया को कुछ विद्वान सिर्फ पश्चिमीकरण मानते हुए इसकी आलोचना करते हैं। महात्मा गांधी ने भी किसी भी देश की उन्नति के लिए उस देश की आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था को सिर्फ पश्चिमी सभ्यता में डालने के पक्षधर नहीं थे, उनका दृढ़ विश्वास था कि पश्चिमी सभ्यता मनुष्य को उपभोक्तावाद का रास्ता दिखा कर नैतिक पतन की ओर ले जाती है, हाला कि नैतिक उत्थान का

---

[39] एसोसिएट प्रोफेसर, डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज, वाराणसी

रास्ता आत्म संयम और त्याग भावना की मांग करता है। गांधी जी ने पश्चिमी सभ्यता और आधुनिक सभ्यता को समवर्ती मानते हुए उसकी विस्तृत समीक्षा की।

1927 में यंग इण्डिया में उन्होंने लिखा कि "मैं यह नहीं मानता की इच्छाओं को बढ़ाने, उनकी पूर्ति के साधन जुटाने से संसार अपने लक्ष्य की ओर एक कदम भी बढ़ पाएगा। आज की दुनिया में दूरी और समय के अंतराल को कम करने, भौतिक इच्छाओं को बढ़ाने और उनकी तृप्ति के लिए धरती का कोना कोना छान मारने की अंधी दौड़ चल रही है, वह मुझे बिल्कुल पसंद नहीं। यदि आधुनिक सभ्यता के यही सब लक्षण हैं-और मुझे इसके यही लक्षण समझ आते हैं तो मैं इसे शैतानी सभ्यता कहता हूँ।"

गांधी जी ने 'हिन्द स्वराज' (1938) के अन्तर्गत लिखा है कि आधुनिक सभ्यता दिखावटी तौर पर समानता के सिद्धान्त को सम्मान देती हैं परन्तु यथार्थ के धरातल पर यह प्रजातिवाद को बढ़ावा देती है। इसमें अश्वेत जातियों को मानवीय गरिमा से वंचित रखा जाता है और उनका भरपूर शोषण किया जाता है। कहीं उन्हें दास बनाकर तो कहीं बंधुआ मजदूर बनाकर रखा जाता है। गांधी जी के अनुसार आधुनिक सभ्यता के अंतर्गत चेतन की तुलना में जड़ को, प्राकृतिक जीवन की तुलना में यांत्रिक जीवन को और नैतिकता की तुलना में राजनीति और अर्थशास्त्र को ऊँचा स्थान दिया जाता है।

गांधी जी की उपर्युक्त बातें वर्तमान वैश्वीकृत दुनिया पर भी पूर्ण रूप से लागू होती हैं जोकि धीरे-धीरे पश्चिमी विकास के प्रतिमान पर आधारित होती जा रही है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य विकास की एक ऐसी रूपरेखा का निर्माण करना है जिससे दुनिया में व्याप्त असमानता को दूर किया जा सके और मनुष्य की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए संरचनाएं विकसित की जा सकें। ऊपरी स्तर पर देखकर लगता है कि मनुष्य इस प्रक्रिया का साध्य है और तमाम चीजें उसके व्यक्तित्व और जीवन के निर्माण के साधन परन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करें तो मनुष्य स्वयं इस भौतिकवादी प्रक्रिया का साधन बनता जा रहा है। विकास की यह प्रक्रिया जब समाज में एक प्रकार की विकृति उत्पन्न कर रहा है तब गांधीवादी चिन्तन और भी प्रासंगिक हो जाता है।

गांधी जी का मुख्य सरोकार मनुष्य के नैतिक जीवन से था और इसके लिए उन्होंने साध्य और साधन दोनों की पवित्रता पर बल दिया। महात्मा गांधी विकास की किसी भी ऐसी अवधारणा के विरूद्ध थे जिसका लक्ष्य सिर्फ मनुष्य की भौतिक इच्छाओं को बढ़ाना और उनकी पूर्ति के उपाय ढूँढना हो। उनका मानना था कि मनुष्य के चरित्र को इतना उन्नत करना चाहिए की वह भौतिक इच्छाओं का दमन करके अपने मन को वश में कर ले। उनके अनुसार सिर्फ भौतिक जीवन में परिवर्तन करना मनुष्य को उन्नत नहीं कर सकता क्योंकि यह सिर्फ बाह्य परिवर्तन होगा। मनुष्य का सच्चा जीवन स्तर उसकी अंतरात्मा से निर्धारित होता है इसके लिए मनुष्य को अपने कर्तव्यों का ज्ञान प्राप्त करने और उनका पालन करने की प्रेरणा देना चाहिए ताकि वह सर्वोच्च सत्य को जान सके। सिर्फ भौतिक इच्छाओं की पूर्ति की मानसिकता मनुष्य को अधोगतिकी तरफ ले जाएगी।

महात्मा गांधी का मानना था कि मनुष्य को भौतिक वस्तुओं का उतना ही उपयोग करना चाहिए जितना उसके शरीर को स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक हो इससे अधिक की इच्छा उसे भ्रष्ट करती हैं,

क्योंकि भौतिक इच्छाएं कभी शांत नहीं हो सकती, उनकी तृप्ति करने का उपाय उन्हें और भी उत्तेजित करता है। इससे मनुष्य का कार्य उसकी चेतना पर आधारित ना होकर भौतिकवादी चीजों से निर्धारित होता है।

गांधी जी हमेशा इच्छाओं के संयम पर बल देते थे उनका मानना था कि इच्छाओं के संयम से दो उद्देश्यों की सिद्धि होती है। प्रथम, इससे सामाजिक न्याय को बल मिलता है था द्वितीय इससे मनुष्य का अपना नैतिक उत्थान होता है। क्योंकि पृथ्वी पर इतना ही संसाधन है जिससे मनुष्य की अनिवार्य आवश्यकए तो पूरी की जा सकती है। परन्तु उनके लोभ को पूरा नहीं कर सकते। वैश्विक समाज जो कि भौतिकवाद पर आधारित है मनुष्य की लोभ की प्रवृत्ति को निरन्तर बढ़ाने का काम कर रहा है। जिससे समाज में असमानता बढ़ रही है। कुछ लोगों के पास आवश्यकता से अधिक संसाधन इकट्ठा हो रहे हैं तो कुछ लोग अपनी न्यूनतम आवश्यकता को भी नहीं पूरी कर पा रहे हैं। जो कि सामाजिक न्याय की अवधारणा के एकदम विपरीत है। वर्तमान समय में मनुष्य की अनियंत्रित इच्छाएं उसकी अंतरात्मा को भी भ्रष्ट करने का कार्य कर रही हैं। वह सिर्फ स्वयं के बारे में सोचता है समाज के प्रति उत्तरदायित्व के प्रति पूरी तरह से अनभिज्ञ होता जारहा है। जिस कारण से उसका आत्मिक विकास भी बाधित हो रहा है। गांधी जी के विकास का मार्ग मनुष्य के स्वभाव और चरित्र को नए साँचे में ढालने पर बल देता है और यदि मनुष्य का चरित्र उन्नत होगा तो सम्पूर्ण समाज एक नए रूप में ढल जाएगा।

महात्मा गांधी के ना सिर्फ विकासवादी दृष्टिकोण बल्कि सम्पूर्ण चिन्तन को हम वर्तमान वैश्विकृत समाज में प्रासंगिकता के मानदण्ड पर परख सकते हैं।

सत्य, अहिंसा, आदर्श, प्रेम, भाईचारा एवं मानव मात्र के कल्याण के विचारों से प्रेरित महात्मा गांधी का चिन्तन धीरे-धीरे सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त होता जा रहा है। महात्मा गांधी के चिन्तन में जीवन मूल्यों के प्रति गहराई एवं उनके आंतरिक एवं सार्वभौमिक महत्व को देखने पर उनके चिन्तन को देश व काल की सीमाओं में सीमित करना असम्भव प्रतीत होता है। चूँकि उनका सम्पूर्ण चिन्तन मनुष्य के पुनरूत्थान से सम्बन्धित है इसलिए यह स्वयं में सार्वभौमिकता को समेटे हुए है।

महात्मा गांधी स्वयं द्वारा प्रतिपादित अहिंसा के सिद्धान्त के माध्यम से एक रक्तहीन क्रांति लाने के पक्षधर थे। इससे ना सिर्फ भारत बल्कि सम्पूर्ण विश्व के समाज में शांति का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। उनका मानना था कि अहिंसा एक शक्ति है और इसमें निहित विचारों के द्वारा सामुदायिक हित में परिवर्तन लाकर समुदाय को प्रेम और भाईचारे पर आधारित किया जा सकता है। अहिंसा और सत्य केवल सामाजिक और राजनीतिक ही नहीं बल्कि आर्थिक बदलाव को भी प्रभावित करते है।

अहिंसा के द्वारा ही एक मनुष्य को सम्पूर्ण विनाश से बचाया जा सकता है क्योंकि आज के समाज में हिंसा मनुष्य के दिन प्रतिदिन के जीवन का एक अनिवार्य अंग बनती जा रही है। वर्तमान समय में पूरी दुनिया हथियारों की होड़ से ग्रसित है जिसे अहिंसा के माध्यम से ही बचाया जा सकता है। परमाणु हथियारों की अनियंत्रित होड़ की वजह से पूरा शीत युद्ध भय के साए में ही बीता। सोवियत संघ के विघटन के पश्चात शीत युद्ध तो समाप्त हो गया लेकिन हथियारों की होड़ निरन्तर बढ़ती गई।

हथियार निर्माण व दूसरे देशों से हथियारों के आयात व उनके निर्माण की नवीन तकनीकों का तेजी से विस्तार हो रहा है। वर्तमान समय में ना सिर्फ व्यक्ति केन्द्रित हिंसा बल्कि राज्य द्वारा प्रेरित हिंसा को भी कम करने की जरूरत है। राज्यों द्वारा प्रेरित व समर्थित आतंकवाद और अधिकारवाद, तानाशाही तथा भ्रष्ट प्रशासनिक तंत्र भी हिंसा का ही एक रूप है। महात्मा गांधी के अनुसार अहिंसा एक आंतरिक क्रान्ति है। अहिंसा के प्रयोग द्वारा हम सभी प्रकार की बुराइयों से लड़ सकते हैं जो कि हमारे समाज में फैलती जा रही हैं। जैसे-कालाबाजारी, भाई-भतीजावाद, भ्रष्टाचार, दुष्कर्म इत्यादि। एक तरफ अंतरराष्टीय संस्थाओं के माध्यम से शान्ति के प्रयास किए जा रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ हथियारों को इकट्ठा करने की होड़ निरंतर बढ़ती जा रही है। वर्तमान हथियार व हिंसा पर आधारित सम्पूर्ण विश्व के मूल्यांकन के आधार पर हम कह सकते हैं कि गांधीवादी सत्य और अहिंसा के माध्यम ही दुनिया को शांति का मार्ग दिखा सकते हैं।

महात्मा गांधी का मानना था कि समाज तथा राजनीति का पुनरूत्थान सत्य व प्रेम पर आधारित आदर्शों का पालन करके ही किया जा सकता है। वे ऐसे राजनीतिक समाज के हिमायती थे जो सभी के कल्याण पर आधारित हो। उनका मानना था कि समाज में हिंसा के स्थान पर अहिंसा, शोषण के स्थान पर सेवा का भाव तथा सत्ता के केन्द्रीकरण के स्थान पर विकेन्द्रीकरण होना चाहिए। वह एक ऐसे सर्वोदयी समाज की कल्पना करते थे जिसमें बिना किसी भेदभाव के सभी के लिए समान सुविधाओं की व्यवस्था हो, शोषण का नामोनिशान न हो तथा सभी व्यक्तियों व समुदाय को विकास के समान अवसर प्राप्त हो। महात्मा गांधी वर्गहीन राज्य की बात करते थे अर्थात व्यक्ति के व्यक्तित्व पर राज्य का अरोपण न हो।

यदि वर्तमान समय में देखें तो राजनीति एक मलिन खेल हो गया है। लोग राजनीति को अपवित्रता के दृष्टिकोण से देखते हैं। महात्मा गांधी राजनीति के अध्यात्मिकीकरण की बात करते थे, मतलब राजनीति को धर्म से प्रेरित होना चाहिए लेकिन इसका मतलब यह नहीं था कि सांप्रदायिकता को बढ़ावा दिया जाए। राजनीति में धर्म के सहयोग से तात्पर्य केवल इतना है कि राजनीति को न्याय और सच्चाई पर आधारित होना चाहिए वे राजनीति में भी साधन व साध्य की पवित्रता पर बल देते थे जोकि वर्तमान समय में नहीं दिखाई पड़ती है। वर्तमान वैश्वीकृत समाज में राजनीतिक हित साधने व राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने के लिए किसी भी प्रकार के साधन को अपनाया जा रहा हैं।

इसी वजह से राजनीतिक नेताओं का चरित्र दोहरी भूमिका में होता जा रहा है और राजनीतिक पाखण्ड तथा भ्रष्टाचार शीर्ष पर है।

वर्तमान में राजनीति की इस निराशापूर्ण स्थिति से निपटने के लिए गांधीवादी चिन्तन को समझने तथा इसे व्यवहार में लाने की आवश्यकता है। राजनीति में नैतिक सिद्धान्तों के सम्मिलन से ही राजनीतिक और सामाजिक उत्थान के लिए यह योजना बनाई जा सकती है। जिसके माध्यम से साफ-सुथरी राजनीति की कल्पना को साकार किया जा सकता है।

शिक्षा के में क्षेत्र गांधी जी द्वारा निर्धारित सैद्धान्तिक ढांचे से बहुत कुछ उधार लिया जा सकता है या सीखा जा सकता है। जिसके द्वारा आज वर्तमान समय में शिक्षा जगत में व्याप्त कमियों को दूर

किया जा सकता है। गांधी जी का मानना था कि स्वस्थ व स्वतंत्र समाज के निर्माण के लिए शिक्षा के सिद्धान्तों को आज के समाज की आवश्यकता के अनुसार बनाना होगा। उनका मानना था कि वर्तमान शिक्षा की परम्परागत प्रणाली के साथ-साथ तकनीकी शिक्षा सबसे उत्तम उपाय रहेगा जिसके माध्यम से समाज और देश का विकास किया जा सकता है। जैसा कि हम जानते हैं कि वैश्वीकरण के इस दौर में तकनीकी शिक्षा को महत्व दिया जा रहा है लेकिन यह शिक्षा एकरूपता पर आधारित है और शिक्षा के पश्चिमी मॉडल को पूरी दुनिया पर थोपा जा रहा है। गांधी जी इसी बात के विरोधी थे उनका मानना था कि किसी भी देश या समाज की शिक्षा प्रणाली उस देश और समाज के पर्यावरण के अनुकूल होने चाहिए। इसके अतिरिक्त उनका मानना था कि तकनीकी शिक्षा भी ऐसी होनी चाहिए जिसमें आत्मिक विकास को महत्व दिया जाए। शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए, जिससे रचनात्मकता को बढ़ावा मिले। नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के साथ-साथ चरित्र निर्माण करना भी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए। गांधी जी कहते थे कि शिक्षा को सभी स्त्रियों और पुरुषों के मन में एक ऐसी शक्ति का संचार करना चाहि, जिससे वे परिश्रमी एवं आत्मविश्वासी बन सके। प्राथमिक और प्रौढ़ शिक्षा के प्रति गांधी जी के विचार बहुत ही महत्वपूर्ण वह विस्तृत उद्देश से परिपूर्ण है। उनका मानना था कि प्राथमिक स्तर पर बच्चों को सिर्फ किताबी ज्ञान नहीं देना चाहिए बल्कि यह व्यावहारिक ज्ञान पर आधारित होना चाहिए तथा बच्चे के मन में जिज्ञासा की प्रवृत्ति का विकास करना चाहिए। प्रौढ़ शिक्षा से उनका तात्पर्य था कि शिक्षा को सामूहिक रूप से केन्द्र बनते हुए नव युवकों के बीच कार्य, सेवा व आत्म अनुशासन को अपने जीवन में उतारने की होड़ तथा रूचि होनी चाहिए। जिससे वे समाज के नवनिर्माण में अपनी भूमिका निभा सकें। इस प्रकार से हम देखते हैं कि न सिर्फ प्राथमिक शिक्षा बल्कि प्रौढ़ शिक्षा के स्तर पर भी महात्मा गांधी के विचार वर्तमान आवश्यकताओं और समाज के अनुकूल तथा प्रासंगिक हैं।

वैश्वीकरण के इस दौर में समस्त विश्व के देश आर्थिक निर्भरता को पूर्ण करने के लिए एक दूसरे से मिल रहे हैं फिर भी आर्थिक समस्याएं निरंतर बढ़ती जा रही हैं। आर्थिक समस्याओं पर गांधी जी के विचार वर्तमान समय में काफी प्रासंगिक प्रतीत होते हैं। गांधी जी व्यावहारिक दृष्टि से अर्थशास्त्री नहीं थे, न ही उन्होंने कोई विशेष सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उनके आर्थिक विचारों का आधार नैतिक एवं आध्यात्मिक सिद्धान्त है। उनका कथन था कि "सच्ची अर्थव्यवस्था, सामाजिक न्याय व नैतिक मूल्य के प्रति सतर्क रहती है तथा आत्मा को नव निर्माण की ओर अग्रसर करती है। इस प्रकार उनके आर्थिक विचारों का आधार सत्य, अहिंसा, शोषण का प्रतिरोध तथा कठिन परिश्रम है। आर्थिक विचारों में उनका विश्वास था कि इसके द्वारा गरीबों, साधारण लोगों तथा दुनिया की एक बड़ी जनसंख्या को लाभ पहुंचाया जा सकता है। गांधीवादी विचारों को अपनाकर आर्थिक स्वाधीनता की प्राप्ति की जा सकती है।

महात्मा गांधी का मानना था कि देश के आर्थिक एवं सामाजिक ढांचे का आधार कृषि होना चाहिए। वे मशीनीकरण तथा औद्योगीकरण की सीमित आवश्यकता को महत्व देते थे। उनका मानना था कि मशीन की अपेक्षा व्यक्तिगत परिश्रम मनुष्य के विकास के लिए ज्यादा जरूरी है। मशीनीकरण को वह बेरोजगारी की समस्या से भी जोड़कर देखते हैं जो कि वर्तमान समय में एक बड़ी समस्या है। उनका मानना था कि बड़े उद्योग रोजगार का सृजन कम और बेरोजगारी का सृजन अधिक करते हैं। दूसरी ओर

कृषि सम्बन्धी उद्योगों में रोजगार के अवसर बहुत होते हैं। लघु मशीनों, श्रम एवं कृषि प्रधान उद्योगों पर आधारित विकेन्द्रीकृत आर्थिक पद्धति का विकास गांधी जी का प्रमुख आधार है।

गांधी जी निरंतर खादी, ग्रामीण उद्योगों के विकास की महवत्ता पर जोर देते थे। वे कुटीर उद्योग, ग्रामीण उद्योग तथा हस्तशिल्प उद्योग के विकास पर भी जोर दे देते थे।

गांधी जी तकनीकी विकास को महत्व देते थे लेकिन उनका मानना था कि तकनीकी विकास से देशों के बीच एक खाई बनती जा रही है और वह धीरे-धीरे गहरी होती जा रही है। उनका मत है कि व्यक्ति को अपनी इच्छाओं को कम करना चाहिए या सीमित रखना चाहिए। वर्तमान में जैसा कि हम जानते हैं कि तकनीकी विकास के कारण एक प्रकार का यांत्रिक साम्राज्यवाद स्थापित होता जा रहा है।

वैज्ञानिक क्रान्ति, औद्योगीकरण और वर्तमान में वैश्वीकरण के पश्चात पर्यावरण सम्बन्धित समस्याएं विकराल रूप धारण करती जा रही हैं। वर्तमान समय में पर्यावरण प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, ग्रीन हाउस प्रभाव जैसी समस्याएं पूरे विश्व के लिए चुनौती बनी हुई हैं। पर्यावरण संकट के इस दौर में गांधीवादी चिन्तन और भी ज्यादा प्रासंगिक हो जाता है।

गांधी जी ने पर्यावरण सम्बन्धित समस्याओं से बचने के लिए सम्बोधित करते हुए कहा, "आज के इस समय में हमारी प्रकृति सहित नक्षत्रों एवं ग्रहों के चारो ओर प्रदूषण की मार से सम्पूर्ण विश्व पतन की ओर अग्रसर होता जा रहा है।" आरम्भ से ही मनुष्य प्रकृति द्वारा प्रदत्त भूमि, संसाधनों रूपी निधि की अवहेलना करता है और वर्तमान में भी अवहेलना अनवरत रूप से जारी है। वर्तमान में यह अनुभव किया जाए तो यह मालूम पड़ता है कि पर्यावरण सम्बन्धी समस्याएं प्रकृति द्वारा दिया गया दण्ड ही है। गांधी जी हमेशा व्यक्ति के साथ सहयोग करने की वकालत करते थे। वे चाहते थे कि प्राकृतिक शोषण सहित सभी प्रकार के शोषण से रहित विश्व की स्थापना हो, जिसमें एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के लिए किसी प्रकार की उलझन एवं समस्याएं उत्पन्न न करें। उनका मानना था कि व्यक्ति को अपनी इच्छाओं को सीमित रखना चाहिए। प्राकृतिक पूंजी की कीमत पर निजी पूंजी का निर्माण नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि गांधीवादी चिन्तन वैश्वीकरण के दौर में जब वैश्वीकरण के माध्यम से एक प्रकार से नव उपनिवेशवाद थोपने की कोशिश की जा रही है ज्यादा प्रासंगिक हो जाता है। गांधीवादी चिन्तन ना सिर्फ आर्थिक क्षेत्र में बल्कि सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक क्षेत्र में भी पूरे विश्व को एक नई राह दिखाता है। गांधीवादी चिन्तन ही वह माध्यम है जिसके माध्यम मनुष्य अपने लोभ को सीमित करके लोक कल्याण के बारे में भी सोच सकता है, और एक सर्वोदयी समाज का उदय हो सकता है। जिसे हम वास्तव में विश्वग्राम की संज्ञा दे सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. J.N. Bhagwati (2007) : in Defence of Globalization.
2. Amatry Sen (1999) : Developement As Freedom.
3. कल्पना राजाराम (2013) : गांधी, नेहरू, टैगोर, स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा.लि., नई दिल्ली।

4. विपिन चन्द्र (2005) : आधुनिक भारत, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।
5. महीपाल (2005) : पंचायतीराज; चुनौतियाँ एवं संभावनाएं, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास।
6. रामचन्द्र गुहा : भारत गांधी के बाद
7. रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
8. महात्मा गांधी : सत्य के साथ मेरे प्रयोग
9. मोहनदास करमचन्द गांधी : हिन्द स्वराज, हिन्दी अकादमी दिल्ली।
10. ओ.पी. गाबा : राजनीतिक चिन्तन की रूपरेखा, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा।
11. डॉ. प्रभु दत्त शर्मा : अर्वाचीन राजनीतिक चिन्तन, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
12. मनोज सिन्हा (2012) : समकालीन भारत एक परिचय, ओरियंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली।

***

गांधी दर्शन की सार्वकालिक प्रासंगिकता

डॉ. अजीत कुमार सिंह[40]

महात्मा गांधी एक महान युग प्रवर्तक महापुरुष थे। उनके जीवन का एक-एक पल लोकहित और राष्ट्र के निर्माण के लिए सम्पूर्ण रूप से समर्पित था। गांधी जी का जीवन दर्शन मानवतावादी था। वे प्रत्येक मनुष्य को चाहे वह किसी जाति, धर्म का हो, समभाव से देखते थे। गीता का दर्शन उनका जीवन-दर्शन था। प्राणी मात्र से उन्हें प्रेम था। अहिंसा के वे पुजारी थे। इसलिए किसी से द्वेष करने या किसी को कम समझने का उनकी दृष्टि में कोई प्रश्न नहीं उठता था। उसी समदृष्टि और समभाव की आज अधिकाधिक आवश्यकता है। गांधी जी का दर्शन केवल सैद्धान्तिक ही नहीं था। वे हरिजन बस्तियों में जाकर रहते थे और वास्तव में निम्न वर्गों के लोगों के लिए भगवान के रूप में 'हरिजन' शब्द का प्रयोग करते थे।

अस्पृश्यता को महात्मा गांधी हिन्दू समाज का एक कलंक मानते थे। मध्ययुग में संतों, कवियों तथा समाज सुधारकों ने भी इसकी तीक्ष्ण शब्दों में भर्त्सना की थी। छुआ+छूत को हिन्दू समाज पर एक कलंक मानने के साथ ही राष्ट्रीय एकता के मार्ग में भी बाधा मानते थे। अतः उन्होंने अस्पृश्यता निवारण एवं दलित उत्थान को अपने सार्वजनिक जीवन का एक प्रमुख अंग बनाया। उन्होंने कहा कि अछूतों को गले लगाये बिना हम मनुष्य नहीं बन सकते। गांधी जी ने घोषणा की कि यदि अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का अभिन्न अंग है तो मैं हिन्दू धर्म को अपनाना कतई पसन्द नहीं करूँगा।

गांधी अनुदार भी थे और क्रान्तिकारी भी, राष्ट्रवादी भी थे। अन्तरराष्ट्रीय भी और आस्थावान भी, एक उत्कृष्ट व्यक्तिवादी भी थे और इसके साथ सच्चे समाजवादी भी। अतः समाज सुधार के संदर्भ में भी उनके विचार अत्यंत प्रगतिशील थे। पश्चिम के सर्वाधिक उत्कृष्ट समाज सुधारकों को भी इन्होनें मीलों पीछे छोड़ दिया था। इसके साथ ही वे अपने देश की विगत परम्पराओं से विच्छेद के लिए भी तैयार नहीं थे और जनसमुदाय को साथ लेकर चलने के पक्ष में थे। वे जनता की भाषा में बोलते थे ताकि वह उन्हें समझ सकें उनका अनुगमन कर सकें। यही कारण है कि गांधीवाद में युगों का कूड़ा करकट बह गया। [2]

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के महानायक महात्मा गांधी की प्रेरणा से स्वतंत्रता आन्दोलन धीरे-धीरे जनांदोलन बनता गया। वे अपने अहिंसात्मक आंदोलन के रूप में सत्याग्रह को स्त्रियों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त मानते थे क्योंकि में इस प्रकार के आंदोलन के लिए शारीरिक शक्ति ही नहीं अपितु नैतिक साहस और आध्यात्मिक निश्चयवाद की आवश्यकता होती है, जो स्त्रियों में है। गांधी जी ब्रिटिश राज्य को 'रावण-राज्य' कहते थे और स्त्रियों से सीता का अनुकरण करते हुए रावण का विरोध करने का आह्वान करते थे।[3]

---

[40] सहायक प्रोफेसर -राजनीति विज्ञान विभाग, के.एन.आई.पी.एस.एस., सुलतानपुर (उ. प्र.)

गांधीवाद एक गतिशील एवं विकासवादी दर्शन है। उसको किसी निश्चित सिद्धान्त की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता है। लुई फिशर के शब्दों में, कहे तो गांधी जी स्वच्छन्द एवं निर्बाध चिन्तनधारा वाले व्यक्ति हैं। यद्यपि गांधीवाद विशेष के प्रतिबद्ध नहीं है तथापि उसमें वे समस्त विशेषताएँ हैं जो एक वाद के लिए आवश्यक है। जीव मात्र में एक व्याप्त है, यह सत्य है। इसका व्यवहारिक रूप प्रेम या विश्व बन्धुत्व है। सिद्धान्त रूप में जो सत्य है व्यवहार रूप में वह अंहिसा है। सत्य निर्गुण रूप है और अंहिसा सगुण रूप है। दोनों एक ही परमतत्व के दो पक्ष हैं। अंहिसा का मार्ग प्रेम का मार्ग है।

सत्याग्रह भारतीय राजनीति को दी गयी गांधी जी की अमूल्य देन है। सत्याग्रह के बारे में उनका मानना था कि अपने विरोधियों को दुःखी बनाने के बदले स्वयं अपने पर दुःख डालकर सत्य की विजय के लिए प्रयत्न करना ही सत्याग्रह है। सत्याग्रह का अर्थ सत्य के लिए आग्रह करना। इस दर्शन का सिद्धान्त है सत्य मेव जयते। उन्होंने सत्याग्रह द्वारा अत्याचारी के हृदय परिवर्तन की बात कही। इसी के द्वारा उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद से लोहा लिया और भारत को स्वतन्त्रता दिलायी।

समाज सुधार में गांधी जी की अनेक देन है। इस क्षेत्र में भी उन्होंने अनेक उपलब्धियाँ प्राप्त की है। उन्होंने सामाजिक असमानता और जातिवाद के विरुद्ध आन्दोलन चलाया, हरिजनों के मन्दिर प्रवेश का समर्थन किया, अस्पृश्यता का विरोध किया और दलित वर्ग को भी समान अधिकार दिलाने का प्रयास किया। 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना कर उन्होंने हरिजनों में आत्म सम्मान की भावना जाग्रत की।

गांधी जी के आर्थिक विचारों की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है और बढ़ती हुई बेरोजगारी का एक मात्र समाधान उनके दर्शन में ही है। वे बड़े उद्योगों का विरोध कर छोटे उद्योगों का समर्थन करते थे। उनका मानना था कि विकेन्द्रीकृत समाज तथा आत्मनिर्भर गाँवों की स्थापना की जानी चाहिए। उनका अनिवार्य श्रम सिद्धान्त आज भी सबके लिए गृहणीय है। गांधी जीने अपरिग्रह सिद्धान्त को अपनाने पर बल दिया। उन्होंने पूँजीपतियों के लिए ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त देकर यह स्पष्ट किया कि धनी व्यक्ति को अपनी सम्पत्ति समाज की सम्पत्ति माननी चाहिए और उसे लोक कल्याण में जैसे- विद्यालय, चिकित्सालय, गरीबों के उद्धार आदि के लिए खर्च करना चाहिए।

भारतीय संविधान में अस्पृश्यता निवारण, धर्म जाति आधारित भेद-भाव की समाप्ति, ग्राम पंचायतों का गठन मद्य निषेध, गोध निषेध, घरेलू एवं कुटीर उद्योग के विकास आदि सिद्धान्तों का समावेश से गांधी जी का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है।[4]

गांधी जी का आदर्श ऐसे समाज की स्थापना करना था जो पारस्परिक सक्रिय प्रेम एवं सामंजस्य पर आधारित हो। उन्होंने वर्णाश्रम पर आधारित समाज व्यवस्था को स्वीकार किया। किन्तु वे वर्णों के बीच भेदभाव तथा ऊँच-नीच को मानने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने वर्णाश्रम का समर्थन पुरातनवादी दृष्टि से नहीं किया जो स्वभावतः परम्परागत सामाजिक व्यवस्था का पोषक हुआ करता है। उन्होंने इतिहास के सम्बन्ध में विकासवादी दृष्टिकोण अपनाया।

गोखले की भाँति गांधी जी भी राजनीति का अध्यात्मीकरण करना चाहते थे। गोखले ने इस बात पर बल दिया था कि राजनीति में नैतिक मूल्यों को समाविष्ट किया जाय। किन्तु अंहिसा के प्रति गांधी जी का अनुराग गोखले से कही अधिक गहरा और व्यापक था।[5] वर्तमान समय में भारतीय राजनीतिक में

नैतिकता एवं ईमानदारी का क्षरण हो चुका है। अतः गांधी जी राजनीति, जो नैतिकता एवं धर्म प्रेरित राजनीति की बात करते थे आज प्रासंगिक है। भ्रष्टाचार, बेइमानी, अपराध वर्तमान समय में बहुत बढ़ चुका है। भारतीय राजनीति का अपराधीकरण हो गया है। जिससे मुक्त होना राष्ट्र की उन्नति के लिए अति आवश्यक है और यह सब नैतिकता अंहिसा एवं आपसी भाईचारा से ही सम्भव है। यह गांधी दर्शन में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है।

गांधी जी सन्त तथा नैतिक क्रान्तिकारी थे। उनका विश्वास था कि हिंसा सामाजिक व्यवस्था की वास्तविक क्रान्ति में विघ्न डालती है। सत्याग्रह सामाजिक आदर्शों में क्रान्ति ला सकता है। उन्होंने आधुनिक सभ्यता के नैतिक दिवालियापन को उघाड़कर रख दिया और मानव जीवन में नैतिक तत्व तथा नैतिक कसौटी को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया। उनका हार्दिक विश्वास था कि हिंसा मानव जाति को सत्यानाश के लिए गर्त में पटक देगी। उनका विचार था कि हमारी समस्याओं का शान्तिपूर्ण समाधान सम्भव है, यही नहीं बल्कि वास्तविक समाधान का वही एक मात्र मार्ग है। युद्ध कोई विकल्प नहीं हो सकता है अगर युद्ध विकल्प होता तो द्वितीय विश्व युद्ध न होता। गांधी जी नैतिक यथार्थवादी थे और यदा-कदा उनमें दिव्य संदेश वाहक तथा गगन चारी रहस्यवादी का पुट भी देखने को मिलता है। उनके उस दुःखद बलिदान के उपरान्त जिसने सम्पूर्ण मानव जाति की भावनाओं और संवेगों को गम्भीर आघात पहुँचाया था, आज लोग पुनः उनके व्यक्तित्व में निहित महत्वपूर्ण विचारों एवं विश्व को आन्दोलित करने वाले परिणामों के गूढ़ार्थ को नये सिरे से समझने के लिए दिलचस्पी लेने लगे है।[6]

गांधीवाद कोरा राजनीतिक सिद्धान्त नहीं है, वह एक सन्देश भी है। वह एक जीवन दर्शन है। मानव जीवन में शक्ति ही मूल्यांकन की प्रधान कसौटी है, किन्तु गांधी जी कष्ट सहन के सिद्धान्त पर आधारित प्रेम को सर्वोपरि मानते हैं। गांधी जी का स्वप्न अहिंसात्मक समाज है। ऐसा समाज तभी स्थापित हो सकता है जब पहले नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण को अंगीकार कर लें। गांधी जी का दृष्टिकोण उन धर्मशास्त्रियों के मुकाबले में कही अधिक व्यापक है जो अपने-अपने सीमित पंथो की सर्वोच्चता सिद्ध करने में संलग्न रहते हैं। उन्होंने शान्ति, नम्रता, सज्जनता दान शीलता तथा सब धर्मों के प्रति श्रद्धा पर अधिक बल दिया। उनकी शिक्षाओं की इस व्यापकता के कारण ही गांधीवाद समाजवाद और लोकतन्त्र का नैतिक आधार बन जाता है। गांधी जी ने सत्य, अंहिसा, ब्रह्मचर्य और सामाजिक न्याय का पाठ पढ़ाकर एशिया की युगों पुरानी बुद्धिमता की सार्थकता सिद्ध कर दी है। यदि सभ्यता के सर्वनाश को रोकना है तो हमें उनकी शिक्षाओं की ओर ध्यान देना होगा।[7]

गांधी दर्शन और हमारा समय इन दिनों विश्व को अहिंसा का एक नया सृजन फलक प्रदान कर रहा है। इसी कैनवास के जरिए हम विश्व को शांति के एक नए झरोखे द्वारा देख सकते हैं एवं गांधी दर्शन की एक नई व्याख्या से रूबरू हो सकते हैं।

आज गांधीवादी दर्शन पूरे विश्व को एक नया दिशा-बोध दे रहा है। गांधी दर्शन की एक नई व्याख्या हमारे सामने है। आतंक, बिखराव और दहशत से जूझते हुए विश्व को इन दिनों गांधी दर्शन और उनका अहिंसा का प्रयोग-सूत्र ही एक मात्र चिराग है जो इस विश्व को एक नया रास्ता दिखा सकता है।

इस नई सदी में गांधी जी के दर्शन की नयी परिभाषा की आवश्यकता है। आज प्रश्न यह भी उठाया जा रहा है कि क्या गांधी जी के दर्शन की इस नई सदी के बदलते हुए परिदृश्य में इतनी ही प्रासंगिकता है, जितनी पहले थी।

आज इस ग्लोबल संसार के सामने जो विश्वस्तरीय चुनौतियाँ हैं, उन्हें देखते हुए गांधी दर्शन आज भी उतना ही स्वीकार्य है, जितना पहले था, शायद उससे भी कहीं ज्यादा। [8]

भारत के सुदूरवर्ती जिले चम्पारण में महात्मा गांधी ने सन् 1917 में अपना पहला सत्याग्रह आंदोलन शुरू किया, जिसके बारे में उन्हें कुछ ज्ञान नहीं था, जब गांधी चम्पारण में पधारे।

सन् 1917 के अन्त तक लेनिन को शीघ्र सफलता मिली और रूस में क्रांति का झंडा लहराने लगा। अंग्रेजों को देश छोड़ने के लिए मजबूर करने में गांधी जी को 30 साल का लम्बा समय लगा। कुछ लोगों ने गांधी जी, उनके विचार और तरीकों के महत्व को कम करके आँका, लेकिन यह कहा जा सकता है कि वे पूरी तरह गलत साबित हुए। घटनाओं ने गांधी जी और उनके बताए रास्ते को सही साबित किया। उनके आन्दोलन में बहुत कम जनहानि हुई। यह सबको मालूम है कि रूसी क्रान्ति बिखर गई है, लेकिन भारतीय क्रान्ति आज भी बदस्तूर देश को प्रगति की ओर ले जा रही है और दुनिया में युद्ध, दमन और सभी प्रकार के भेदभाव को मिटाने में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है।

दक्षिणी अफ्रीका और नामीबिया में रंगभेद की समाप्ति गांधी जी के सिद्धांतों और उनके तरीके की सफलता का प्रतीक है। गांधी जी दक्षिण अफ्रीका में अपनी युवावस्था के दौरान रंगभेद के खिलाफ और मानव सम्मान के लिए कैसे लड़े, यह सबको याद है। अमेरिका में मार्टिन लूथर किंग ने संघर्ष का गांधीवादी तरीका अपनाया और न्यूनतम जनहानि और हिंसा के साथ नस्ल भेद के ढाँचे को नेस्तनाबूद किया। लूथर किंग ने महात्मा गांधी के दिखाए रास्ते से जरा भी विचलित हुए बगैर अपनी जान न्यौछावर कर दी।

आज गांधी जी और उनके विचारों को बहुत तेजी से मान्यता दी जा रही है। उदाहरण के लिए कुछ साल पहले ही पूर्व सोवियत संघ के नेता गोर्बाच्योव और स्व॰ राजीव गांधी ने प्रसिद्ध "दिल्ली घोषणा" पर हस्ताक्षर किए। लोग गांधी जी की इस विचारधारा से प्रभावित थे। इस "घोषणा" में दुनिया में अहिंसात्मक वातावरण तैयार करने की बात पर जोर दिया गया और हिंसा के द्वारा विश्व की समस्याओं के समाधान करने की प्रवृत्ति को निरर्थक बताया गया। जो बात महात्मा गांधी ने आज से 60 साल पहले की थी, उसे लोग आज कह रहे हैं। गांधी जी ने कहा था-"सभी सुविकसित समाज अहिंसा के कानून पर आधारित हैं, इसी नियम के तहत कोई भी सुव्यवस्थित समाज समझदार बन सकता है और जीवन सार्थक कहा जा सकता है। जहाँ भी आपका मुकाबला अपने प्रतिद्वन्द्व से हो, उसे प्यार से जीतिए।"

हिंसा से तत्कालिक सफलता भले ही मिल जाए लेकिन यह दीर्घकालीन नहीं हो सकती। सन् 1930 के दिनों को याद कीजिए-जब ऐसा लगता था कि पूरे विश्व पर हिटलर का प्रभुत्व था। उसने पूरी दुनिया को आतंकित कर दिया था लेकिन गांधी को विश्वास था कि हिटलर की सफलता अस्थायी है, क्योंकि वह हिंसा के बलबूते पर सब कुछ कर रहा था और अन्याय व झूठ उसका हथियार था।[9]

"हरिजन" के 23 दिसम्बर, 1939 के अंक में उन्होंने लिखा था-"अन्य वादों की तरह नाजीवाद भी आज का खिलौना है और इसका भी वही हश्र होगा, जो अन्य वादों का हुआ।" इतिहास ने गांधी जी की इस बात को सच साबित कर दिया।

कोई भी व्यक्ति राष्ट्रीय या अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर लम्बे समय तक हिंसा के रास्ते पर नहीं चल सकता है। देर-सबेर इसके नकारात्मक परिणाम आने शुरू हो जाते हैं। हिंसात्मक सोच का दायरा सीमित होता है। समकालीन विश्व में कई क्रूर तानाशाहों को कुछ समय बाद ही नष्ट होते देखा गया है। हिटलर, मुसोलिनी, ईदी अमीन आदि इसके उदाहरण हैं। गांधी जी ने कहा था-"हिंसा की सीमा है और यह असफल हो सकती है, अहिंसा की कोई सीमा नहीं है और यह कभी असफल नहीं हो सकती है।"

विश्व की समस्याएँ केवल अहिंसा और सच्चाई के आधार पर ही हल की जा सकती हैं। हिंसा और आतंकवाद के जरिए किसी भी समस्या का स्थायी हल नहीं मिल सकता है। केवल अहिंसा के सिद्धान्त में इतनी ताकत है कि वह घृणा को खत्म कर दुनिया में भाईचारे व आपसी सद्भाव की भावना जागृत कर सकती है। एक बार अहिंसा को स्वीकार कर लेने के बाद समाज में दमन और शोषण के लिए कोई जगह नहीं होनी चाहिए और सभी मनुष्यों से भाइयों की तरह व्यवहार किया जाना चाहिए।

गांधी जी प्रजातंत्र में विश्वास रखते थे, लेकिन वे इस पर पश्चिमी परम्पराओं द्वारा लगाई गई सीमाओं को तोड़ने के हक में थे। उनका मानना था कि प्रजातंत्र को बहुतम के हितों का संरक्षक होने के बजाय गरीबों व शोषितों की सेवा के लिए होने चाहिए। गांधी जी रस्किन की "अनटु दि लास्ट" नामक पुस्तक से बहुत प्रभावित हुए थे। गांधी जी हमेशा "राज्यवाद" के खिलाफ थे। उनका कहना था कि "यदि हम प्रजातंत्र की सच्ची भावना विकसित करना चाहते हैं तो हमें असहिष्णुता की भावना को त्यागना होगा" और "यदि हम दूसरे पक्ष की बात सुनने को तैयार नहीं हैं तो ऐसे में प्रजातंत्र का विकास संभव नहीं हो सकता है। अपने विरोधियों की बात सुनने से मना करने या उनकी कही हुई बात का मजाक बनाने से हम तर्क के दरवाजे बन्द कर देते हैं।"

गांधी जी का एक अन्य विचार जो दुनिया भर में फैल रहा है, वह यह है कि आध्यात्मिक मूल्यों को नजरन्दाज कर केवल भौतिक उद्देश्यों को महत्व देने से दुनिया में मानवीय मूल्यों का ह्वास होता जाएगा। हालाँकि गांधी जी ने आध्यात्मिक मूल्यों को कभी धार्मिक दृष्टिकोण से नहीं लिया। आज दुनिया के विकसित व विकासशील देशों में इस बात की वैधता को स्वीकार किया जा रहा है। तक सोवियत संघ में सात दशकों भौतिक विकास से "नए व्यक्ति" का निर्माण नहीं हो सका, क्योंकि यहाँ मनुष्य के आध्यात्मिक विकास को नजरन्दाज कर दिया था।[10]

मिखाइल गोर्बाच्योब ने अपनी किताब "प्रिस्ट्रोइका" में इस बात को स्वीकार किया है कि ईमानदारी, चोरी न करता, मैत्री भावना, सच्चाई, दया और अन्य मानवीय गुणों के बगैर अपराधों का उन्मूलन नहीं किया जा सकता है।

अन्त में महात्मा गांधी के साधन की शुद्धता की बात को भी सभी जगह बहुत महत्व दिया जा रहा है। अनैतिक तरीके से कोई भी उद्देश्य, चाहे वह कितना ही प्रशंसनीय हो, हासिल नहीं हो सकता है।

स्टालिन गलत तरीकों से एक स्वस्थ और सम्पन्न समाज स्थापित नहीं कर पाया। इसी तरह अन्तरराष्ट्रीय समस्याओं को भी अनुचित तरीकों व ईमानदारी के बिना नहीं सुलझाया जा सकता है।[11]

हमारा देश इस समय आर्थिक व्यवस्था के तीव्र परिवर्तन के जिस दौर से गुजर रहा है, उसमें हमें अपने वैचारिक व सैद्धान्तिक खम्भे ढहते हुए दिखाई दे रहे हैं। कार्ल मार्क्स की इस मान्यता में काफी सच्चाई है कि आर्थिक सम्बन्ध मनुष्य जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित करते हैं। राजनीति मोटे तौर पर सत्ता का ही खेल है, किन्तु अपनी तथा देश की आवश्यकताओं के अनुरूप यह समय-समय पर अनेक सिद्धान्तों एवं विचार धाराओं का सहारा लेती रहती है। आवश्यक नहीं कि ये सिद्धान्त राजनीतिक ही हों। ये वाद या दर्शन आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा धार्मिक भी हो सकते हैं। उदाहरण के लिए मूलतः पूँजीवाद आर्थिक, मार्क्सवाद या समाजवाद आर्थिक-सामाजिक और राष्ट्रवाद सांस्कृतिक-भौगोलिक विचारधाराएँ हैं, लेकिन ये सभी दर्शन राजनीति में अत्यंत व्यापक स्तर पर इस्तेमाल किए गए हैं। इन विचारधाराओं या वादों को बनाने-अपनाने तथा छोड़ने-तोड़ने का सिलसिला चलता रहता है और आगे भी चलता रहेगा।

गांधीवाद कोई शास्त्रीय दर्शन नहीं-किन्तु हमारे देश में एक ऐसा दर्शन भी है जो पिछले 6-7 दशकों से ज्योति-स्तम्भ के रूप में हमारे राष्ट्रीय जीवन के बीच मौजूद है। यों गांधीवाद कोई शास्त्रीय दर्शन या स्कूल नहीं है, जिसे किसी विशेष विषय अथवा डिसिप्लिन से जोड़ा जा सके। विशुद्ध रूप से यह न तो राजनीतिक विचारधारा है और न ही आर्थिक, सामाजिक या सांस्कृतिक चिंतन। गांधीवाद वास्तव में मानव आचरण को दिशा देने वाला दर्शन है, जो महात्मा गांधी के लम्बे संघर्षशील जीवन से उपजे कुछ सिद्धान्तों, कार्यों, शैलियों, आचार पद्धतियों एवं विचारों को अपने में समेटे हुए हैं।

आर्थिक परिवर्तन के कारण आत्ममंथन की मौजूदा प्रक्रिया में स्वतंत्रता के बाद राष्ट्रीय स्तर पर अपनाए गए जिन सिद्धान्तों और मान्यताओं को चुनौती देना प्रारम्भ किया गया है, उनमें विकास का नेहरूवादी सिद्धान्त प्रमुख है। यह अत्यन्त विचित्र संयोग है कि आज के नीति निर्धारक नेहरूजी द्वारा खड़े किए गए समूचे ढाँचे को बिखेरते हुए, यह बराबर कह रहे हैं कि नेहरूवाद को छोड़ने का सवाल ही नहीं है। इसी प्रकार सर्वाधिक लोकप्रिय एवं सशक्त प्रधानमंत्री के रूप में जवाहर लाल नेहरू ने गांधीवाद की रट लगाते हुए भी विकास का वह पश्चिमी सिद्धान्त अपनाया व क्रियान्वित किया जो गांधीवाद चिंतन के सर्वथा विपरीत था।

गांधीवादी दर्शन का सबसे बड़ा पहलू है अहिंसा-गांधी जी ने अपने तथा देश के उस शत्रु के खिलाफ भी हिंसा के प्रयोग की वर्जना की, जो स्वयं उन पर तथा देशवासियों पर हिंसक अत्याचार कर रहा था। गांधी जी ने कहा था "अहिंसा मेरा धर्म और सत्य मेरा ईश्वर है।" उन्होंने अनेक बार हिंसा की रोकथाम के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी। हिंसा का विरोध उनके चिंतन में इतना गहरा पैठ चुका था कि उन्होंने चौरी-चौरा में सांप्रदायिक हिंसा होने पर सविनय अवज्ञा आन्दोलन तक स्थगित कर दिया। उनका कथन था-"हिंसा कायरता की पराकाष्ठा है।"

स्वतंत्र भारत में अहिंसा के इस गांधी दर्शन की जितनी बुरी तरह धज्जियाँ उड़ चुकी हैं, उसे याद करके मन सिहर उठता है। अहिंसा में गांधीवादी सिद्धान्त को पहला धक्का तो उनकी आँखों के सामने

ही लग गया था, जब विभाजन के दौरान क्रूर हिंसा और प्रतिहिंसा का नंगा नाच कई दिनों तक चलता रहा। अहिंसा का पुजारी स्वयं हिंसा का शिकार होकर इस दुनिया से विदा हुआ।

आज गांधीवाद छठे दशक में भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के लिए हुए आन्दोलन तथा सातवें दशक में हिन्दी विरोधी एवं समर्थन में चलाए गए आन्दोलन में सत्याग्रह व अहिंसा का स्थान हिंसा एवं बल प्रयोग ने ले लिया। पूर्वोत्तर क्षेत्र के आन्दोलन में तो राज्य अर्थात् सरकारी हिंसा की भी भूमिका बढ़ गई। सेना का प्रयोग सीमाओं की रक्षा के साथ-साथ उपद्रवियों को नियंत्रित करने में होने लगा।

इस प्रकार गांधी जी के प्रत्येक आचार और विचार आदर्श-दर्शन की अनुभूति कराने वाले हैं। उन सभी दर्शनों की प्रासंगिकता तब भी थी और आज के भौतिकवादी युग में तो उनकी प्रासंगिकता और बढ़ गई है। यदि गांधी दर्शन के भाव आज भी सबके मन में आ जाये तो किसी के सामने कोई समस्या नहीं होगी। साथ ही सम्पूर्ण धरातल स्वर्ग हो जायेगा।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :-

1. गांधी, एम. के., समाज सुधार : समस्या समाधान, पृ0सं0-581।
2. शैलेन्द्र पांथरी और अमरेन्द्र प्रताप सिंह, 'आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास', वाराणसी 2000, पृ.सं.-222।
3. अपर्णा वसु-'द रोल ऑफ वीमन इन द इण्डियन स्ट्रगल फॉर फ्रीडम' पृ0सं0 27-28
4. वर्मा, डा.वी.पी. 'आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतक', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा 1998, पृ. 353।
5. वर्मा, डॉ. वी.पी.,'आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन',लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, प्रकाशन, आगरा 1998, पृ.सं.-357।
6. उपरोक्त, पृ.सं.-365।
7. उपरोक्त, पृ.सं.-367।
8. रत्नू, डा. कृष्ण कुमार एवं डॉ.कमला, 'समग्र गांधी दर्शन', अविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर 2009, पृ.सं.-23
9. वही, पृ.सं.-24।
10. वही, पृ.सं.-25।
11. वही, पृ.सं.-25।
12. वही, पृ.सं.-19-201

***

हिंसा के युग में गांधीवादी विश्व व्यवस्था की संभावना

डॉ.दिब्यज्योति दत्ता[41]
डॉ. नावेद जमाल[42]

विश्व शांति से तभी रह सकता है जब इसका निर्माण करने वाले व्यक्ति ऐसा करने के लिए अपना मन बना लेंगे।" एम.के. गाँधी (1995: 70)

विश्व अतीत में कई युद्ध, लड़ाइयों और शत्रुता का साक्षी रहा है जहाँ शांति का गला घोंट कर उसे कुचल दिया गया है। ये विनाशकारी कार्य ऐसे समय में हुए हैं जब वैज्ञानिक स्वभाव और नवाचारों ने मानवता को विवेकपूर्ण विश्व व्यवस्था का मानचित्र दे दिया है। नव-उदारवादी वैश्वीकरण के प्रगतिशील अभियान ने व्यापक उपभोक्तावाद और व्यक्तिवाद की वृद्धि की है जो सामूहिक-उत्साही समाज को प्रतिबंधित करती है जैसा राष्ट्रपिता, एम.के. गांधी ने कल्पना की थी। गांधीवादी विचार का सार अहिंसा और स्वतंत्रता की ईमारत पर है। इसके विपरीत, समकालीन विश्व व्यवस्था बड़े रूप से 'योग्यतम के उत्तरजीविता' के डार्विनियन सिद्धांत द्वारा संचालित है। अमीर और गरीब एवं कमजोर लोगों के बीच की खाई चौड़ी हुई है; लाखों लोग हिंसा के विभिन्न तरीकों से पीड़ित हैं; पर्यावरण विघटन और सांस्कृतिक व्यवधान आर्थिक विकास के आवश्यक परिणाम बन गए हैं जबकि कमजोर और गरीब वर्ग और अधिक हाशिए पर जा रहे है। दुनिया के अधिकांश हिस्सों में हाल में आये हिंसा और असहिष्णुता में उछाल विश्व शांति, सहयोग और स्थिरता से विचलन को दर्शाता है जो अंतरराष्ट्रीय संस्थानों और अंतर्राष्ट्रीय कानून के माध्यम से शीत युद्ध के बाद के समय में हासिल करने की मांग की गई थी। इन पृष्ठभूमि के विरुद्ध, यह आलेख गांधी को समकालीन विश्व व्यवस्था में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और पारस्परिक अंतर-निर्भरता को फिर से स्थापित करने के वैकल्पिक साधनों को फिर से खोजने का प्रयास करता है।

क्या हिंसा एक सामान्य बात बन गई है?

विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू.एच.ओ) के अनुसार, हिंसा 'शारीरिक बल या शक्ति का अपने आप पर, किसी अन्य व्यक्ति, या एक समूह या समुदाय के खिलाफ, जानबूझकर उपयोग किया गया बल है जिसके परिणामस्वरूप चोट, मृत्यु, मनोवैज्ञानिक हानि, विकास या अभाव के परिणाम या इसके होने की उच्च संभावना है। हिंसा की इस परिभाषा के दायरे में व्यक्तिगत हिंसा और सशस्त्र संघर्ष दोनों शामिल हैं। व्यक्तियों या समुदायों के प्रति धमकी या अभित्रास जो उनकी सुरक्षा एवं भलाई के लिए गंभीर जोखिम पैदा करते हैं हिंसक व्यवहार के दायरे में आते हैं। हिंसा का कोई एक कारण नहीं है। हिंसा को

---

[41] एसोसिएट प्रोफेसर -राजनीति विज्ञान विभाग,डिब्रुगढ़ विश्वविद्यालय, डिब्रुगढ़ (असम)
[42]एसोसिएट प्रोफेसर -राजनीति विज्ञान विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली

प्रभावित करने वाले सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक कारकों के अनेकानेक जटिल अंतर्संबंध हैं।

हाल के दिनों में वैश्विक हिंसा कई गुना बढ़ गई है। हिंसा की बढ़ती घटनाओं से वैश्विक शांति में बाधा आ रही है। गृहयुद्ध, सैन्यीकरण में वृद्धि, आतंकवादी हमले, महिलाओं एवं बच्चों और बुजुर्गों के खिलाफ अपराध बढ़ रहे हैं। एक्शन ऑन आर्म्ड वायलेंस (एओएवी) द्वारा बताया गया है कि जून 2018 में दुनिया भर में विस्फोटक हिंसा की 257 घटनाओं में से 2461 मौतें और चोटें दर्ज की गईं, जहां नागरिकों की मौत एवं घायलों का हिस्सा 67% दर्ज किया गया। 2018 की पहली छमाही के दौरान मैक्सिको में मानव हत्या में 16% की वृद्धि हुई। सीरिया और अफगानिस्तान जैसे देश सालों के आंतरिक संघर्ष से टूट के कगार पर पहुँच गए हैं। हिंसा के रोकथाम और नियंत्रण में सैन्य और सुरक्षा खर्चों ने वैश्विक अर्थव्यवस्था पर काफी प्रभाव डाला है। ऐसे समय में, जब विश्व के तमाम देशों ने सतत विकास की दिशा में अपनी नीतियों को निर्धारित कर आगे बढ़ाया है और वैश्विक गरीबी को कम करने का संकल्प लिया है, बढ़ती हिंसा की ऐसी चौंका देने वाली घटनाएं उनकी उपलब्धियों पर सवाल खड़ा करता है। इस बात पर आम सहमति बन रही है कि दुनिया युद्ध की कगार पर है। अरब क्रान्ति के बाद की हिंसा और मध्य पूर्वी देशों में तबाही, ईंधन की बढ़ती कीमत, यूरोपीय संघ में संकट, अमेरिका, रूस और चीन के बीच उबलता तनाव, देशों के बीच व्यापार युद्ध आदि घटनाएं दुनिया में बढ़ती असुरक्षा की और इशारा करती है। एक ओर जहां विश्व के कई देश अपनी संप्रभुता और राष्ट्रीय हितों की रक्षा के लिए बहु-ध्रुवीय विश्व व्यवस्था में शक्ति प्रदर्शन में स्पर्धा करते हुए नजर आती हैं वहीं दूसरी ओर वे सार्वजनिक स्थानों के अधिक लोकतांत्रिककरण की भी मांग करते हैं।

ग्लोबल पीस इंडेक्स, 2018 के अनुसार, वैश्विक अर्थव्यवस्था पे हिंसा का आर्थिक प्रभाव 2017 में 14.76 खरब अमरीकी डालर के बराबर था जो कि विश्व सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का 12.4% या प्रति व्यक्ति 1, 988 अमरीकी डालर है।

आधुनिक विश्व में हिंसा इतनी व्यापक हो गई है कि प्रत्येक दिन होने वाली ऐसी अधिकांश घटनाएं शायद ही हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं। हम अक्सर हिंसा के विस्तार और इसे कैसे रोकथाम करें, इसके बारे में बहस करते हैं, लेकिन अंतत हम घावों को भरने के लिए और अधिक हिंसा को निर्धारित किये चले जाते हैं। हथियारों के प्रसार का पूरा मुद्दा हिंसा को एक शक्ति के रूप में बढ़ावा देने और शांति, कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए हथियारों के उपयोग को उचित ठहराने के प्रस्ताव पर आधारित है। क्या अच्छे कारण के लिए हिंसा को उचित ठहराया जा सकता है? आज यह एक महत्वपूर्ण सवाल है और अधिकांश लोग आतंकवाद, अपराध, समाज के कमजोर वर्गों की रक्षा की आवश्यकता और अन्य बातों की ओर इशारा करके इस पर प्रतिक्रिया करेंगे। लेकिन इतिहास इस तथ्य का गवाह है कि हिंसा और अधिक हिंसा को जन्म देती है।

हिंसा के विभिन्न स्वरूप मौजूद हैं। हम अपने उद्देश्य के लिए मोटे तौर पर उन्हें तीन भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं:

(1) राज्य की विफलता के कारण हिंसा की घटना

(2) राज्य के द्वारा परिचालित हिंसा

(3) वैश्विक हिंसा

(1) राज्य की विफलता के कारण हिंसा की घटना: हमारे देश में हुई हिंसा की घटनाओं पर एक सरसरी नजर डालने से हिंसा के विभिन्न पैटर्न के अस्तित्व का अनुमान लगाने में आसानी होगी। हिंसा, अराजकता और संस्थानों की विफलता के कारण पैदा होती है। यह सांप्रदायिक हिंसा, भीड़ हत्या और अन्य रूप में हो सकता है। गृह मंत्रालय के आंकड़ों के अनुसार, सांप्रदायिक हिंसा निरंतर बढ़ रही है। यह बिगत तीन बर्ष और इससे अधिक 2017 तक 28 प्रतिशत बढ़ गया है-उस वर्ष 822 "घटनाएं" दर्ज की गईं-लेकिन यह 2008 के दशकीय ऊंचाई 943 से कम था (IndiaSpend: 2018) राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के एक रिपोर्ट में कहा गया हैं कि 2016 में भारत में कुल संज्ञेय अपराध (भारतीय दंड संहिता के अनुसार) अकेले 29, 75, 711 (NCRB: 2016) थे, जिनमें से 1, 10, 378 ऐसे मामले महिलाओं के खिलाफ हैं जो पति या अन्य रिश्तेदारों द्वारा किये गए अपराध हैं।

(2) राज्य द्वारा संचालित हिंसा: राज्य एक न्यायिक इकाई है, एक वैध शक्ति संरचना और प्राधिकरण है। राज्य का मुख्य दायित्व लोगों के हितों की रक्षा और संरक्षण करना है। हमलोग राज्य के आदेश को पवित्र मानते हैं, इस तथ्य को जानते हुए भी कि राज्य हमें कई मायने में अनुशाषित करता है। ऐसी अनुशाशन कभी-कभी निन्दनीय और घातक हो जाती हैं। राज्य 'हिंसा को रोकने के लिए हिंसा के साधनों का सहारा लेती है। ' उग्रवाद, आतंकवाद, वामपंथी उग्रवाद और सक्रियतावाद के समस्या को हल करने के नाम पर राज्य हिंसा का सहारा लेती है। सशस्त्र बल विशेष अधिकार अधिनियम, 1958 का मामला एक सबसे अच्छा उदाहरण है। पूर्वोत्तर क्षेत्र और जम्मू-कश्मीर में यह अभी भी लागु है, अधिनियम (धारा-4) के प्रावधान के मुतबिक एक हवलदार के रैंक से ऊपर अधिकारी उस व्यक्ति को गोली मार सकता है जिस पर उसे शांति भंग करने का संदेह है। यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के उल्लंघन का एक स्पष्ट संकेत है जो जीवन के अधिकार' को मौलिक अधिकार के रूप में बताता है। 200 से अधिक जातीय समूहों का घर, लगभग 4 करोड़ 50 लाख लोगों (भारत की जनसंख्या का 4%) के साथ, उत्तर-पूर्वी राज्यों ने अन्य भारतीय राज्य से बिलकुल अलग तरह के अत्याचारों का अनुभव किया है जो राज्यों के द्वारा वैध हैं। पूर्वोत्तर में 72 सशस्त्र समूह हैं, सरकार, संघर्षों से निपटने के लिए 5, 00,000 सशस्त्र कर्मियों की भर्ती करती है, मणिपुर में न्याय के लिए 20,000 विधवाएँ चिल्ला रही हैं, सभी युवाओं (19-40) को AFSPA के प्रभाव वाले क्षेत्रों में संदिग्ध माना जाता है (नेपराम: 2015)।

(3) वैश्विक स्तर पर हिंसा: वैश्वीकरण के बढ़ते हुए सफर ने एक नए प्रकार के विश्व व्यवस्था को सामने लाया है। सत्ता के लिए टकराव और स्पर्धा ने सभ्यताओं को बर्बाद कर दिया है। बाजार की नव-उदारवादी अर्थव्यवस्था ने दूसरी ओर संसाधनों के स्वामित्व, नियंत्रण और प्राप्ति पर भारी प्रभाव डाला जिससे वैश्विक शक्ति समीकरणों को अधिक जटिल और महत्वपूर्ण बना दिया हैं। शीत युद्ध के बाद, मानवता ने इराक पर आक्रमण, अफगानिस्तान का विनाश, सीरियाई संकट, रोहिंग्या संकट आदि कई घटनाओ को देखा है। हजारों लोग मारे गए थे, बेलगाम शक्ति का प्रयोग करने के नाम पर हजारों घर तबाह हो गए। आज अधिकांश राज्यों के पास दूसरी परमाणु स्ट्राइक क्षमता 'है, यानी अगर किसी देश

को नक्शे से मिटा दिया जाता है, तो भी, पीड़ित देश बराबर विनाशकारी बल के साथ जवाबी कार्रवाई कर सकता है।

इसका समाधान (प्रतिकार) क्या है?

हिंसा का प्रतिकार अहिंसा की संस्कृति को बढ़ावा देने में हैं जिसे गांधी अहिंसा कहते थे। यदि अहिंसा को उच्चतम नैतिक मूल्य के रूप में प्रचारित किया जाता है, तो दुनिया स्वर्ग में बदल जायेगी। अहिंसा का अर्थ है-उग्रता की अनुपस्थिति, बातचीत और संवाद की उपस्थिति; और विवादों का शांतिपूर्ण निपटारा। आध्यात्मिक जागृति हमें हमारे साथियों और प्रकृति के साथ पूर्ण सद्भाव में रहने में मदद कर सकती है।

गांधी ने तीन महत्वपूर्ण आंदोलनों को आदर्श बनाया-(i) औपनिवेशिक व्यवस्थाके खिलाफ असंतोष व्यक्त करने के लिए नागरिक अवज्ञा, (ii) देश चलाने में आम आदमी की शक्ति को उजागर करने के लिए असहयोग और (iii) भारत छोड़ो-जो इन सबों में सबसे महत्वपूर्ण और लोकप्रिय हुआ और जिसका उदेश्य देश की मिट्टी से औपनिवेशिक वर्चस्व को जड़ से खत्म करना है। ऐसा करने में, गांधी ने जो किया वह काफी ज़बर्दस्त है। गाँधी ने राजनीति को आध्यात्म से जोड़ा जो वास्तव में, गांधीवादी दर्शन का मूल है। उनके लिए स्वतंत्रता मानव उत्थान के केंद्र में है। और उन्होंने बहुत शानदार ढंग से स्पष्ट किया कि स्वतंत्रता कोई परम तत्व नहीं है, यह विविधता के अनुरूप होती है।

गांधी जानते थे कि हिंसा हिंसा को जन्म देती है। उन्होंने कई उदाहरणों में सम्मति दी की कि संसाधनों और भौतिक संपदा पर मानव जाति का लालच कई मतभेदों और असहमतियों का स्रोत है। हमने अतीत में देखा है कि किस तरह संसाधनों का दोहन करने के लिए शक्तिशाली देश साधन-संपन्न अविकसित देशों को निशाना बनाते रहे हैं।

यद्यपि अहिंसा हिंसा का निवारण करने के लिए एक महत्वपूर्ण उपाय है, सरपरस्ती का सिद्धांत, यद्यपि काल्पनिक है, हिंसा को काफी हद तक कम करने के लिए इन दिनों बिलकुल प्रासंगिक है। चूंकि, संसाधन किसी न किसी तरह से सभी संघर्षों का स्रोत है, इसीलिए इसका उपाय इसके विवेकपूर्ण और टिकाऊ उपयोग में है। गांधी ने बतलाया:- "मान लीजिए कि मैं धनि व्यक्ति बन गया हूं-यह धन या तो विरासत के माध्यम से, या व्यापार और उद्योग के माध्यम से मिला हो-मुझे यह पता होना चाहिए कि वह सभी धन मेरे लिए नहीं है; जो मेरा है, वह है-सम्मानजनक आजीविका का अधिकार, उन लाखों लोगों से बेहतर नहीं जिन्होंने इसका आनंद लिया है। मेरा शेष धन समुदाय का है और इसका उपयोग समुदाय के कल्याण के लिए किया जाना चाहिए। मैंने इस सिद्धांत को तब स्थापित किया जब देश के सामने समाजवाद का सिद्धांत जमींदारों और शासन प्रमुखों के सम्पति के सन्दर्भ में आया था। वे इन विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों को दूर करेंगे। मैं चाहता हूं कि वे अपने लालच और कब्जे की भावना से ऊपर उठे, और अपने धन के बावजूद उन लोगों के स्तर तक नीचे आएँ, जो श्रम करके अपनी आजीविका कमाते हैं। मजदूर को यह महसूस करना होगा कि अमीर आदमी अपनी संपत्ति का मालिक कम है, मजदूर खुद का मालिक है, जो काम करने की शक्ति रखता है।"-हरिजन,3-6-1939,पृ. 145

यदि कोई वर्तमान विश्व व्यवस्था पर नजर डालें तो वह पायेगा की उलटा हो रहा है। पूंजीवाद हावी हो गया है और मानवतावाद संकट में है। जॉन पर्किन्स की प्रभावशाली पुस्तक, " द कन्फेशंस ऑफ एन इकॉनोमिक हिटमैन: द शॉकिंग स्टोरी ऑफ़ हाउ अमेरिका रियली टूक ओवर द वर्ल्ड" में से समझा जा सकता हैं की कैसे आधुनिक राज्य अन्य राज्यों के संसाधनो को नियंत्रित और कब्ज़ा करते हैं । पर्किन्स अपने पुस्तक में उदाहरण के साथ समझाते है कि विकासशील और अविकसित देशों के संसाधनों को नियंत्रित और प्रबंधित करने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका की क्रमिक सरकारों द्वारा सहायता का उपयोग कैसे किया गया है। उन्होंने कहा कि 'अमेरिकन सहायता' अक्सर पूंजीवाद के विस्तारवादी एजेंडे के छिपे हुए एजेंडे के साथ आती/मिलती है। ऋण या कर्ज केवल देशों को लुभाने के लिए बहुत सस्ती दर पर दिए जाते हैं और फिर प्राप्तकर्ता देशों के संसाधनों को निकाला जाता है। पर्किन्स का चिंतन आंद्रे गौंडर फ्रैंक द्वारा विकसित 'डिपेंडेंसी थ्योरी'की पुष्टि करता है। अपनी पुस्तक 'द डेवलपमेंट ऑफ अंडरडेवलपमेंट' (1966) में, फ्रैंक बताते हैं कि अमीर देश गरीब देशों के संसाधन दोहन के कारण समृद्ध हैं। जाफरी साइच ने समझाया कि विदेशी सहायता बड़े पैमाने पर गरीबी के अधीन देशों के लिए उपलब्ध कराई जा रही है। संयुक्त राज्य अमेरिका और अन्य दाता देशों ने मॉन्टेरी में हुई आम सहमति में इस बात पर सहमत हुए की "सभी विकसित देशों से आग्रह किया गया है कि वे आधिकारिक विकास सहायता के रूप में सकल घरेलू उत्पाद के 0.7 प्रतिशत के लक्ष्य की दिशा में ठोस प्रयास करने को उच्च प्राथमिकता दें। पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज डब्ल्यू बुश ने मॉन्टेरी का स्वयं दौरा करके मिलेनियम चैलेंज अकाउंट (MCA) नामक एक नई परियोजना में अमेरिकी विदेशी सहायता राशि की आश्चर्यजनक वृद्धि की घोषणा की। सारांश में, हालांकि सहायता की राजनीति मुश्किल है और संसाधन संपन्न देशों के विकास के क्षेत्र में प्रवेश का साधन है, लेकिन एक बात प्रकट रूप से स्पष्ट है कि दूसरे देश बड़े पैमाने पर गरीबी, भुखमरी और अविकसितता के कारण पिछड़े अन्य देशों की देखभाल करते है। यदि यह बात है, तो गांधी के ट्रस्टीशिप (सरपरस्ती) के सिद्धांत को वास्तविकता के धरातल पर उतारा जा सकता है (बेशक वर्तमान आवश्यकताओं के अनुरूप इसमें उपयुक्त संशोधन करते हुए)।

ट्रस्टीशिप सिद्धांत का अंतिम प्रारूप इस प्रकार है:

1. ट्रस्टशिप समाज के वर्तमान पूंजीवादी व्यबस्था को एक समतावादी व्यबस्था में बदलने का एक साधन प्रदान करता है। इसमें पूंजीवाद के लिए कोई जगह नहीं है, लेकिन वर्तमान शासन वर्ग को खुद को सुधारने का मौका देता है। यह इस विश्वास पर आधारित है कि मानव स्वभाव कभी भी मुक्ति से परे नहीं है।

2. यह संपत्ति के निजी स्वामित्व के किसी भी अधिकार को मान्यता नहीं देता है, सिवाय यहाँ तक जहाँ तक की इसे समाज द्वारा अपने कल्याण के लिए अनुमति दी जाटी है।

3. यह धन के स्वामित्व और उपयोग के विधायी विनियमन को नहीं छोड़ता है।

4. इस प्रकार राज्य-द्वारा व्यवस्थित ट्रस्टीशिप के तहत, एक व्यक्ति अपनी संतुष्टि के लिए या समाज के हितों की अवहेलना कर अपने धन को रखने या उपयोग करने के लिए स्वतंत्र नहीं होगा।

5. जिस तरह आजीविका के लिए एक उपयुक्त न्यूनतम वेतन तय करना प्रस्तावित है, उसी तरह अधिकतम आय के लिए भी एक सीमा तय की जानी चाहिए, जो समाज के किसी भी व्यक्ति को दी जाएगी। ऐसे न्यूनतम और अधिकतम आय के बीच का अंतर समय-समय पर उचित और न्यायसंगत और परिवर्तनशील होना चाहिए ताकि रूझान इस अंतर को धीरे धीरे समाप्त करने की ओर हो।

6. गाँधीवादी आर्थिक व्यवस्था के तहत उत्पादन का पैमाना सामाजिक आवश्यकता से निर्धारित होगा न कि व्यक्तिगत सनक या लालच से। हरिजन, 25-10-1952 * नव-उदारवादी बाजार से सम्बर्धित पूंजीवाद की सफर ने व्यक्तिगत संस्कृति को एक नई ऊंचाई पर पहुंचा दिया है। व्यक्तिवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति इसके प्रकटीकरण में बाधा के रूप में खड़ी होगी, लेकिन यह निश्चित रूप से लाभ के संचय के लिए अंधी दौड़ को दूर करेगी। दुनिया के आठ सबसे अमीर अरबपति अपने बीच की दौलत को वैसी ही नियंत्रित करते हैं, जैसे दुनिया की सबसे गरीब आधी आबादी के पास है, जो कि लगातार बढ़ती धन-दौलत और खतरनाक केन्द्रीकरण की ओर चेतावनी देता है।

ऑक्सफैम द्वारा प्रकाशित एक रिपोर्ट में कहा गया है कि यह "विलक्षणता से परे" था कि माइक्रोसॉफ्ट के संस्थापक बिल गेट्स के साथ साथ मुट्ठी भर अमीरों के पास 426 बिलियन अमरीकी डालर है जो 3.6 बिलियन लोगों की संपत्ति के बराबर हैं। दुनिया के करोड़पतियों को आने वाले वर्षों में सबसे अच्छा करने की उम्मीद है। दुनिया में अब 36 मिलियन करोड़पति हैं, और उनकी संख्या 2022 तक बढ़कर 44 मिलियन होने की उम्मीद है। कुल मिलाकर 1% आबादी के पास दुनिया के कुल संसाधनों का 50% है।

गांधी हमारे समाज में व्याप्त असमानता के बारे में बहुत चिंतित थे। उन्होंने एक ऐसा साधन देखा जिसके माध्यम से असमानता को समाप्त किया जा सकता है। गांधी ने इस सवाल का जवाब दिया कि क्या हिंसा के माध्यम से पूंजी का संचय संभव है चाहे खुला हो या गुप्त (हरिजन, 16-247, पृष्ठ 25) ने उल्लेख किया कि निजी व्यक्तियों द्वारा इस तरह का संचय हिंसक माध्यमों के अलावा असंभव था लेकिन राज्य द्वारा एक अहिंसक समाज में यह संचय न केवल संभव था, बल्कि यह वांछनीय और अपरिहार्य था।

गांधी एक मानवतावादी, सच्चे आस्तिक और अहिंसा के अभ्यासी थे। गांधी का विश्वदृष्टि स्वतंत्रता और समतावाद को मूल मूल्यों के रूप में दर्शाता है। समकालीन दुनिया ने जाति, धर्म, भाषा, लिंग और रंग के आधार पर विभाजनकारी राजनीति और टकराव देखे हैं। हिंसा एक व्यवस्था बन जाती है और हिंसा को रोकने के लिए और अधिक हिंसक साधनों 'को उपयोग किया जा रहा है। एक तरह से दुनिया हिंसा के केंद्र में बदल गई है। ऐसे कोई उपाय नहीं हैं जिससे इसे ठीक किया जा सकता है जब तक कि लोग अहिंसा, शांति और शांति के सिद्धांतों का पालन नहीं करते हैं-जो गांधीवादी दर्शन का मूल हैं। गांधी का ट्रस्टीशिप सिद्धांत आज और अधिक प्रासंगिक हो गया है, जहां अमीर मानवता के लिए उपयोगी संसाधनों की निंदा करते हैं। हालांकि यह काल्पनिक लगता है लेकिन इसमें मानवता स सम्बंधित चुनौतियों का सामना करने की सच्ची क्षमता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. हिंसा और स्वास्थ्य पर विश्व रिपोर्ट (2002), विश्व स्वास्थ्य संगठन, जेनेवा, पृष्ठ 3 http://www.who.int/violence_injury_preference/violence/world_report/en/ से एक्सेस किया गया।

20.08.2018 को abstract_en.pdf

2. https://aoav.org.uk/2018/explosive-violence-in-june-2018/
3. https://www.theguardian.com/world/2018/jul/23/mexico-crime-homicides-violence-up-report
4. ग्लोबल पीस इंडेक्स (2018)। अर्थशास्त्र और शांति संस्थान, http://visionofhumanity.org/reports
5. https://www.speakingtree.in/blog/relevance-of-non-violence-in-today-s-times
6. https://www.firstpost.com/India/communal-violence-rose-by-28-from-2014-to-2017-but-2008-remains-year-of-highest-Instances-of-religious-violence-4342951.html
7. https://www.speakingtree.in/blog/relevance-of-non-violence-in-today-s-times
8. पर्किन्स, जॉन, "इकॉनोमिक हिटमैन: द कन्फेशन ऑफ़ द इकोनॉमिक हिटमैन: अमेरिका ने वास्तव में दुनिया को कैसे संभाला, इसके बारे में चौंकाने वाला है" रैंडम हाउस: लंदन, 2005
9. बनर्जी, अभिजीत वी। और एस्थर डुफ्लो, (2011), पुअर इकोनॉमिक्स, नोएडा: रैंडम हाउस इंडिया, पृष्ठ-4
10. सैक्स, जाफरी। डी, (2005), द एंड ऑफ पॉवर्टी, न्यू यॉर्क: द पेंगुइन प्रेस, पी .18
11. https://www.theguardian.com/global-development/2017/jan/16/worlds-eight-richest-people-have-same-wealth-as-poorest-50
12. https://www.cnbc.com/2017/11/14/richest-1-percent-now-own-half-the-worlds-wealth.html

***

राजनीतिक दर्शन की समीक्षा

डॉ. राजेश कुमार शर्मा[43]

गाँधी धर्म और राजनीति में अटूट संबंध मानते थे। उनका मानना था कि "मेरे लिये मोक्ष का एकमात्र मार्ग यही है कि मैं देश तथा मानव-जाति की सेवा के लिए निरन्तर परिश्रम करूँ। मैं हर जीवित प्राणी के साथ अपना एकात्म स्थापित करना चाहता हूँ। गीता की भाषा में मैं अपने मित्रों तथा शत्रुओं दोनों के साथ शान्तिपूर्वक रहना चाहता हूँ। अतः मेरे लिये मेरी देशभक्ति शाश्वत स्वतन्त्रता तथा शान्ति के लोक की यात्रा की एक मंजिल है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मेरे लिये धर्म से शून्य राजनीति नहीं हो सकती। राजनीति धर्म के अधीन है। धर्म से शून्य राजनीति एक मृत्यु-जाल है, क्योंकि उससे आत्मा का हनन होता है।" लेकिन इस का यह तात्पर्य नहीं है कि वे किसी धार्मिक शासन की स्थापना करना चाहते थे। धर्म का अभिप्राय ईश्वर के साथ तादात्म्य कायम करना है। वह एक प्रचण्ड शक्ति है। इसलिए राजनीति में धर्म को समाविष्ट कराने का अर्थ था-न्याय तथा सत्य की ओर उत्तरोतर प्रगति करना।

गांधीजी ने पाश्चात्य लोकतान्त्रिक राजनीति की कटु आलोचना की, क्योंकि उसमें तीन अन्तर्विरोध थे। उसके अन्तर्गत पूँजीवाद का असीम प्रसार हुआ जिसके फलस्वरुप दुर्बल वर्गों का डटकर शोषण किया गया। कुछ लोकतान्त्रिक राज्यों ने तो फासीवाद तरीके भी वह शुद्ध नात्सीवाद अथवा फांसीवाद है। अधिक से अधिक वह साम्राज्यवाद की नात्सीवादी तथा फांसीवाद प्रवृतियों को छिपाने का आवरण है। गांधीजी ने स्पष्ट घोषणा की कि ब्रिटेन ने भारत को लोकतान्त्रिक तरीकों से नहीं जीता था। उन्होंने दक्षिणी अफ्रीका तथा अमरीका के दक्षिणी भागों में प्रचलित जातीय भेदभाव की नीति की आलोचना की। उनका कहना था कि केवल अहिंसा के द्वारा सच्चे लोकतन्त्र की स्थापना की जा सकती है। राजनीति में लोकतन्त्र का अर्थ है कि विरोधियों के साथ पूर्णतः सम्यक् व्यवहार किया जाय। आर्थिक क्षेत्र में लोकतन्त्र का अभिप्राय है कि सबसे दुर्बल व्यक्ति को भी वे ही सुविधाएँ मिलनी चाहिए जो सबसे शक्तिशाली के लिए उपलब्ध हों। लोकतन्त्र तथा हिंसा के बीच मेल नहीं हो सकता। वे चाहते थे कि भारत विकसित होकर "सच्चे लोकतन्त्र" का रुप धारण करें। वे यथार्थवादी थे उन्होंने यह कहा कि भविष्य में भारत सैन्य-बल का परित्याग कर देगा और पूर्ण अहिंसा को अपना लेगा। वे चाहते थे कि हिंसा के बिना क्रमिक रुप से सच्चे लोकतन्त्र को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाये। शक्ति का विकेन्द्रीकरण उनके लोकतन्त्रिक सिद्धान्त का मुख्य तत्व था। उन्होंने भारत में सच्चे लोकतन्त्र के लिए कुछ शर्तें निश्चित की थीं। वे इस बात को पूर्णतः अनुचित और अलोकतान्त्रिक मानते थे कि व्यक्ति कानून को अपने हाथों में ले।

---

[43] निदेशक, गांधी अध्ययन केन्द्र, राजनीति विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

गांधी ने अपने सर्वोदय दर्शन की पद्धति में भारतीय प्राचीन दर्शन की धारणा को समाहित किया। उन्हें वेदान्त तथा गीता दर्शन में वर्णित अहिंसा से प्रेरणा मिली थी। सर्वोदय गाँधी के व्यापक आदर्शवाद, लॉक के बहुसंख्यावाद, मार्क्स-लेनिन के वर्ग और जातीय संघर्ष के सिद्धान्तों तथा बेंथम के 'अधिकतम संख्या का अधिकतम सुख' के आदर्श के विरुद्ध है। ऐतिहासिक रूप से देखें तो प्लेटो एवं गांधी के मध्य आदर्श राज्य की अवधारणा में काल्पनिक साम्य दिखाई देता है क्योंकि प्लेटो ने अपनी पुस्तक रिपब्लिक में ऐसे आदर्शवाद की कल्पना की है जो समयानुकूल उचित नहीं था जबकि गांधी ने एक यथार्थवादी सिद्धान्त प्रतिपादित किया जो भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए तथा निकट भविष्य में लागू किये जाने के लिए था। इसके अतिरिक्त यह एक आदर्शवादी सिद्धान्त भी है जिसका उद्देश्य मानव स्वभाव में आमूल रुपान्तरण करना तथा मानव जाति के सामूहिक जीवन में नैतिक कार्यप्रणाली को समाविष्ट कराना था। गांधी राज्य को हिंसा तथा शक्ति का संगठित रुप मानते थे। अहिंसा के पुजारी होने के नाते उन्हें राज्य के बाध्यकारी स्वरुप से घृणा थी। उनका विश्वास था कि आदर्श रामराज्य में जनता की नैतिक शक्ति का प्रभुत्व होगा और हिंसा की व्यवस्था के रुप में राज्य का विनाश हो जायेगा। किन्तु वे राज्य की शक्ति को तत्काल समाप्त करने के पक्ष में नहीं थे। यद्यपि अन्तिम उद्देश्य नैतिक तथा दार्शनिक अराजकतावाद है, किन्तु तात्कालिक लक्ष्य राज्य को अधिकाधिक पूर्णत्व की ओर ले जाना है। गांधीजी ने 'यंग इण्डिया' (9 मार्च, 1922) में एक लेख लिखकर स्वराज्य तथा आदर्श समाज का भेद समझाया। आदर्श समाज में रेलमार्ग, अस्पताल, मशीनें, सेना, नौसेना, कानून और न्यायालय नहीं होंगे। किन्तु उन्होंने जोर देकर कहा कि स्वराज्य में ये पाँचों प्रकार की चीजें रहेंगी। स्वराज्य में कानून तथा न्यायालयों का काम जनता की स्वतन्त्रता की रक्षा करना होगा, वे नौकरशाही के हाथों में उत्पीड़न का साधन नहीं होंगे। राज्य के प्रति गांधीजी की असहजता के कुछ कारणों का अनुमान लगाया जा सकता है जैसे-दक्षिण अफ्रीका की सरकार द्वारा असहाय जूलू लोगों पर किये गये अत्याचार, दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान स्मट्स का विश्वासघात, ब्रिटिश साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा भारत में किये गये अत्याचार। इस बात को स्पष्टतः समझना होगा कि गांधी किसी विशिष्ट सरकार के रूप को ही नहीं बल्कि सामान्य तौर पर राज्य की पूरी व्यवस्था को ही शत्रुतापूर्ण भाव से देखने लगे थे; किन्तु उन्होंने राज्य को तत्काल नष्ट करने की कल्पना नहीं की। उनका विचार था कि राजनीति में अहिंसा का अधिकाधिक प्रयोग करने से बाध्यकारी राज्य स्वतः समाप्त हो जायेगा। उनका विश्वास था कि भविष्य में भारतीय सैनिक लोक-सेना का रुप धारण कर लेंगे और उनका प्रयोग आक्रमण के लिए नहीं बल्कि प्रतिरक्षा के लिए किया जायेगा।

गांधीजी का सत्याग्रह-दर्शन सत्य के सर्वोच्च आदर्श से उत्पन्न हुआ है। यदि सत्य ही परम तत्व है तो उसके पुजारी का कर्तव्य है कि सत्य की कसौटी तथा उसके आधारों की रक्षा करे। ईश्वर ही परम सत्य और परम सत् है, अतः ईश्वर-भक्त के लिए आवश्यक है कि वह पूर्णतः विनम्र और स्वार्थरहित हो। उसमें नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों के लिए संघर्ष करने का अजेय से कल्प तथा साहस होना चाहिए तभी वह अपनी सच्ची नैतिक भावना का प्रमाण दे सकता है।

सब प्रकार के अन्याय, उत्पीड़न और शोषण के विरुद्ध शुद्धतम आत्मबल का प्रयोग ही सत्याग्रह है। कष्ट-सहन तथा विश्वास आत्मबल के गुण हैं। सत्याग्रही के सक्रिय अहिंसात्मक प्रतिरोध का हृदय पर तत्काल प्रभाव होता है। वह विरोधी को जोखिम में नहीं डालना चाहता, बल्कि उसे अपने प्रेम और आत्मबल की प्रचण्ड शक्ति से अभिभूत पर देना चाहता है। सत्याग्रह अथवा हृदय-परिवर्तन के विस्मयकारी तरीके सरकार तथा सामाजिक अत्याचारियों एवं परम्परावाद के नेताओं, सभी के विरुद्ध प्रयोग किया जा सकता है।

सत्याग्रह मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। यह अधिकार के साथ-साथ पवित्र कर्तव्य भी है। जो सरकार जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करती और बेईमानी तथा अनैतिकता का समर्थन करने लगती है, उसकी अवज्ञा करना आवश्यक हो जाता है। किन्तु जो अपने अधिकारों की रक्षा करना चाहता है उसे सब प्रकार के कष्ट सहने के लिए तैयार रहना चाहिए।

सत्याग्रह की विभिन्न प्रणालियाँ हैं। अनशन सत्याग्रह का एक रुप हो सकता है, किन्तु उसका प्रयोग उन लोगो के विरुद्ध ही करना चाहिए जिनसे घनिष्ठ वैयक्तिक प्रेम-सम्बन्ध हो। स्वेच्छा से देश छोड़कर चला जाना सत्याग्रह का अन्य रुप हो सकता है। "अत्याचार एक प्रकार की महामारी है, इसलिए जब डर हो कि उससे हमारे अन्दर क्रोध अथवा दौर्बल्य उत्पन्न होने वाला है तो उस स्थान को ही छोड़कर चला जाना चाहिए।" गांधी ने हिजरत का भी समर्थन किया। बाइबिल के एक खण्ड में इजरयलियों के योजनापूर्वक भाग निकलने का उल्लेख है। वे भी अहिंसा के अनुयायी थे ('हरिजन' जनवरी 6, 1940)। गांधी ने गुप्त कार्यवाहियों का समर्थन नहीं किया। उनका कहना था कि गुप्त कार्यवाहियाँ चाहे स्वतन्त्रता के न्यायपूर्ण संघर्ष का अंग हों या वे सत्य तथा अहिंसा पर आधारित हों, फिर भी सत्याग्रही के लिए वे उचित नहीं हैं।

गांधीजी ने जिस सत्याग्रह की कल्पना की, वह सामाजिक विघटन का सूत्र नहीं था। सत्याग्रही वही हो सकता है जिसने पहले स्वेच्छा से बुद्धिमानी के साथ और स्वतः राज्य के कानूनों का पालन किया हो। गांधीजी लिखते हैः "सत्याग्रही समाज के कानूनों का बुद्धिमानी से और अपनी स्वतन्त्र इच्छा से पालन करता है, क्योंकि वह ऐसा करना अपना पवित्र कर्तव्य समझता है। जब इस प्रकार मनुष्य समाज के कानूनों का ईमानदारी से पालन कर लेता है तभी वह यह निर्णय करने की स्थिति में हो सकता है कि कौन-सा कानून अच्छा और न्यायोचित है और कौन-सा अन्यायपूर्ण तथा अनुचित। तभी उसे कुछ कानूनों की सुनिश्चित परिस्थितियों में सविनय अवज्ञा करने का अधिकार प्राप्त हो सकता है।" महात्मा गांधी अपने को स्वभाव से कानूनों का पालन करने वाला मानते थे। जब मनुष्य राज्य के नागरिक तथा नैतिक कानूनों का पालन करके अनुशासन सीख ले तभी उसमें सविनय प्रतिरोध की क्षमता उत्पन्न हो सकती है। सरकार के कानूनों का प्रतिरोध करते समय सत्याग्रही को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सामाजिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न न होने लगे।

गांधीजी ने सत्याग्रही के लिए नैतिक अनुशासन के कठोर नियम निर्धारित किये-जैसे उसे ईश्वर में अटल विश्वास होना चाहिए अन्यथा वह शरीर के साथ उच्च हिंसक शक्ति धारण करने वाले अधिकारियों द्वारा किये गये अत्याचारों को शान्तिपूर्वक सहन नहीं कर सकेगा। उसे धन तथा यश की

लालसा नहीं होनी चाहिए। उसे सत्याग्रही जत्थे के नेता के आदेशों का पालन करना चाहिए। उसका कर्तव्य है कि वह अपने शरीर को व्यायाम आदि क्रियाओं द्वारा बलिष्ठ बनाने का प्रयत्न करे। उसे चाहिए कि वह ब्रह्मचर्य का पालन करे, पूर्णतः निर्भीक तथा दृढ़-संकल्पी हो। उसके लिए आवश्यक है कि वह धैर्यवान हो, अपने उद्देश्य में अनन्य निष्ठा रखता हो और क्रोध अथवा अन्य किसी मनोविकार के वशीभूत होकर अपने कर्तव्य-मार्ग से विचलित न हो। सत्याग्रह का प्रयोग कभी निजी लाभ के लिए नहीं किया जा सकता। वह तो 'प्रेम की क्रिया' है इसलिए उसका उद्देश्य हृदय को प्रभावित करना होता है न कि अनाचारी में भय उत्पन्न करना। अतः सत्याग्रह का आधार वैयक्तिक शुद्धीकरण है। इस प्रकार गांधीजी ने चरित्र की शुद्धता को राजनीतिक शक्ति की कसौटी बतलाकर राजनीतिक चिन्तन में महत्वपूर्ण योग दिया है। उनके अनुसार न्याय तथा धर्म का पक्ष-पोषण करने के लिए शुद्ध साधनों का प्रयोग करना आवश्यक है। प्लेटो ने भी राज्य के संरक्षकों के लिए शारीरिक शिक्षा तथा गणित और तर्कशास्त्र की शिक्षा का विधान किया था। किन्तु गांधी ने ब्रह्मचर्य पर बल दिया और इस प्रकार प्लेटो से भी आगे बढ़ गये। यह सत्य है कि गांधी विज्ञान तथा दर्शन की व्यापक बौद्धिक शिक्षा को महत्त्व नहीं देते थे। जहाँ तक सत्याग्रही की बौद्धिक शिक्षा का सम्बन्ध है वे भगवद्गीता तथा तुलसीकृत रामायण से सन्तुष्ट हो जायेंगे। सत्याग्रही के लिए पाण्डित्य की आवश्यकता नहीं है, उसका हृदय मजबूत होना चाहिए और यह श्रद्धा तथा कष्ट-सहन से ही उपलब्ध हो सकता है।

गांधी को आत्मा की श्रेष्ठता में विश्वास था। वे कभी ऐसे किसी कानून के सामने समर्पण करने की अनुमति नहीं दे सकते थे जो मनुष्य की नैतिक गरिमा के प्रतिकूल होता। आत्मा अथवा अन्तःकरण की आवाज सर्वोपरि है। यदि राज्य के कानून तथा आदेश मनुष्य की उच्चतर कर्तव्य की भावना से टकराते हों तो उनका प्रतिरोध करना आवश्यक है। यह कहना सही नहीं है कि गांधीजी लोकतान्त्रिक शासन-प्रणाली के अन्तर्गत सत्याग्रह की अनुमति नहीं देते। गांधीजी को संसदीय लोकतन्त्र के रुपों से विशेष लगाव नहीं था। उनका दृष्टिकोण लॉक से भिन्न था। वे लॉक की भाँति संसद द्वारा व्यक्त बहुसंख्यकों की इच्छा की श्रेष्ठता को स्वयंसिद्ध नहीं मानते थे। उनकी दृष्टि से सत्य के नियमों के अनुसार जीवन बिताना आधारभूत समस्या थी। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में अनेक ऐसे अवसर आये जब गांधीजी अकेले रह गये तो भी उन्होंने अनुचित व्यवस्था का विरोध किया तथा कहा कि "पाप से असहयोग करना पवित्र कर्तव्य है।" (स्त्रोत 3)इस प्रकार सत्याग्रह की नैतिकता संख्यामूलक लोकतन्त्र की नैतिकता की पर्यायवाची नहीं है। सत्याग्रह का उसमें सम्मिलित होने वालों की संख्या से कोई सम्बन्ध नहीं है। लोकतन्त्र हर प्रकार के आवेशों, पूर्वाग्रहों, तुच्छ विचारों और आकांक्षाओं से प्रभावित हो सकता है। किन्तु सत्य का पुजारी इन सब बातों को स्वीकार नहीं करेगा। उसे केवल चार-पाँच वर्ष में एक बार विधानमण्डलों के सदस्यों में परिवर्तन करके सन्तोष नहीं हो सकता। वह लोकमत को बदलने का अवश्य प्रयत्न करेगा। गांधी की शिक्षाओं के अनुसार सत्याग्रह वह शाश्वत कानून है जो आत्मा को अप्रिय लगने वाली हर वस्तु का विरोध करता है। सत्य तथा अन्तःकरण का अनुयायी पूर्णतः अकेला होने पर भी प्रतिनिधि विधानमण्डलों के उन कानूनों का विरोध करेगा जो आत्मा के नियमों के विरुद्ध हैं। सच्चा सत्याग्रही सत्य की खातिर हर जोखिम उठाने के लिए तैयार रहेगा।

गांधी का सत्याग्रह सम्बन्धी दर्शन समाजशास्त्र प्रतिरोध के सिद्धान्त का आध्यात्मीकृत रुप है। जॉन काल्विन ने निम्न श्रेणी के अधिकारियों को राजा का प्रतिरोध करने का अधिकार दिया। थोरो सविनय अवज्ञा का महान् समर्थक था। स्वदेशी आन्दोलन के दिनों में तिलक, अरविन्द तथा अतिवादी सम्प्रदाय ने निष्क्रिय प्रतिरोध का समर्थन किया। कभी-कभी भ्रमवश मान लिया जाता है कि गांधीजी का सत्याग्रह लोगों के निष्क्रिय प्रतिरोध का ही एक रुप था। किन्तु उन दोनों के बीच महत्वपूर्ण अन्तर है। सर्वप्रथम, सत्याग्रह एक गतिमान शक्ति है क्योंकि उसमें अन्याय के विरुद्ध संघर्ष के रुप में कर्म पर बल दिया गया है। निष्क्रिय प्रतिरोध में शत्रु के विरुद्ध आन्तरिक हिंसा को अनुचित नहीं माना जाता, किन्तु सत्याग्रह में मन को निरन्तर शुद्ध करते रहना आवश्यक है। सत्याग्रह में आन्तरिक शुद्धता पर बल है। निष्क्रिय प्रतिरोध का प्रयोग केवल राजनीतिक स्तर पर किया जा सकता है। सत्याग्रह का प्रयोग हम पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि सभी स्तरों पर कर सकते हैं। सत्याग्रह इस अर्थ में निष्क्रिय प्रतिरोध से श्रेष्ठ है कि उसमें आध्यात्मिक तथा नैतिक उद्देश्य को ही अन्तिम साध्य माना जाता है और सत्याग्रही की अन्तिम आशा तथा सान्त्वना ईश्वर ही है। गांधीजी की तरह तिलक और अरविन्द ने नैतिक आधार पर हिंसा का खण्डन नहीं किया। गांधीजी निरपेक्ष अहिंसा पर बल देते थे। 1906-1908 का स्वदेशीयुगीन निष्क्रिय प्रतिरोध केवल एक राजनीतिक कार्यप्रणाली था और उसका क्षेत्र सीमित था। कभी-कभी उसका अर्थ केवल स्वदेशी तथा बहिष्कार था और कभी-कभी उसका प्रसार करके अन्यायपूर्ण कानूनों तथा अध्यादेशों को भी उसके अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया जाता था। गांधीजी का सत्याग्रह जीवन तथा राजनीति का दर्शन है और उसके अन्तर्गत सामूहिक कार्यवाही के द्वारा निरंकुश सरकार की सम्पूर्ण व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने की कल्पना की जाती है।

यह सत्य है कि गांधीजी तथा ब्रिटिश उदारवादियों के विचारों में कुछ साम्य है, विशेषकर इस रुप में कि राज्य के कार्यक्षेत्र के सम्बन्ध में दोनों का दृष्टिकोण शत्रुतापूर्ण है। किन्तु दोनों विचारधाराएँ भिन्न परम्पराओं से उत्पन्न हुई हैं। राज्य का विरोध करने में गांधीजी किसी भी ब्रिटिश उदारवादी से कहीं अधिक उग्र तथा कटु थे। ब्रिटिश उदारवादियों का बौद्धिक पोषण प्लेटो तथा अरस्तू की दार्शनिक परम्पराओं से हुआ था, इसलिए वे स्वभावतः राज्य के उतने कट्टर विरोधी नहीं हो सकते थे जितने गांधीजी थे। गांधीजी तत्वतः एक नैतिक सन्देशवाहक थे जिन्होंने शक्ति, बल तथा हिंसा के हर संगठित रुप के विरुद्ध प्रतिरोध की स्पष्ट घोषणा कर रखी थी। गांधीजी पर एक ओर तो प्राचीन भारत के संन्यासियों तथा भिक्षुओं की परम्परागत व्यक्तिवादी भावना का प्रभाव देखने को मिलता है, और दूसरी ओर उन पर थोरो के व्यक्तिवाद और टॉल्सटॉय के राज्य-विरोधवाद का स्पष्ट प्रभाव है। गांधीजी नैतिक अन्तः करण के महान् समर्थक थे। गांधीजी और ग्रीन के विचारों में भी कुछ समानताएँ हैं। उदाहरण के लिए दोनों ही एक आधारभूत आध्यात्मिक अनन्तता की सत्ता में विश्वास करते थे, दोनों ही मानव स्वभाव की पूर्णता को आवश्यक मानते थे और दोनों ही कुछ परिस्थितियों में राज्य के प्रति प्रतिरोध को उचित समझते थे।

गांधीजी का राष्ट्रवाद के आदर्श के साथ गहरा अनुराग था। किन्तु वे अन्तरराष्ट्रवादी भी थे। उनका कहना था कि अन्तर्राष्ट्रवाद के आदर्श को साकार करने से पहले उन देशों को अपने भविष्य का निर्णय करने के लिए राजनीतिक स्वाधीनता मिलनी चाहिए जो सामन्ती आधिपत्य और औपनिवेशिक पराधीनता के अन्तर्गत पड़े कष्ट भोग रहे हैं। वे राष्ट्रवाद को अन्तरराष्ट्रवाद की एक अवस्था मानते थे। उनका कहना था कि जो घटक अन्तरराष्ट्रीय संघ स्थापित करना चाहें वे अपनी स्वतन्त्र इच्छा से ऐसा करें। इसका अर्थ है कि पहले उन्हें राष्ट्रीय प्रभुत्व उपलब्ध होना चाहिए। किन्तु उनके अनुसार राष्ट्रवाद राजनीतिक

विकास की चरम अवस्था नहीं हो सकता। वह साध्य नहीं है, एक बीच की अवस्था है। अरविन्द की भाँति गांधीजी ने स्वीकार किया कि राष्ट्रवाद अन्तरराष्ट्रवाद के मार्ग में एक आवश्यक कदम है। यद्यपि गांधीजी ने विश्व संघ की अवधारणा का प्रतिपादन नहीं किया फिर भी वे उसे स्वीकार करने के लिए तैयार थे; शर्त यह थी कि उनका निर्माण तत्वतः अहिंसा के आधार पर होना चाहिए। वे इस बात से सहमत थे कि जब तक अहिंसा में विश्वास राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्धों में शक्तिशाली तत्व का काम नहीं करने लगता तब तक व्यवस्था कायम रखने के लिए एक विश्व पुलिस दल की स्थापना की जा सकती है।

गांधीजी ने अपने राजनीतिक दर्शन में राज्य के तत्कालीन उन्मूलन पर बल नहीं दिया लेकिन एक व्यवहारिक आदर्शवादी होने के कारण राज्य को केवल एक साधन माना क्योंकि राज्य ही समाज की स्थापना का एक ऐसा आदर्श है जिसकी प्राप्ति अत्यंत कठिन है। उन्होंने विकेन्द्रीकृत ग्राम-राज्य के रूप में राजनीतिक व्यवस्था का उप आदर्श प्रतिपादित किया। गांधीजी यह स्वीकार करते थे कि व्यक्तियों के आचरण में किसी न किसी रूप में हिंसा के विद्यमान रहने के कारण एक सीमा तक बल-प्रयोग की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता, किन्तु अहिंसक लोकतन्त्र में बल प्रयोग को न्यूनतम किया जायेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

- हरिजन, मई 18, 1940।
- यंग इण्डिया, अगस्त 12, 1920
- हरिजन, मई 18, 1940
- हरिजन, सितम्बर 21, 1947
- यंग इण्डिया, 27 मार्च, 1930
- हिन्द स्वराज, पृष्ठ 16
- कलैक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, खण्ड-76, पृष्ठ 437
- यंग इण्डिया, जनवरी 5, 1922
- वही, जुलाई 16, 1920।
- वही, भाग 5, अध्याय 33, "A Himalayan Miscalulations"
- मनीबेन पटेल को लिखा गया पत्र, अप्रैल 27, 1945
- नारायण दास गांधी को लिखा गया पत्र, 3 अगस्त, 1930
- देखिए, के. जी. मशरुवाला, 'गांधी-विचार दोहन' (हिन्दी), पृष्ठ 70।
- वी.पी. वर्मा, दी पॉलिटिकल फिलॉसफी ऑफ महात्मा गांधी एण्ड सर्वोदय, पृष्ठ 104
- एम. के. गांधी, सत्याग्रह, पृष्ठ 347।
- यंग इण्डिया, अगस्त 4, 1921।
- यंग इण्डिया, अगस्त 1928
- कलैक्टेड वर्क्स ऑन महात्मा गांधी, खण्ड 16, पृष्ठ 509
- कलैक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, खण्ड-72, पृष्ठ 60

***

गांधी और सत्य

[44]डॉ. सीमा सिंह

गांधी एक व्यक्ति ही नहीं बल्कि एक विचारधारा भी हैं। व्यक्ति मर सकता है परंतु विचार को कोई नहीं मार सकता। सत्य के मार्ग को भले ही कठिन कहा जाता है लेकिन सत्य से सरल मार्ग कोई हो भी नहीं सकता। इसमें कुछ याद करने या भूलने की जरूरत नहीं पड़ती। सब कुछ प्रत्यक्षदर्शी होता है। पृथ्वी सत्य पर टिकी हुई है। सृष्टि का नियम अटल है इससे बड़ा सत्य कुछ नहीं है। सत्य का यह नियम है कि जो वस्तु जिस साधन से जन्मी है उसी साधन से उसकी सुरक्षा भी है। सत्य हमेशा ही टिका रहता है। कबीरदास की एक पंक्ति है-"लेखा देणां सोहरा, जे दिल सांचा होई, उस चंगे दीवान में, पला न पकड़ै कोइ।" जिसका अर्थ है अगर दिल सच्चा है तो लेना देना सब आसान हो जायेगा। दिक्कत तो झूठे हिसाब-किताब रखने वालों को उठानी पड़ती है। भगवान के दरबार में पहुंचने पर कोई तेरा पल्ला नहीं पकड़ेगा क्योंकि उस समय सब कुछ साफ साफ दिखाई देगा। गांधी का संपूर्ण जीवन सत्य का दर्शन है। सत्य को जानने से पहले यह जानना आवश्यक है कि हम कौन हैं, कहां से और क्यों आयें हैं। हम कौन हैं, कहां से आयें का जवाब सत्य हो सकता है। गांधी के संपूर्ण जीवन में उनका सत्य दर्शन दिखाई देता है। उनके सत्य दर्शन को समझने के लिए पहले सत्य को समझना जरूरी है। सत्य की सुरक्षा केवल और केवल सत्य से ही संभव है। गांधी के लिए सत्य धर्म और हिन्दू धर्म दो अलग धर्म नहीं है बल्कि यह पर्यायवाची शब्द है। उनका मानना है कि हिन्दू धर्म में अगर असत्य का कुछ भी अंश नजर आता है तो उसे वो धर्म नहीं मान सकते। गांधी का यकीन इतना पक्का है कि वह यकीन को बचाए रखने के लिए यदि सभी हिन्दू जाति उनका त्याग कर दे और उन्हें अकेला रहना पड़े तो भी वह तैयार हैं। क्योंकि गांधी कभी भी अकेले नहीं रह सकते। उनके साथ हमेशा ही सत्य परमात्मा की तरह उनके साथ रहता है।

हिन्दी में हमने काव्य की आत्मा के बारे में पढ़ा था। काव्य की आत्मा क्या है? काव्य की आत्मा को हम मनुष्य की देह से समझने का प्रयास करते हैं। इसमें देह और व्यक्तित्व को हम देख सकते हैं जिसे हम पूर्ण मनुष्य कहते हैं वो मनुष्य के भीतर की आत्मा और देह से मिलकर बना है। जिसे टी.वी और मोबाइल के माध्यम से समझा जा सकता है। टीवी और मोबाइल का हार्डवेयर इनकी देह है और सोफ्टवेयर इनकी आत्मा है। जब भी हम कहते हैं मेरी देह, मेरा शरीर यह सब क्या है। कहने वाला व्यक्ति जो मैं और मेरी जिसको कह रहा है या माय बॉडी कह रहा है वह केवल शरीर तो नहीं हो सकता है। शरीर से जुड़ी सभी चीजें तो नष्ट हो जाती हैं। मूल जो बचता है वही आत्मा है। मैं कोई और नहीं है वह आत्मा ही है। हमें जन्म देने वाले हमारे माता और पिता हैं। ये पूरा संसार चलाने वाले, सूरज चमकता, पेड़ पौधे बागों में ही कहीं भी चले जाओ जहां इंसान नाम की जीव नहीं है वहां भी यह दिख जायेंगे। वहां नदी, पहाड़ और ऊपर आकाश सब नजर आ जायेंगे। ऊपर धरती है नीचे पानी है और उसके

[44] दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

ऊपर हम रह रहे हैं यह अचम्भे की बात नहीं है? प्रश्न यह है कि यह सब संचालित कौन कर रहा है। इसे हम सुपर पावर या परमशक्ति मान सकते हैं। हवा चल रही है हमें दिखायी नहीं देती, फूल में खुशबू है हम महसूस कर सकते हैं मगर देख नहीं सकते। उस परमशक्ति ने ही यह सारा कुछ गढ़ा है। परमशक्ति ने इंसान को दिल, दिमाग दिया है। इंसान ही ऐसा जीव है पूरे अस्तित्व में, सभी पशु पक्षियों में, जो अपनी बुद्धि के बल पर श्रेष्ठतम कृति है। अपनी बुद्धि के माध्यम से ही अपने लिए रास्ता चुनता है। वह देवत्व की तरफ भी जा सकता है और पशुत्व की तरफ भी जा सकता है। इसको ऐसे समझा जा सकता है "जो प्रजा स्वतंत्रता चाहती है उसके पास अपनी रक्षा का अंतिम इलाज अवश्य होना चाहिए। आमतौर पर ऐसे इलाज हिंसात्मक होते हैं, परन्तु सत्याग्रह शुद्ध अहिंसात्मक शस्त्र है।" इसके सकारात्मक मार्ग में हम गांधी के सत्य, अहिंसा, आत्मनिर्भरता, स्वावलंबन को देख सकते हैं। इसका नकारात्मक पक्ष है-हिंसा, गुस्सा, ईर्ष्या आदि। इसांन के नाम पर हमने जाति बना ली। अपने पराये का बटंवारा कर लिया। अहं में मैं कहने की भावना से हमने आदमी के नाम पर सभी को टुकडों में बांट दिया है। गांधी प्रेक्टिस करते हुए दक्षिण अफ्रीका जब गये थे वहां पर जिस तरह की गैरबराबरी जुल्म उन्होंने देखा उसे देखकर उन्हें लगा हमें इस समय अपने लोगों के साथ इकट्ठा होकर अहिंसा, सत्य पर चलने का संकल्प लेना चाहिए। "सत्याग्रह सेनापति के शब्द में ताकत होनी चाहिए-वह ताकत नहीं जो असीमित अस्त्र-शस्त्रों से प्राप्त होती है बल्कि वह जो जीवन की शुद्धता, दृढ़ जागरूकता और सतत आचरण से प्राप्त होती है। यह ब्रह्मचर्य का पालन किये बगैर असंभव है। इसका इतना सम्पूर्ण होना आवश्यक है जितना कि मनुष्य के लिए संभव है। ब्रह्मचर्य का अर्थ यहां खाली दैहिक आत्म-संयम या निग्रह ही नहीं है। इसका तो इससे कहीं अधिक अर्थ है। इसका मतलब है सभी इन्द्रियों पर पूर्ण नियमन। इसका प्रकार अशुद्ध विचार भी ब्रह्मचर्य का भंग है और यही हाल क्रोध का है। सारी शक्ति उस वीर्य शक्ति की रक्षा और ऊर्ध्व गति से प्राप्त होती है जिससे कि जीवन का निर्माण होता है। अगर इस वीर्य शक्ति को नष्ट होने देने के बजाय संचय किया जाए तो यह सर्वोत्तम सृजन शक्ति के रूप में परिणत हो जाती है। बुरे या अस्त-व्यस्त, अव्यवस्थित, अवांछनीय विचारों से भी इस शक्ति का बराबर और अज्ञात रूप से भी क्षय होता रहता है और चूंकि विचार ही सारी वाणी और क्रियाओं का मूल होता है, इसलिए वे भी इसी का अनुसरण करती है। इसीलिए पूर्णतः नियंत्रित विचार खुद ही सर्वोच्च प्रकार की शक्ति है और स्वतः क्रियाशील बन सकता है। मूक रूप में की जाने वाली हार्दिक प्रार्थना का मुझे तो यही अर्थ मालूम पड़ता है। अगर मनुष्य ईश्वर की मूर्ति का उपासक है तो उसे अपने मर्यादित क्षेत्र के अंदर किसी बात की इच्छा-भर करने की देर है, जैसा वह चाहता है-वैसा ही वह बन जाता है। जिस तरह चूने वाले नल में भाप रखने से कोई शक्ति पैदा नहीं होती, उसी प्रकार जो अपनी शक्ति का किसी भी रूप में क्षय होने देता है, उसमें इस शक्ति का होना असंभव है।"

गांधी ने अपनी आत्मकथा को 'सत्य के प्रयोग' नाम दिया है। सत्य अच्छा या बुरा नहीं हो सकता है। वह केवल सत्य है बस। मनुष्य अपने भीतर की निर्मलता को डर के कारण अक्सर ही खो देता है। गांधी अपने बचपन की दिनों में एक बार अपने कुछ साथियों के साथ मंदिर में गये थे। वहां भगवान की मूर्तियों को छेड़ते हुए एक पुजारी उन्हें देख लेता है। डर से सभी साथी कह देते हैं हम लोग तो मंदिर में

खेलने गए थे। पुजारी बेकार हमारे पीछे पड़ गया है। लेकिन गांधी उस झूठ का हिस्सा नहीं बन सके। उन्होंने सब कुछ सच सच अपने पिता को बता दिया कि वो सभी सोने का कड़ा बेचने की फिराक में थे। यही सच का रास्ता है। जब तक यह बात उन्होंने पिता के सामने स्वीकार नहीं किया उन्हें शांति नहीं मिली। सत्य ही शांति का मार्ग है। खुद के सामने भी यदि व्यक्ति सच्चा रहा तो वह बेचैन नहीं हो सकता। सत्य को स्वीकार करने वाला मैला नहीं हो सकता। जो व्यक्ति छोटी-छोटी बातों में सच्चाई को गंभीरता से नहीं लेता उस पर बड़ी बातों में भी विश्वास नहीं किया जा सकता। कहा भी गया है तीन चीजें कभी छुप नहीं सकती 'सूरज, चन्द्रमा और सत्य'। उन्हें कितनी ही कोठरियों में बंद करके रख दिया जाये वो अपनी चमक पहुंचाकर ही मानेगी। आखिर जो जैसा है वह वैसा ही क्यों नहीं रह सकता। "राम नाम उन लोगों के लिए नहीं है, जो ईश्वर को हर तरह से फुसलाना चाहते हैं। गांधी जी का पूरा जीवन सत्य से सत्याग्रह तक की महागाथा ही है। अपने जीवन में उन्होंने सत्य के अनेक प्रयोग किए, दक्षिण अफ्रीका तक आते हुए उसे सत्याग्रह का रूप दिया एवं चंपारन पहुंचकर उस सत्य की अन्विति हुई।

"जहां सत्याग्रह की शिक्षा मिले, वहां राजा का जुल्म उसकी तलवार की नोक के आगे नहीं जा सकता, क्योंकि सच्चे आदमी अन्यायी हुक्म की जरा भी परवाह नहीं करते। किसान कभी तलवार के वश नहीं हुए और न होंगे ही। उन्हें न तो तलवार चलाना आता है और न दूसरों के तलवार चलाने से वे डरते हैं। सचमुच वह बड़ा महान राष्ट्र है जहां के लोग इस तरह मौत के तकिये पर अपना सिर टेकते हैं। जिसने मौत का डर छोड़ दिया उसे फिर कोई भय नहीं रहता..... जब राजा जुल्म करता है तभी प्रजा नाराज होकर उसका साथ छोड़ देती है। यही सत्याग्रह है।" सत्य को देखा और समझा जाये तो सत्य क्या है- सत्य ईश्वर है वह परमशक्ति है। उस परम शक्ति को हम देख तो नहीं सकते लेकिन हम देखते हैं कि यह सारा जगत एक रीति या नियम के धरातल पर चल रहा है। सूरज अपने नियत समय पर आता है। धरती अपनी गति से चल रही है। जीवन हमें सूरज से ही उपलब्ध हो रहा है। शक्ति हमें प्रकृति से ही मिल रही है। हमारा यह शरीर पंच तत्वों से निर्मित हुआ है। अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, और आकाश। यह सभी पंचतत्व नश्वर है। जो अनश्वर है वही वह परमशक्ति है। आत्मा को न तो मारा जा सकता है, न काटा जा सकता है, न उसका जन्म हो सकता है न ही मृत्यु। इस बात को एक गाड़ी से समझ सकते हैं। टीन का डिब्बा, पेट्रोल की टंकी आदि तो मशीनरी है, गाड़ी की देह है। जो उसको संचालित करता है वह ही उसकी आत्मा है। गाड़ी का संचालक यदि निकल जायेगा तो वह गाड़ी चल नहीं सकती है। उस संचालक का, परमशक्ति का गुण क्या है? उसे क्या कहा जायेगा? जिसको हमने कहा ईश्वर सत्य है और जब सत्य ही परमेश्वर है तो धर्म में असत्य का स्थान नहीं हो सकता। पृथ्वी सत्य के बल पर टिकी हुई है। 'असत्य' असत के मानी हैं 'नहीं'। 'सत' सत्य अर्थात् 'है'। जहां असत्य अर्थात् अस्तित्व ही नहीं, उसकी सफलता कैसे हो सकती है और जो सत्य अर्थात् 'है' उसका नाश कौन कर सकता है? बस इसी में सत्याग्रह का समस्त शास्त्र समाविष्ट है। ये पंक्तियां ही गांधी के जीवन का सार है।

हमने बहुत बार एक शब्द सुना है सत्यम, शिवम और आखिर यह हम कैसे कह देते हैं। ये उसी परमशक्ति के गुण है जो सत्य है और शिवम से युक्त है। मतलब कहीं भी अकल्याण का भाव नहीं होगा। क्रोध अक्सर ही सच्चाई को बाधित करता है। जैसे जो सूरज है वह सभी को रोशनी और धूप देगा।

पानी बरसेगा तो वह सबके लिए आयेगा। जो नदी बहती है वह सबके लिए पानी उपलब्ध करायेगी। सत्य पर वही व्यक्ति चल सकता है जो कि शूर होगा। गांधी ने भी सत्य के मार्ग को शूरों का मार्ग माना है जिसमें कायर लोगों का कोई स्थान नहीं है। इस सत्य को गांधी ने दिन प्रतिदिन अपने करीब होता महसूस किया है। अपने कल्याण के लिए यदि कोई भी व्यक्ति सजग है तो उसे सत्य के करीब होगा। सत्य अपने और दूसरे के प्रति कल्याण की पहली सीढ़ी है। बिना डरे, अविचल हुए उसमें श्रद्धा रखनी होगी। उस परमशक्ति का अंश आत्मा है। इंसान जब अपने मूल रूप में होगा तो वह परमात्मा के करीब होगा। ईश्वर अंश और जीव अविनाशी ईश्वर का पूर्ण अंश है। पानी चाहे लोटे में हो या सागर में पानी का गुण वहीं है। वह पानी मेरे भीतर या किसी और के भीतर हो सकता है। यदि आप सच बोलते हैं तो आपको कुछ याद रखने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। जब भी व्यक्ति संदेह में हो वह सत्य बोल दें संदेह अपने आप दूर हो जायेगा।

"सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।

जिस हिरदे में सांच है, ता हिरदै हरि आप। ।

इंसान ने नकारात्मक गुणों के कारण आत्मा के मूल गुण पर न जाने कौन सा आवरण चढ़ा लिया है। पारदर्शी चीजों पर काम, मद, मोह क्रोध इत्यादि की धूल डाल दी है, आपाधापी में ईष्या में गुस्से में। इससे हम जस का तस करने पर हमेशा ही तैयार रहते हैं। मन बुद्धि और संस्कार की पूंजी यदि समाप्त भी हो जायेगी तो जो रिकॉर्डिंग हमने कर रखी आत्मा वो रिकॉर्डिंग लेकर जायेगी। हमारे अंतःकरण को जो भी जिस भी समय जो भी प्रतीत होता है वह ही परमसत्य है। उस पर हम जितने दृढ़ होंगे सत्य भी उतना ही शुद्ध और निर्मल होगा लेकिन निर्मल अंतः करण क्या सहज सुलभ है। जो अस्तित्व को संभाल सके वैसा ही सृदृढ़ आधार चाहिए। सुदृढ़ नीव पर ही सुदृढ़ भवन खड़ा किया जा सकता है। यही कारण तो नहीं था कि गांधी ने सत्य की प्राप्ति के लिए अंहिसा को अनिवार्य नहीं माना था? सत्य का संपूर्ण दर्शन अहिंसा बिना असंभव है। सत्य साध्य है, अहिंसा साधन। कई बार कोई गलत कार्य करते समय आत्मा से आवाज आती है ये न करें लेकिन हमने इतने लाबादे ओढ़ लिए हैं कि आत्मा की आवाज को अनसुना कर देते हैं।

सत्याग्रह आजादी की लड़ाई में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। 'सत्याग्रह' का अर्थ है सत्य पर नैतिक दबाव बनाना। गांधी के अनुसार अहिंसा का मार्ग अपनाते हुए हमेशा सत्य को आगे रखना और वचन और अपने कर्मों के द्वारा वैसा ही आचरण करना सत्याग्रह कहलाता है। गांधी ने इस सत्य के आग्रह को अपनाया और संपूर्ण देश में उसे अमल भी करवाया। "सत्याग्रह की यही खूबी है। वह खुद हमारे पास चला आता है। उसे हमें खोजने नहीं जाना पड़ता। यह गुण उसके सिद्धांत में ही समाया हुआ है। जिसमें कोई बात छिपाई नहीं जाती, किसी तरह की चालाकी नहीं रहती और जिसमें असत्य की तो गुंजाइश ही नहीं, ऐसा धर्म-युद्ध अनायास ही आता है और धर्मनिष्ठ मनुष्य उसके स्वागत के लिए हमेशा तैयार रहता है। पहले से जिसकी रचना करनी पड़े वह धर्मयुद्ध नहीं। उसकी रचना और संचालन करने वाला तो ईश्वर है। वह युद्ध ईश्वर के ही नाम पर चल सकता है, और जब सत्यागाही की बुनियाद ढहने लगती है तो वह बिलकुल निर्बल हो जाता है। चारों ओर अंधेरा छा जाता है तभी ईश्वर उसकी सहायता

करता है। मनुष्य जब अपने को एक रजकण से भी छोटा मानता है तब ईश्वर उसकी मदद करता है। निर्बल को ही राम बल देता है।"

गांधी को समझने उनके सत्याग्रह को जानना आवश्यक है। यह की अन्विति को चंपारन से जाना जायेगा। "भारत की राजनीति ने चंपारन के साथ साथ गांधी जी को पहचाना और गांधी जी ने चंपारन आंदोलन द्वारा राजनीति को मंचों और प्रस्तावों से उठाकर व्यवहारिकता की कसौटी पर लाकर खड़ा कर दिया।" जो भी व्यक्ति विदेश से वापस स्वदेश आता है वह आते समय तमाम सामान भर कर लाता है लेकिन गांधी के पास ऐसे सामान की जगह एक विशाल अनुभव से भरा हुआ कोश था। गांधी के जीवन में दक्षिण अफ्रीका बहुत बड़ी भूमिका निभाता है। गांधी, दक्षिण अफ्रीका और चंपारन को जोड़कर ही गांधी दर्शन को समझा जा सकता है। चंपारन में गांधी ने सत्याग्रह का जो अलख जगाया वह इतिहास के पन्नों पर ऐसी अमिट छाप दे चुका है जिसपर जितना कहा जाये उतना ही कम है।

आज कथनी और करनी में बहुत अंतर आ चुका है। कथनी-करनी में बस कथनी ही शेष रह गया है। कहना तो सभी जानते हैं, सलाह भी देंगे, भाषण भी देंगे परन्तु उसे क्रियांवित ना के बराबर ही करेंगे। गांधी इसी मायने में अलग थे। सत्य को न सिर्फ जाना, समझा बल्कि अपने जीवन में उसे उतारा भी। सत्य से अहिंसा के मार्ग को हथियार बनाकर आजादी की लड़ाई में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। आज के समय में भले ही दिखावे के लिए ही सही परन्तु गांधी पर बातचीत हो रही है उस पर सेमिनार का आयोजन हो रहा है, किताबें छप रही है, दुनिया भर में गांधी के विचारों को पहुंचाया जा रहा है। उन्हें मजलूमों का मसीहा बनाकर प्रस्तुत किया जा रहा है। यहीं गाधीवादी विचारधारा है जो विपरीत परिस्थिति में भी कार्य करती है। गांधी के विचारों को अपनाकर कई राजनीतिक परिवर्तन हमें देखने को मिलते हैं। गांधी के सत्य और अहिंसा मार्ग की ही ताकत हैं कि कहीं भी किसी राजभवन या राजनीतिक कार्यालयों के आसपास आपको धरना करने वाले, नारे बाजी करने वाले सामान्य लोग नजर आ जायेंगे। गांधी हमारे लिए आज बहुत आवश्यक हैं। गाधी ने अपनी पुस्तक हिन्द स्वराज में बताया है कि आखिर हम कैसे गुलाम हुए और उस गुलामी से निकलने का मार्ग क्या हो सकता है। उन्होंने इस गुलामी से निकलने का एकमात्र रास्ता सत्य और अहिंसा के मार्ग को बताया।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1.गांधी विचार यात्रा, संकलन-संपादन पं. रामनारायण उपाध्याय, भारतीय प्रकाशन संस्थान, दरियागंज, नयी दिल्ली

2.सत्य के प्रयोग, गांधी, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली

3. Mahatma Gandhi Autobiography : The Story of My Experiments with Truth, originally published 1927, author Mahatma Gandhi, translated Mahadev Desai 4

4. Hind Swaraj or Indian Home Rule, by Mahatma Gandhi, 1909]

5. India of my dreams, Mohandas Karamchand Gandhi

***

गांधी दर्शनः वर्तमान दौर में प्रासंगिकता

आदित्य अंशु[45]

महात्मा गांधी को पूरा विश्व उनके अहिंसावादी आंदोलनों के लिए जानता है। उस समय की महा शाक्ति कही जाने वाली ब्रिटिश शासन को घुटने टेकने पर विवश कर दिया। बिना किसी हथियार या मार काट के। आज सारा विश्व उनके जन्मदिन 2 अक्टूबर को विश्व अहिंसा दिवस के रुप में मनाता है।

गांधी जी ने अपना जीवन सत्य की व्यापक खोज में समर्पित कर दिया। उन्होनें इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए स्वयं की गलतियों से और खुद पर प्रयोग करते हुए सीखने की कोशिश की। इसीलिए उन्होने अपनी आत्मकथा को 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' का नाम दिया।

गांधी जी का मानना था कि सबसे महत्वपूर्ण लड़ाई लड़ने के लिए अपने अंदर व्याप्त भय, असुरक्षा, निराशा जैसे तत्वों पर विजय प्राप्त करनी होगी। गांधी जी ने कहा था ईवर ही सत्य जानता है और अपनी तपस्या से उन्होने इस कथन को सत्य ही ईश्वर है में रुपांतरित कर दिया।

गांधी जी ने किसी नए दर्शन की रचना तो नहीं की अपितु जो उनके विचारों का दार्शनिक आधार है, वही गांधी दर्शन है। वे ऐसे देश में पैदा हुए जिसने चैतन्य आत्मा की अक्षुण्ण और अमर सता स्वीकार की है। और सारी सृष्टि की प्रक्रिया को भी सप्रयोजन स्वीकार करता है। गांधी जी ने अपने दर्शन के बारे में कोई व्याख्या या उसकी गढ़ता के विषय कही व्यवस्थित रुप में लिखा नहीं है, पर जब हम उनके विचारों का अध्ययन करते है तो उनके दर्शन का आभास मिलता है। उनके अनुसार जीवन का निर्माण और जगत की रचना शुभ और अशुभ जड़ और चेतन को लेकर हुई है। इस रचना का प्रयोजन यह है कि असत्य पर सत्य की और अशुभ पर शुभ की जीत हो।

उनका दर्शन एक प्रकार से मानव समाज और जगत का नैतिक चश्मा है। इसी से ही उनके अहिंसावादी सोच का प्रादुर्भाव हुआ। हालांकि भारत भूमि पर अहिंसा कोई नया दर्शन नहीं है, भारतीय संस्कृति और अहिंसा एक दूसरे के पूरक हैं, ऐसा कहना गलत ना होगा। यह भूमि बुद्ध महावीर, विवेकानन्द, गुरुनानक की है, आदिकाल से संत और महात्मा अहिंसा का प्रयोग करते आ रहे हैं। वह मानते है कि जगत में जो कुछ अनैतिक है वह सब हिंसा है। स्वार्थ, दंभ, लोलुपता, अहंकार भोग की प्रवृत्ति आदि उनकी दृष्टि में वो पशुभव है जो मनुष्य को पशुता, अमानवता और अनैतिकता की और ले जाता है। गांधी जी की अहिंसा केवल आदर्श तक ही सीमित नहीं है। वे उसे ही लक्ष्य की सिद्धि के लिए सक्रिय साधन के रुप में भी देखते है। अहिंसा को पशुता के विरुद्ध विद्रोह के रुप में प्रस्तुत करने और उसे अजेय तथा अमोघ शाक्ति के रुप में प्रतिष्ठित करने में गांधी का महत्वपूर्ण योगदान है। उनकी

---

[45] सहायक प्रोफेसर, एन. आई. यु, नोएडा, उत्तर प्रदेश

अहिंसा केवल जीव हिंसा न करने तक ही सीमित नहीं है, प्रत्युत जहाँ कहीं हिंसा हो, अन्याय हो, पशुता हो उसका मुकाबला करने के लिए परमशक्ति के रुप में हिंसा अग्रसर होती है। अन्याय अनीति के संमुख मस्तक झुकाना पाप है। पशुता को प्रश्रय मत दो, पशुता के सामने सिर न झुकाओ। अनीति और पशुता का सामना अनैतिकता और पशुता के द्वारा मत करो क्योंकि वह पशुता पर पशुता की विजय होगी। पशुता पर देवत्व की विजय तब होगी जब नैतिक और शुभ अस्त्रों से अनैतिक और दानव भाव की पराजय हो। शस्त्र से शस्त्र का, हिंसा से हिंसा का, क्रोध से क्रोध का पराभव नहीं किया जा सकता। उनकी अहिंसा कायर, पलायनवादी ना होकर अपितु वह वीरता, दृढ़ता, संकल्प, धैर्य को आधार बना कर खड़ी होती है जो अन्याय को अनाचार को, जगत की सारी, शस्त्रशक्ति को और देव तथा दर्भ से अधीर हुई शासनयंता की सारी दमनात्मक प्रवृत्ति को चुनौती देती है।

गांधी जी की इस अहिंसा दर्शन से ही असहयोग और सत्याग्रह जैसे आंदोलनों का जन्म हुआ जिसने ब्रिटिश राज की नींव हिला दी। इन आंदोलनों ने यह बतलाने मे सर्तकता प्राप्त की कि अहिंसा अमोघ शक्ति है जिसका पराभाव कभी हो नहीं सकता सशस्त्र विद्रोह से कहीं अधिक शक्ति अहिंसक विद्रोह में है। शस्त्र का सहारा लेकर अहिंसक वीर की आत्मा का दमन करने में कोई सत्ता, साम्राज्य समर्थ नहीं हो सकती। अहिंसा सत्य पर आश्रित है जो कभी पराजित नहीं हो सकता। इस प्रकार संसार के सामने अहिंसा के रुप में उन्होने उज्जवल, नैतिक पथ निर्मित किया जिसने समाज को गतिशील होने की प्रेरणा प्रदान की। वे समस्त मान्यताओं धारणाओ, और दृष्टियों के प्रतिवाद है जिनका आधार भौतिकतावाद है। वे प्रतीक है उन समस्त भावों को जो मनुष्य को पशुता की ओर नहीं देवत्व की ओर बढ़ने की दिशा का संकेत करते है।

गांधी जी के अहिंसा के माध्यम से मनुष्य के व्यवहार को परिवर्तित किया जा सकता है। उसका विकास सुभ्रता की ओर हो सकता है। क्योंकि मनुष्य भला है। भलाई की और ही उन्मुख है। गांधी जी के अनुसार व्याक्ति से समाज बनता है। व्यक्ति का परिवर्तन समाज को परिवर्तित करता है। परिवर्तित समाज व्यक्ति के लिए उन संस्कारों की रचना करेगा जिससे नूतन संस्कृति का आर्विभाव होगा।

महात्मा गांधी साध्य से अथिक साधन पर अधिक ध्यान देना आवश्यक मानते थे। उनका कहना था कि यदि साध्य पवित्र मानवीय है। तो साधन भी वैसा ही पवित्र और मानवीय होना चाहिए। हम देखते है कि साध्य और साधन की समाज पवित्रता पर बल देना और उसका आश्रय ग्रहण करना उनकी साधना रही है। उनके इन मौलिक विचारों ने मानव समाज के विकास के इतिहास में एक उत्यन्त उज्जवल और पवित्र अध्याय की रचना की है।

गांधी जी के लिए मानव अधिकार की संकल्पनाः- मानव अधिकार की संकल्पना बिना गांधी के अधूरी है। क्योकि मानव अधिकार की संस्कृति और वैचारिक पृष्ठभूमि गांधी की दृष्टि और उनके दर्शन पर ही आधारित है। गांधी जी की मानव अधिकारों की लड़ाई तब शुरु हुयी जब वो दक्षिण अफ्रीका में प्रथम श्रेणी का टिकट होने के बावजूद उन्हें रेलगाड़ी में सफर नहीं करने दिया गया और उन्हे बाहर फेंक दिया गया। तब उन्होनें वहाँ बसे भारतीय समुदाय के लोगों से मानव अधिकार के बारे में जागरूक किया। उन्होने वहाँ बसे भारत के समुदाय के लोगों की मदद की ताकि वे भेदभाव के शिकार न हो। एक सहमें

हुये भारतीय वकील ने दबे, कुचले तथा अधिकारहीन लोगों को उनके मानव अधिकार दिलाने में महारथ हासिल कर ली।

गांधी के दर्शन के बिना शांति और मानव अधिकारों की संकल्पना बेमानी होगी। क्योकि गांधी जी ने जिस इंसानियत की बुनियादी अवधारणा की बीज बोया उसकी आधारशिला सत्य अहिंसा, ब्रह्मचर्य, शारीरिक श्रम, सादगी और सत्याग्रह पर आधारित है।

विश्व में यदि कही भी मानव अधिकारों के अवधारणा का संबंध विमर्श या बहस होगी तो उसमें गांधी जी द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतो का प्रत्यक्ष व परोक्ष रुप से जिक्र अवश्य होगा। गांधी जी का सम्पूर्ण जीवन दूसरों के लिए समर्पित था। उन्हे भारत में ही नहीं, अपितु पूरे विश्व में शांति का अग्रदूत, दलितों का मसीहा तथा सेवा भाव के जननायक के रुप में जाना जाता है। गांधी जी मानते थे कि शरीर सेवा के लिए पर्याप्त है एवं हृदय आत्मदर्शन के लिए। गांधी जी सत्य और अंहिसा के सिद्धांतों को न सिर्फ प्रयोग किया बल्कि उसको जिया भी। उनका विचार था कि केवल सत्य बोलने से ही विश्व का कल्याण नहीं होगा बल्कि अपनी अर्न्तआत्मा सत्य को जीने की कला लानी होगी। ज्ञान और कर्म के साधना करने वाले तथा गीता के दर्शन को पाने जीवन धारा की जड़ में मानव अधिकारों की संकल्पना का बीज स्पष्ट रुप से प्रतिबिंबित होता है। गांधी की अहिंसा और सर्वधर्म सम्भाव की गांधी जी की अवधारणा मानव अधिकारों की आधारशिला है।

गांधी जी का शिक्षा दर्शनः- संसार में अधिकांश लोग गांधी जी को महान राजनीतिज्ञ एवं समाज सुधारक के रुप में जानते हैं। पर उनका यह मानना था कि सामाजिक उन्नति में शिक्षा का एक महत्वपूर्ण योगदान होता है। अतः गांधी जी का शिक्षा के क्षेत्र में विशेष योगदान रहा है। उनका मूल मंत्र था शोषण विहीन समाज की स्थापना करना। उसके लिए सभी को शिक्षित होना चाहिए क्योकि शिक्षा के अभाव में एक स्वस्थ समाज का निर्माण असंभव है। उनका मानना था भारत के बच्चों की 3 H की शिक्षा अर्थात् "Head Heart Hand" की शिक्षा दी जाये। शिक्षा उन्हे स्वावलम्बी बनाये और देश को मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दे सके। गांधी जी भारतीय शिक्षा को द ब्यूटीफुल ट्री कहा करते थे। वो कहते थे कि 7 से 14 वर्ष की आयु के बालकों को निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा मातृभाषा में मिलना चाहिए। शिक्षा बालक के मानवीय गुणों का विकास करता है। उनके अनुसार शिक्षा ऐसी हो जिससे बालक के शरीर हृदय मन और आत्मा का सम्पूर्ण विकास हो। सभी विषयों की शिक्षा रोजगारपूरक होनी चाहिए। शिक्षा ऐसी हो कि नवयुवकों को बेराजगारी से मुक्त कर सके। अतः गांधी के अनुसार शिक्षा का अर्थ शरीर, मस्तिष्क और आत्मा का चौमुखी विकास करना है। अविनाशलिंगम के शब्दों में बुनियादी शिक्षा हमारे राष्ट्रपिता गांधी का सर्वोतम उपहार है। सन् 1937 में गांधी जी ने वर्धा में हो रहे अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन जिसे वर्धा शिक्षा सम्मेलन कहा गया था में बेसिक शिक्षा की नयी योजना प्रस्तुत किया जो कि मैट्रिक स्तर तक अंग्रेजी सहित तथा उद्योग पर आधारित थी। जामिया मिलिया के तत्कालिक प्रिंसिपल डा0 जाकिर हुसैन की अध्यक्षता में जाकिर हुसैन समिति का निर्माण किया गया। सम्मेलन द्वारा पारित किये गये प्रस्तावो के आधार पर नयी तालिम (बुनियादी शिक्षा) की योजना तैयार

की गयी। तथा 1938 में हरिपुर के अधिवेशन ने इन रिपोर्ट को स्वीकृति दी गई। जो कि वर्धा-शिक्षा-योजना के नाम से प्रसिद्ध हुआ और बुनियादी शिक्षा का आधार बना।

बुनियादी शिक्षा राष्ट्रीय सभ्यता, संस्कृति के नजदीक थी साथ ही साथ सामुदायिक जीवन के आधारभूत व्यवसायों से जुड़ी हुयी थी। तथा सीखे हुये आधारभूत शिल्प के द्वारा व्यक्ति अपने जीवन का निर्वाह कर सकता था। अतः यह शिक्षा हमारे जीवन के बुनियाद के आधार से जुड़ी हुयी थी। इसलिए इसका नाम बुनियादी या आधारभूत शिक्षा रखा गया। गांधी जी के बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत आधारभूत शिल्प जैसे कृषि कटाई, बुनायी लकड़ी चमड़े, मिट्टी का काम, पुस्तक कल। मछली पालन, फल व सब्जी की बागवानी बालिकाओं हेतु गृहविज्ञान तथा स्थानीय एवं भौगोलिक आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षाप्रद हस्तक्षिल्प इसके अलावा मातृभाषा गणित सामाजिक अध्ययन एवं सामान्य विज्ञान कला हिन्दी शरीरिक शिक्षा आदि रखा। शिक्षण विधि को, शिक्षण का वास्तविक कार्यक्रियाओं और अनुभावों पर, अनिवार्य रुप से आधारित किया।

गांधी जी के अनुसार शिक्षण पद्धति व्यवहारिक हो। बालकों को विभिन्न विषयों की शिक्षा के आधारभूत शिल्प के माध्यम से दी जानी चाहिए करके सीखना, अनुभव द्वारा सीखना तथा क्रिया के माध्यम से सीखने पर बल दिया गया। गांधी जी ने बुनियादी शिक्षा में सीखने की समवाय पद्धति का उपयोग किया। जिसके अन्तर्गत उन्होनें समस्त विषयों की किसी कार्य या हस्तशिल्प के माध्यम से दी।

गांधी जी की शिक्षा संबंधी विचारधारा का प्रासांगिकता वर्तमान परिप्रेक्ष्य रुप में उपर्युक्त व्याख्या का मूल्यांकन किया जाये तो इस तथ्य पर पहुँचते है कि गांधी जी का शिक्षा दर्शन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी प्रासांगिक है।

गांधी जी हृदय से आदर्शवादी थे। क्योकि वे जीवन के अंतिम लक्ष्य सत्य को प्राप्त करने की प्रेरणा प्रदान करता है। गांधी जो को प्रयोजनवादी भी कह सकते है। क्योकि वे बालक के रुचि के अनुसार क्रिया करके सीखने पर बल देते है। इनको प्रकृतिवादी इसलिए कह सकते है कि वे बालक को उसके प्रकृति के अनुसार विकसित करना चाहते थे। ध्यान देने वाली बात यह है कि उनके शिक्षा दर्शन में तीनों विचारधाराओं में समान समावेश था।

गांधी जी अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा का समर्थन करते थे। जिससे अधिक से अधिक बच्चों को शिक्षा प्राप्त हो सके। वर्तमान में हम देखते है कि आज युवाओं के पास कई तरह की डिग्री है परन्तु रोजगार नहीं है। गांधी जी ने बहुत वर्ष पहले इस समस्या को इंगित कर दिया गया था। उन्होने बुनियादी शिक्षा के अन्तर्गत उद्योगों पर आधारित शिक्षा पर बल दिया ताकि बच्चे किसी न किसी हस्तशिल्प को सीखकर आत्मनिर्भर बन सके बेरोजगारी से मुक्ति प्राप्त कर सके। वर्तमान में अब व्यवहारिक शिक्षा तथा व्यवसायिक शिक्षा पर बल दिया जा रहा है। गांधी जी बालकों में मानवीय गुणों का विकास करने पर बल देते थे। जिसकी आज भी प्रासांगिकता है। क्योकि आज जो विनाश और तबाही फैल रही है वह मनुष्यों में मानवता की कमी के कारण बढ़ती जा रही है। गांधी जी ने करके या क्रिया द्वारा सीखने पर बल दिया है जो कि आज भी उतना ही आवश्यक है। क्योकि क्रिया या स्वयं करके सीखने पर सीखा हुआ

ज्ञान स्थायी होता है। जो हर क्षेत्र के लिए आवश्यक है। गांधी जी शारीरिक श्रम का सम्मान किया उनके अनुसार मनुष्य को अपना कार्य स्वयं करना चाहिए। उन्हें किसी पर निर्भर नहीं होना चाहिए।

वर्तमान संदर्भ युवा एवं गांधी दर्शनः-

महात्मा गांधी के विचार आज भी उतने ही प्रासांगिक एवं अनुकरणीय है। जितने अपने वक्त में थे। गांधी जी का बचपन उनके सामाजिक एवं राजनीतिक विचार, सर्वोदय, सत्याग्रह, खादी, ग्रामोद्योग, महिला शिक्षा, अस्पृश्यता, स्वावलंबन एवं अन्य सामाजिक चेतना के विषय आज के युवाओं के शोध एवं शिक्षण के प्रमुख क्षेत्र हैं।

भारतीय युवा हमेशा से गांधी जी के चिंतन का केन्द्र बिन्द्र रहा है। वर्तमान युवा पाच्श्रात्य प्रभावों से संचालित है। वह अपने ऊपर किसी का हस्तक्षेप नहीं चाहता है। ऐसी परिस्थितियों में गांधी जी के विचारों की सर्वाधिक जरुरत आज के युवाओं को है। गांधी जी हमेशा युवाओं से रचनात्मक सहयोग की अपेक्षा रखते थे।

सविनय अवज्ञा आंदोलन के समय उन्होने कहा था हमारा आंदोलन हिंसा का अग्रदूत न बन जाये इसके लिए मैं हर दण्ड सहने के लिए तैयार हूँ, यहाँ तक की मैं मृत्यु का वरण करने को भी तैयार हूँ। उस समय के युवाओं से उनकी अपेक्षा थी कि वे अपनी ऊर्जा और उत्साह को स्वतंत्रता प्राप्ति में सार्थक योगदान की ओर मोड़े।

गांधी जी ने हमेशा से युवाओं को वंचित समूहों को उत्थान के लिए प्रेरित किया है। वो व्यक्तिगत घृणा के हमेशा विरोधी रहे है। उनका कथन था-शैतान से प्यार करते हुये शैतानी से घृणा करनी होगी। उन्होने हमेशा युवाओं को आत्मा प्रशंसा से बचने को कहा है। उनका कथन था कि जनता के विचारहीन प्रशंसा हमें अहंकार की बीमारी से ग्रसित कर देती है। वे हमेशा आर्थिक मजबूती के पक्षधर रहे हैं। गांधी जी ने हमेशा पूँजीवादी एवं समाजवादी विचारधारा का विरोध किया। उनका मानना था कि देश की अर्थव्यवस्था कुछ पूँजीपतियों के पास गिरवी नहीं होनी चाहिए। उनकी अर्थव्यवस्था केन्द्रबिन्दु में गाँव थे। उनके अनुसार युवाओं को गाँव में ही जब तक रोजगार नहीं मिलता तब तक उनमें असंतोष एवं विक्षोभ रहेगा। आज जब ग्रामीण बेरोजगार का भारत के विभिन्न बडे शहरों की तरफ पलायन एक ज्वलन्त समस्या है। उनके अनुसार इसका निराकरण सिर्फ कुटीर उद्योग द्वारा ही किया जा सकता है।

शांति राष्ट्र एवं अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर एक ज्वलंत मुद्दा है। गांधी जी के अनुसार शांति तभी संभव है। जब व्यक्ति भावनात्मक समानता एवं आत्मसंतोष को प्राप्त कर ले।

गांधी जी युवाओं को सामाजिक परिवर्तन का सबसे बड़ा औजार मानते थे। वे हमेशा चाहते थे, कि सामाजिक परिवर्तनों, सामाजिक कुरीतियो, सतीप्रथा, बाल-विवाह, अस्पृश्यता, जाति व्यवस्था के उन्मूलन के विरुद्ध युवा आज आवाज उठाये। उनका मानना था कि शोषण मुक्त स्वावलम्बी एवं परस्पर पोषक समाज के निर्माण में युवाओं की अहम भूमिका है जो भविष्य में भी होगी। वर्तमान युवा प्रजातांत्रिक मूल्यों एवं तथ्यपरक सिद्धांतो को मानता है।

आज प्रतिस्पर्धात्मक क्षेत्रों जैसी की आईटी प्रोफेशन एवं मेडिकल क्षेत्रों आदि में मानसिक दबाव बहुत है। अगर युवा मानसिक एवं शारीरिक रुप से शिथिल हो जाये तो उन्हें गांधी जी की "जीवनी सत्य के साथ मेरे प्रयोग"पढ़ना चाहिए जिससे उनके अन्दर आत्मबल एवं ऊर्जा का संचार होगा।

वर्तमान दौर में गांधी दर्शन की प्रासंगिकताः-

अमेरिका पर 9/11 पर हुये आतंकी हमले थे दुनिया की राजनीति का रुख बदलकर रुख दिया। 9/11 के बाद अमेरिका के राष्ट्रपति जार्ज डब्लू बुश ने विश्व की आह्वान किया की आंतकवाद के सफाए के लिए सारे देश एक साथ आये। आतंकवाद की त्रास्दी झेलने वाले देशों ने तथा बाकी राष्ट्रों ने अमेरिका के आतंकवाद के खिलाफ युद्ध में समर्थन किया पर आज एक दशक बीतने के बाद और लाखो लोगो के युद्ध में हताहत होने के बाद भी आतंकवाद की समस्या जस के तस है। आतंकवाद के विरुद्ध अमेरिका के युद्ध में अरबो डॉलर की आहूती देन के बाद भी अफगानिस्तान, इराक जैसे देशों में ISIS, अलकायदा जैसे आतंकवादी संगठनों का उदय हुआ। विश्व आर्थिक मंदी, बेरोजगारी एवं मानव अधिकारों के हनन के परिणाम स्वरुप उपजने वाले विश्वव्यापी असंतोष के बीच अमेरिका के चुनाव में सत्य, अहिंसा तथा शांति की बात करने वाले तथा गांधी दर्शन को आत्मसाध्य करने वाले अमेरिका के पहले अश्रेत राष्ट्रपिता बराक ओबामा का चुनाव हुआ।

जार्ज बुश के तथाकथित आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध के विरूद्ध वहाँ की जनता ने शांति की बात करने वाले ओबामा के समर्थन में खड़ी दिखाई पड़ी। इस ऐतिहासिक परिवर्तन के बाद महात्मा गांधी के आदर्शों एवं दर्शन की प्रासंगिकता पुनः महसूस की जा रही है। बराक ओबामा, महात्मा गांधी के उस दर्शन के कायल है जिसके तहत गांधी जी ने विश्व समाज की किसी की दमनकारी नीतियों का विरोध शांतिपूर्ण तरीके से करने हेतु प्रेरित किया। गांधी दर्शन को अगर समझे तो गांधी जी मानते थे कि हिंसा किसी भी समस्या का स्थाई समाधान नहीं हो सकता। जिस प्रकार आज आतंकवाद और विश्व में हिंसा अपने चरम पर है तथा चारों तरफ गांधी के दर्शन की प्रासंगिकता की चर्चा हो रहि है, ठीक उसी प्रकार गांधी जी भी अहिंसा का बात तब करते थे जब हिंसा अपने चरम पर थी।

आज विश्व को गांधी दर्शन की सबसे ज्यादा जरुरत है। विश्व के तमाम देश अपना ज्यादा से ज्यादा धन युद्ध, सेना तथा हथियार में लगा रहे है जिससे वहाँ की जनता की जरुरतों की पूर्ति नहीं हो पा रही है। शिक्षा, स्वास्थ, रोजगार, भुखमरी से जुड़ी तमाम समस्याऐं अपना दानवी मुह फाड़े हर देश में खड़ी है। अगर विश्व को मावनता का उत्थान तथा मानव जाति को उसके स्वर्णिम भविष्य तथा पहुँचाना है, तो विश्व को बस गांधी दर्शन को अपना कर ही इस समस्या का समाधान की तरफ जाना होगा।

आतंकवाद, जातीय भेदभाव जैसे तमाम समस्याओं की जड़ में जायें तो हम पायेगें कि इन समास्याओं का समाधान सिर्फ गांधी दर्शन से ही हो सकता है। गांधी जी के अनुसार रामराज्य द्वारा ही विश्व में शांति और भाईचारे की नई मिसाल कायम होगी।

आज जब विश्व महात्मा गांधी की 150वीं जयंती मना रहे है, तो गांधी के दर्शन को अपना कर ही वह इस महान जननायक को सच्ची श्रद्धांजलि दे सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1.द स्टोरी ऑफ माय एक्सपेरिमेंट्स विथ ट्रूथ

2.मानव अधिकार आयोग भारत सरकार

3.नवभारत टाईम

4. लाला रमन बिहारी, शिक्षा के दार्शनिक और समाजशास्त्रीय सिद्धांत, रस्तोगी पब्लिकेशन मेरठ।

5.पचौरी डा0 गिरीश, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, लायक बुक डिपो मेरठ

6.पाण्डेय डा0 रामशकल, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि, विनोद पुस्तक मन्दिर

7.बिकीपीडिया

***

धर्म और महात्मा गांधी

डॉ.मनीष कुमार तिवारी[46]

गांधीजी एक धर्मपरायण व्यक्ती थे। 1920 में वे धर्म को राजनीति से जुड़ा हुआ मानते। 1947 तक आते-आते गांधी यह मानने लगे थे की "धर्म व्यक्ति का निजी मामला हैं, इसे कदाचित राजनीति और राष्ट्रीय मामलों से नहीं मिलाना चाहिए।"[1] कलकत्ता के स्कॉटिश चर्च कॉलेज के प्राचार्य जान केलस के साथ बातचीत के दौरान गांधी ने विचार व्यक्त किया था "राज्य को निःसंदेह धर्म निरपेक्ष होना चाहिए।"[2] उन्होंने इस विचार को आगे बढ़ाते हुए यह विश्वास व्यक्त किया कि "इस दुनिया में जितने मानव मस्तिष्क है, उतने ही धर्म है।"[3]

शुरुआत में गांधीजी धर्म के प्रति आश्वस्त नजर आते हैं। लेकिन 1947 में भारत विभाजन की विभीषिका को अनुभव करने के बाद उनके व्यक्तित्व एवं सोच में व्यापक परिवर्तन दिखाई पड़ता है। हालांकि उनको अपने विश्वासों में अडिग आस्था थी। लेकिन, जहां उन्हें आवश्यक प्रतीत हुआ उन प्रयोगों को पलभर में ही तिलांजलि दे दी। वास्तव में उनके लिए सबसे बड़ा धर्म 'सत्य' था। अंतः जो धार्मिक विश्वास सत्य की कसौटी पर खरा नहीं उतरता उसको गांधीजी ने त्यागना ही उचित समझा। सत्य के प्रति उनके इसी गहरे लगाव ने उन्हें सत्य को अपना ईश्वर घोषित करने पर मजबूर कर दिया। गांधीजी सत्य के अनुयायी थे, न कि धर्म के। वस्तुतः गांधीजी ईश्वरवादी नहीं थे। अपनी आत्मकथा में गांधीजी ने स्वयं स्वीकार किया है कि लगभग सोलह साल की आयु के बाद ही उनका ईश्वर से विश्वास समाप्त हो चुका था।

गांधी कहते हैं "यह धारणा की मैंने अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु होना सीख लिया था, का अर्थ यह नहीं है कि मेरा ईश्वर में कोई जीवित विश्वास था। लगभग इसी समय मनुस्मृति के संपर्क में आया जो मेरे पिता के संग्रह में था। सृष्टिरचना की कहानी और अन्य बातों ने मुझे ज्यादा प्रभावित नहीं किया, लेकिन इसके विपरीत इसने मुझे अनीश्वरवाद की तरफ प्रेरित कर दिया।"[4]

गांधीजी मनु से प्रभावित नहीं थे, बल्कि विश्व प्रसिद्ध अनीश्वरवादी ब्रेडला से सहमत दिखाई पड़ते हैं। गांधी के अनुसार "ब्रैडला जैसा अनीश्वरवादियों के लिए सत्य का वही स्थान था, जो दूसरों के लिए ईश्वर का।"[5] अतः वे सत्य को ईश्वर धर्म से ज्यादा तरजीह देते थे।

उम्र के चालीसवें पड़ाव पर गांधीजी ने हिंन्द स्वराज लिखा। 1909 में प्रकाशित हिंन्द स्वराज में गांधी ने लिखा कि "हिंन्दुस्तान में चाहे जिस धर्म के आदमी है, रह सकते है।"[6] गांधीजी मनुष्य मात्र से प्रेम करते थे। [7]वस्तुतः गांधी सामाजिक सौहार्द के पुजारी थे। वे ऐसा माहौल चाहते थे, जिसमें सामाजिक समरसता बनी रहें, युद्ध एवं हिंसा का बोलबाला न हो और उस माहौल में मनुष्य की सच्ची स्वतंत्रता की संभावना बाकी रहे।

---

[46] *गेस्ट लेक्चरर, NCWEB, महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली

गांधीजी का धर्म न तो ईश्वरवादी था न धार्मिक। न तो वे पारलौकिक धर्म में विश्वास करते थे, न इहलौकिक। धर्म को राष्ट्र की सीमाओं में भी नहीं बांधा जा सकता। उनका धर्म मानवतावादी धर्म था। यह राष्ट्र की सीमाओं से मुक्त वह सत्य था जिसमें मनुष्य को सुख, शांति व समृद्धि की प्राप्ति के लिए पारलौकिक स्वर्ग की कल्पना करने की जरूरत न हो। गांधी के लिए धर्म की परिकल्पना मानव सभ्यता में ही संभव हो सकती थी। गांधी न संगठित धर्म चाहते थे और न संगठित राष्ट्र राज्य। अंतः कुछ विचारकों नें उन्हें 'अराजकतावादी' भी कहा।

गांधी का मानना था कि "यों तो जितने आदमी उतने धर्म ऐसा मान सकते हैं। एक राष्ट्र होकर रहने वाले लोग एक दूसरे के धर्म में दखल नहीं देते अगर देते हैं तो एक राष्ट्र होने के लायक नहीं है। अगर हिंन्दू माने कि सारा हिंन्दूस्तान सिर्फ हिंन्दूओं से भरा होना चाहिए, तो यह निरा सपना है। मुसलमान अगर ऐसा माने कि उसमें सिर्फ मुसलमान ही रहे तो, इसे भी सपना समझिए। फिर भी हिंन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई जो भी इस देश को अपना वतन मानकर बस चुके हैं, वे देशी है, एक मूल्की है, वे देशी भाई-भाई है और उन्हें एक दूसरे के स्वार्थ के लिए एक होकर रहना पड़ेगा।"[8]

इस प्रकार गांधीजी चाहते थे कि भारत में रहने वाले सभी धर्मों के लोग एक दूसरे के धर्म का आदर करें और धार्मिक सहिष्णुता बढ़ाने के लिए एकजुट रहे।

यह भी सत्य है कि गांधीजी ने 1919-1922 में काल में अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ किए गए आंदोलनों में धर्म और राजनीति और आपस में मिलाने का प्रयोग किया था। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि "मैंने निःसंदेह राजनीति में धर्म को मिलाया है। यह मेरा विचार है कि धर्म से स्वतंत्र कोई भी गतिविधि हो ही नहीं सकती है। हमने धर्म को राजनीति में नहीं मिलाया है इसलिए स्वतंत्रता प्राप्त होने में विलम्ब हो रहा है।"[9]

गांधीजी का आशय यह था कि धर्म आधारित राजनीति अगर स्वतंत्रता मिलने में सहायक की भूमिका निभाती है, तो यह प्रयोग उचित है।

गांधी के नजरों में धर्म और व्यवहार परस्पर विरोधी नहीं है, लेकिन व्यवहार अगर धर्म के विरुद्ध हो जाए तो उसे छोड़ देने चाहिए हिंन्दू धर्म के साथ-साथ वे जैन, बौद्ध, मुस्लिम, इसाई, यहूदी सभी धर्मों की अच्छी बातों को सदस्यता से स्वीकार करते थे। गांधी कहते हैं, "यद्यपि मैं हिंन्दू धर्म का सबसे ज्यादा कद्र करता हूं, किंन्तु धर्म से अभिप्राय हिंन्दू धर्म से नहीं है, बल्कि उस धर्म से है जो उससे भी बढ़कर है अर्थात वह है मूलभूत सत्य, जो संसार के सभी धर्मो का आधार स्वरूप है और यह धर्म है सत्य के लिए, आत्मा भी व्यक्ति के लिए संघर्ष। में इसे सत्यबल कहता हूं। यह धर्म मनुष्य के स्वभाव का स्थायी तत्त्व है और यह अपने आप को खोजने का और सृजनहार को जानने के लिए सतत उद्योग करता रहता है। इसी का नाम धर्म है।"[10]

गांधी लगभग सभी धर्मो के सुंदर बातों से प्रभावित थे। गांधी जैन धर्म के अहिंसा के प्रबल समर्थक थे, लेकिन वे किसी भी अनगल दिखावे के विरोधी थे। 1930 में काठियावाड़ में जैन धर्म पर बोलते हुए गांधी कहते हैं कि, "जिस खूबी ने उन्हें प्रभावित किया है वह यह है कि अपने व्यवहारिक जीवन में धर्म का पालन करने के साथ-साथ वे व्यवसाय भी अच्छी तरह चलाते हैं। उनके विश्वास का

आधार निर्विवाद रूप से अहिंसा थी। जैन धर्म की अहिंसा वह अहिंसा नहीं है, जिसे हम आजकल प्रचलन में देखते हैं, जिनका उद्देश्य कुछ कीट पतंगों की रक्षा तक सीमित है उनकी अहिंसा कों अगर छोटे-मोटे कीड़े-मकोड़े शामिल थे तो उसी तरह पूरी मानवता भी शामिल थी।"[11]

गांधीजी महात्मा बुद्ध के नैतिकता व करुणा के सिद्धांत से ज्यादा प्रभावित थे। बौद्ध धर्म के बारे में गांधी के विचारों को निम्न शब्दों दाए जाना जा सकता है।

"मैं बौद्ध धर्म को हिंदू धर्म का ही अंग मानता हूँ। बुद्ध ने संसार को कोई नया धर्म नहीं दिया। इन्होंने संसार को धर्म की एक नई व्याख्या दी। उन्होंने हिन्दू धर्म को जीव की बलि देने के बजाय जीवन की बलि देना सिखाया।"[12]

गांधीजी सर्वधर्म सद्भाव के प्रणेता थे। उनपर भगवद्गीता तथा रामायण का प्रभाव गहरे रूप में मिलता है। उन्होंने खुल्लम-खुल्ला इसे जाहिर भी किया। उन्होंने लिखा भी है। 'कुरान' और 'बाइबिल' तथा दुनिया के अन्य धर्मों का आदर भाव होते हुए भी मेरे हृदय पर उतना असर नहीं होता जितना श्री कृष्ण की 'गीता' और तुलसीदास की 'रामायण' का होता है। सभी धर्मों की आत्मा एक है, वह भिन्न-भिन्न रूपों में विद्यमान होती है। धर्म के नाम पर मुढे आडंबर का गांधी ने हमेशा विरोध किया। वे मानते थे कि "कोई गायत्री मंत्र पढ़ने मात्र से हिंदू नहीं हो सकता। मेरी दृष्टि से हिन्दू वह है, जिसके हृदय में गायत्री मंत्र सतत् अंकित रहती है। कोई ग्रंन्थसाहब पढ़ लेने से सिक्ख नहीं हो जाता, सिक्ख वहीं है जो ग्रंन्थ साहब को सच्चे भाव से हृदय में ग्रहण करता है। वेद-मंत्रों को भली-भांति गान करने से कोई आर्यसमाजी नहीं हो जाता, किंतु उनमंत्रों को जो जीवन में उतरता है, वही सच्चा आर्य समाजी बनता है। मैं मुसलमानों से भी कहता हूँ क्या कलमा पढ़ लेने से कोई मुसलमान हो सकता है।"[13]

गांधी को वेदों, उपनिषदों, पुराणों एवं हिन्दू धर्मग्रंन्थ के नाम से प्रचलित सभी साहित्य में पूर्ण विश्वास था। इसके साथ ही वे अवतार एवं पुनर्जन्म में भी विश्वास रखते थे। इनको 'बाइबिल' और 'कुरान' में भी पूर्ण विश्वास था, किंन्तु इन धर्म ग्रंन्थों के प्रत्येक शब्द एवं पंक्ति ईश्वर से प्रेरित है, इसकों उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया। जो तथ्य विवेक एवं नैतिकता पर आधारित थे, वहीं गांधी को मान्य है। वे ऐसी किसी भी व्याख्या को मानने के लिए बाहय नहीं थे, जो नैतिकता विहीन हो। [14]

सर्वधर्म सद्भाव पर विचार रखते हुए गांधी ने कहा है कि जब तक अलग-अलग मनुष्य हैं, "तब तक भिन्न-भिन्न धर्म रहेंगे, लेकिन सच्चे धार्मिक जीवन का रहस्य एक दूसरे के धर्म के प्रति सहिष्णुता बरतने में है।"[15]

गांधी आगे कहते हैं "जब मन में प्रार्थनापूर्वक विचार करता हूँ, उस समय संसार की सभी चीजें अच्छी और अनुकूल लगती हैं। जीवन में प्रगति करने के लिए प्रार्थना एक अनिवार्य चीज है। राम, खुदा ईसा, का नाम लेने से बुरे विचार मन से निश्चय ही दूर हो जाते हैं और नई शक्ति और उत्साह प्राप्त होता है।"[16]

गांधीजी सभी धर्मों को समान दृष्टि से देखते थे, तथापि वे धरम परिवर्तन के कट्टर विरोधी थे। उनका मानना था कि "हमारा सच्चा धन रुपया-पैसा नहीं है, जर और जमीन नहीं है। वे तो ऐसी चीजें हैं

जो लूटी जा सकती हैं, किन्तु हमारा सच्चा धन हमारा धर्म है। जब हम इसको गंवा देंगे, तब यह कल्पना चाहिए कि हमने अपने घर खुद लूट लिए हैं।"[17]

इस संदर्भ को आगे बढ़ाते हुए गांधीजी कहते हैं "मेरा धर्म मुझे यह नहीं सिखाता कि मैं ऐसी प्रार्थना करूं कि दूसरे लोग मेरे धर्म के हो जाए। वह तो मुझे यह सीख देता है कि तुम प्रार्थना कऐ कि सब अपने-अपने धर्म में रहते हुए पूर्णता प्राप्त करें।"[18]

गांधीजी के धर्म संबंधी विचार के सार जे.जे.डोके(J.J.Doke) के शब्दों में इस प्रकार है, "कुछ दिनों पहले मुझे बताया गया कि वह एक बौद्ध है। कुछ समय पश्चात एक ईसाइ अखबार ने उन्हें ईसाइ मोहमडन बताया, निश्चित रूप से एक असाधारण मिश्रण। उनके विचारों की परिधि ईसाइयत के उतने की करीब है। जितनी हिंन्दुत्व के तथा संवेदनाओं और सहानुभूति का आधार इतना व्यापक है, जिससे यह विश्वास किया जा सकता है कि वह एक ऐसी स्थिति को प्राप्त कर चुके हैं, जहाँ संप्रदाओं के सूत्र अर्थहीन हो गए हैं।"[19]

गांधी के शब्दों में "मेरे सपनों के भारत में अपेक्षा नहीं करता कि वह एक धर्म का विकास को, अर्थात पूर्णतः हिंन्दू या पूर्णतः ईसाई या पूर्णत है मुस्लिम बल्कि में पूर्णतः सहिष्णु राष्ट्र की कल्पना करता हूँ, जहॉ प्रत्येक धर्म एक दूसरे के साथ तथा परस्पर सान्निध्य में फले-फुले।"

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. प्रार्थना सभा में भाषण, नई दिल्ली। नवम्बर 28, 1947 हरिजन, दिसम्बर 7, 1947।
2. कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, खंण्ड 89 पृष्ठ 51 श्री जान केलाश के साथ चर्चा अगस्त 16, 1947
3. प्रार्थना सभा में भाषण, कमलापु, फरवरी 21, 1947 हरिजन मार्ग 16, 1947 (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी खण्ड 87 पृष्ठ 5
4. महात्मा गांधी, द स्टोरी ऑफ माई एक्सीपेरिमेंन्ट विद् ट्रुथ, नवजीवन पब्लिसिंग हाउस 1927, पृष्ठ 291
5. डी.जी. तेंन्दुलकर महात्मा-लाइफ ऑफ मोहन दास करमचंन्द गांधी खंण्ड-एक 1849-1920 दि पब्लिकेशन डिविजन मिनिस्ट्री ऑफ इन फारमेशन एण्ड ब्रॉडकास्टिंग, गर्वमेंट ऑफ इंडिया, दिल्ली दिसंम्बर 1988 (पृष्ठ 32)
6. महात्मा गांधी, हिंन्दू स्वराज 1909, पृष्ठ 45
7. महात्मा गांधी, हिंन्दू स्वराज 1909, पृष्ठ 46
8. महात्मा गांधी, हिंन्दू स्वराज 1909, पृष्ठ 45
9. कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, खंण्ड 19 पृष्ठ 300
10. संपूर्ण गांधी वांडःमय खंण्ड 25, पृष्ठ 210
11. संपूर्ण गांधी वांडःमय खंण्ड 43, पृष्ठ 89
12. संपूर्ण गांधी वांडःमय खंण्ड 24, पृष्ठ 88 भाषण बुद्ध जयंती समारोह, बम्बई
13. संपूर्ण गांधी वांडःमय खंण्ड 28, पृष्ठ 22
14. संपूर्ण गांधी वांडःमय खंण्ड 21, पृष्ठ 257

15. संपूर्ण गांधी वांडःमय खंण्ड 26, पृष्ठ 292
16. संपूर्ण गांधी वांडःमय खंण्ड 25, पृष्ठ 342
17. नवजीवन 1.2.1925 संपूर्ण गांधी वांडःमय खंण्ड 26, पृष्ठ 79
18. संपूर्ण गांधी वांडःमय खंण्ड 25, पृष्ठ 92
19. जे.के.डोके, एम.के.गांधी-एन इंडियन पेट्रियट नई दिल्ली, पब्लिकेशन डिविजन 1992 पृष्ठ-12

***

मानवाधिकारवादी दर्शन एवं कर्त्तव्यशीलता

डॉ. विकास कुमार शर्मा[47]

गांधीजी एक मानवाधिकारवादी चिंतक हैं। गांधीजी के सम्पूर्ण जीवन का सार उनकी एकनिष्ठ कर्त्तव्यपरायणता में देखा जा सकता है। वे हमेशा अपने जीवन में कर्त्तव्य को प्राथमिकता देते थे। उनकी कथनी एवं करनी में किसी प्रकार की भिन्नता नहीं है, उन्होंने जीवनभर वही किया जो कहा। गांधीजी ने तो अपने आश्रम का नियम ही यह बनाया कि, प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन कुछ समय आवश्यक रूप से मानव श्रम करेगा। गांधीजी कहते हैं कि, किसी व्यक्ति के अधिकार तभी सुरक्षित हो सकते हैं, जब अन्य लोग अपने कर्त्तव्यों का पूर्ण निष्ठा से पालन करें।

महात्मा गांधी ने किसी नये दर्शन की रचना नहीं की है वरन् उनके विचारों का जो दार्शनिक आधार है, वही गांधी दर्शन है। गांधीजी के चिंतन की अपनी विशिष्ट प्रकृति है, जिसे समकालीन चिंतन की किसी भी धारा में समाहित नहीं किया जा सकता। गांधीजी के विचार को न उदारवादी, न मार्क्सवादी, न अस्तित्ववादी और न ही समुदायवादी कहा जा सकता है। उनका चिंतन इन सभी चिंतन धाराओं से आगे जाता है और मानवतावादी दर्शन का सूत्रपात करता है। गांधीजी न तो आत्मकेन्द्रित व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा की वकालत करते हैं, न ही व्यक्तिगत अस्मिता से वंचित व्यक्ति को समुदाय व समाज के हित की वेदी पर चढ़ाने की बात करते हैं। गांधीजी का मानववादी दर्शन व्यक्ति स्वातंत्र्य व अस्मिता का संरक्षण करते हुए राजनीति को धर्म, सत्य व अहिंसा से जोड़ने का एक प्रयास है। गांधीजी का चिंतन एक ऐसी विश्व दृष्टि प्रदान करता है, जिसके द्वारा उदारवाद व समाजवाद की सीमाओं से मुक्त हुआ जा सकता है।

आधुनिक राजनीतिक चिंतन का इतिहास इस बात को प्रमाणित करता है कि या तो व्यक्ति को ऐसे स्वायत्त प्राणी के रूप में देखा गया है जिसकी समाज के प्रति कोई प्रतिबद्धता नहीं है या फिर ऐसे सावयव प्राणी के रूप में जिसका समाज से पृथक न तो कोई अस्तित्व है और न ही कोई हित है। उदारवाद व व्यक्तिवाद ने व्यक्ति को उसके हित के संदर्भ में परिभाषित करने का प्रयास किया है और इस प्रकार व्यक्ति इस चिंतन में एक बाह्य एवं यांत्रिक प्राणी मात्र है। 1 उपयोगितावादी चिंतक बेंथम ने तो व्यक्ति के हित की यहां तक हिमायत की कि उन्होंने अन्तः चेतना का स्थान भी व्यक्तिगत हित को दे दिया। इन प्रवृत्तियों के कारण उदारवादी अर्थशास्त्रियों के लिए यह बहुत ही आसान हो गया कि, वह मनुष्य को मात्र एक भौतिक वस्तु मानते हैं। [2] इसी क्रम में उपयोगितावादियों अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख के सूत्र की वकालत कर सामाजिक जीवन में गुण के स्थान पर मात्रा को प्राथमिकता दी। इस व्यक्ति केन्द्रित चिंतन के विरूद्ध तीव्र प्रतिक्रिया हुई और आदर्शवादी चिंतनधारा ने व्यक्ति की

---

[47] सहायक प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान), राजकीय महाविद्यालय, बून्दी (राजस्थान)

स्वतंत्रता व नैतिकता को राज्य पर निर्भर बना दिया। इसी क्रम में समाजवाद ने मनुष्य व उसके श्रम को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया और इस प्रतिष्ठा को प्राप्त करने के लिए वर्तमान संस्थागत ढांचे को परिवर्तित करने की आवश्यकता पर बल दिया। इन चिंतन धाराओं के बीच बहुत से ऐसे चिंतक भी हुए जिन्होंने मनुष्य की स्वायत्तता, आत्मनिर्भरता, अस्मिता व गौरव को सुरक्षित करने के लिए पुनर्जागरण के मानववाद को अपने दर्शन में मुखरित करने का प्रयास किया। इन चिंतकों में मार्क्स एक प्रमुख चिंतक था। अस्तित्ववादी चिन्तकों ने मनुष्य को पराभौतिक शक्तियों के आतंक से तो स्वतंत्रता दी और उसे स्वयं अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी बताया किन्तु उसने व्यक्ति को भौतिकता की परिधि से बांध दिया। इनसे सबसे अलग गांधी के मानववाद में व्यक्ति की स्वतंत्रता न तो संस्थाओं पर निर्भर करती है और न ही भौतिकता से संचालित होती है। गांधी ने व्यक्ति को सम्मान का पात्र इसलिए नहीं माना कि वह एक बौद्धिक प्राणी है और अधिकारों का धारक है वरन् इसलिए माना कि उसमें सत्य को आत्मसात् करने की, अहिंसा पर चलने व धर्म का निर्वाह करने की पूर्ण क्षमता है। गांधी व्यक्ति को अधिकार के धारक के रूप में नहीं वरन् अधिकार के निर्माता के रूप में देखते हैं और यह निर्माण व्यक्ति अपने कर्त्तव्य के समुचित पालन के द्वारा करता है। गांधी की दृष्टि में मानव के अधिकार उसके कर्त्तव्यों के अनुगामी होते हैं। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने मानवीय कर्त्तव्यों का उचित निर्वहन करें तो उसके अधिकार स्वमेव सुरक्षित हो जायेंगे। गांधी व्यक्ति की नैतिक एवं सत्यनिष्ठ क्षमता के अनुरूप उसके अधिकारों की सुलभता पर बल देते हैं।

गांधी के मानवाधिकार की दार्शनिक पृष्ठभूमि सत्य, अहिंसा व धर्म पर आधारित है। गांधी सत्य, अहिंसा व धर्म मानव को वैयक्तिक या स्वार्थपरक विचारों से ऊपर उठाकर समाज व समूह के हित से संबंद्ध करते हैं। गांधी ने यह प्रस्थापित किया कि, मनुष्य में निहित नैतिकता और सत्य के प्रति निष्ठा का संयोग जब अहिंसात्मक व्यवहार से होता है, तब व्यक्ति मानव धर्म का पालन करता है। इसका प्रभाव सिर्फ व्यक्ति के अंतः संबंधों पर नहीं वरन् पूरे समाज की क्रियात्मकता पर भी पड़ता है। वह स्वधर्म का पालन करते हुए संपूर्ण मानव समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन करता है। गांधी ने सत्य, अहिंसा व धर्म की शाश्वतता के आधार पर मानवीय संघर्ष का समाधान करने का प्रयास कर मानवाधिकार संबंधी चिंतन को नवीन दिशा देने का प्रयास किया है।

महात्मा गांधी के चिंतन में मानवाधिकार की अवधारणा

गांधी के चिंतन में मानवाधिकार की अवधारणा उनके द्वारा प्रस्तुत मानव की अवधारणा पर आधारित है। गांधी भौतिक व बौद्धिक अस्तित्व वाले मानव की बात नहीं करते बल्कि प्रामाणिक मानव अस्तित्व की बात करते हैं। [3] इस प्रामाणिकता को प्राप्त करने का माध्यम है व्यक्ति द्वारा सद्जीवन का पालन करना। गांधी के चिंतन में अधिकार सदैव कर्त्तव्यों के बाद ही आते हैं। गांधी के अनुसार व्यक्ति वह विवेकशील प्राणी है जो न केवल अपने अन्दर निहित सत्य को पहचानने व अपने नैतिक स्वरूप को प्राप्त करने में सक्षम है, अपितु वह निरन्तर पूर्णता की ओर अग्रसर होता हुआ आत्मसाक्षात्कार करके ईश्वर को भी प्राप्त कर सकता है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति अपने सकारात्मक कर्त्तव्यों के माध्यम से ही सफलता अर्जित कर सकता है। गांधी व्यक्ति को स्वयं में साध्य मानते हैं और वे कहते हैं कि, प्रत्येक

व्यक्ति अपने विवेक से अपनी शक्ति को समझ सकता है और स्वयं में निहित इस विश्वास को व्यवहार में सत्यापित भी कर सकता है। इस प्रकार व्यक्ति स्वयं में साध्य व साधन दोनों है।

गांधी व्यक्ति की जिस प्रामाणिकता की बात करते हैं उसको प्राप्त करने की निश्चित प्रक्रिया है जो उसके निःस्वार्थ प्रयास की माँग करती है। गांधी के अनुसार मानव भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर सतत् गतिशील होता है। गांधी कहते हैं कि, मानव की अन्तःवृत्ति को स्वच्छ एवं पवित्र बनाया जा सकता है।

गांधी का चिन्तन यह स्थापित करने का प्रयास करता है कि संपूर्ण मानव समाज में ब्रह्म का अंश है, मानव के विभिन्न पक्षों में निहित आत्मायें एक ही हैं। किसी एक मानव का पतन व उत्थान उस संपूर्ण सृजनशीलता तक उपयुक्त है, जिसमें वह अन्य व्यक्ति को प्रगति का अधिक अवसर प्रदान करता है। इस प्रकार गांधी का मानवाधिकार प्रतिस्पर्धात्मक संघर्ष या हिंसा से संबद्ध न होकर एकत्व की ऐसी अनुभूति से संबद्ध है, जिससे सम्पूर्ण मानव जाति अपने अधिकारों का पोषण व संवर्द्धन कर सके। गांधीजी का विश्वास था कि यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्त्तव्य का समुचित पालन करें तो सामाजिक समरसता तो विकसित होगी ही साथ ही साथ अधिकार भी पल्लवित होंगे।

गांधी की मानवीय कर्त्तव्यों की अवधारणा

गांधी के चिंतन में अधिकार कर्त्तव्य से संबंधित हैं, उन्होंने कर्त्तव्य को अधिकारों का स्त्रोत बताया है। 6 गांधी के दर्शन की कर्त्तव्योन्मुखता को एच.जी.वेल्स से संबंधित उद्धरण से समझा जा सकता है। वेल्स ने गांधी की स्वीकृति प्राप्त करने हेतु मानवाधिकार के चार्टर की रूपरेखा उनके पास भेजी। गांधी ने अधिकार के चार्टर के प्रत्युत्तर में वेल्स को लिखा कि, मानव के अधिकारों को कर्त्तव्यों के चार्टर से प्रारंभ किया जाना चाहिए, मैं यह विश्वास दिलाता हूं कि जिस प्रकार शीतकाल के बाद बसन्त ऋतु का आगमन होता है उसी प्रकार कर्त्तव्यों के बाद अधिकार भी उत्पन्न होंगे। गांधी ने गीता के निष्काम कर्मयोग की नयी व्याख्या की। उन्होंने यह स्थापित करने का प्रयास किया कि मानवीय क्रियाऐं स्वयं में सक्षम है, उन्हें उनकी उपलब्धि से मुक्त रखकर यदि सम्पादित किया जाये तो वह कर्त्तव्य बन जाती है और उसका प्रतिफल ही अधिकार होता है।

गांधी इच्छा की स्वतंत्रता पर बल देते हैं और कहते हैं कि व्यक्ति द्वारा किया गया कोई भी कार्य नैतिक हो सकता यदि वह स्वैच्छिक न हो। अनैतिक अभिप्रेरणा या उद्देश्य से निर्देशित अच्छा कार्य भी नैतिक नहीं हो सकता। किसी भी कार्य का अंत या वृद्धि मात्र साधन को औचित्यपूर्ण नहीं बनाते अपितु साधन की पवित्रता भी अपेक्षित है। कार्य की नैतिकता को आंकने के मानदंड की बात को आगे बढ़ाते हुए गांधी कहते हैं कि कार्य तब नैतिक है जब अहम् के भाव से मुक्त हो और निःस्वार्थ इच्छा पर आधारित हो और सर्वजनहिताय की कामना से युक्त हो। यहां पर गांधी व्यक्तियों के स्वतंत्र चेतनायुक्त कर्त्तव्य व स्वैच्छिक कर्त्तव्य में घनिष्ठ संबंध का विचार देते हैं और मानवता के सद्गुणों को कर्त्तव्यों से जोड़ने का प्रयत्न करते हैं।

गांधी का मानना है कि, "मानवीय उत्तरदायित्व मानवीय कर्त्तव्य से संबंधित है और उनका मानवीय क्षमता के अनुरूप अनुपालन से ही मानवाधिकार का जन्म होता है। गांधी के विचार में यदि व्यक्ति

मानवाधिकार प्राप्त करना चाहता है तो उसे उन कर्त्तव्यों का पालन करना होगा जिससे अधिकार प्रस्फुटित होते हैं।"

महात्मा गांधी का व्यक्ति स्वातंत्र्य का दर्शन :

गांधी व्यक्ति के कर्त्तव्य व उत्तरदायित्व पर तो बल देते ही हैं पर साथ ही व्यक्ति की अस्मिता व गरिमा को संरक्षित करने हेतु व्यक्ति स्वातंत्र्य पर भी बल देते हैं। मानवाधिकार प्राप्ति हेतु व्यक्ति का कर्त्तव्यपरायण होना जरूरी है और स्वतंत्र व्यक्ति ही कर्त्तव्यपरायण हो सकते हैं। गांधी की स्वतंत्रता की संकल्पना पाश्चात्य उदारवादी व व्यक्तिवादी संकल्पना से अलग है। गांधी की स्वतंत्रता व्यक्तियों के मध्य तथा व्यक्ति व प्रकृति के मध्य एकता स्थापित करती है। गांधी व्यक्ति के आत्मविकास के साथ-साथ उसकी क्षमताओं के विकास हेतु स्वतंत्रता को आवश्यक मानते थे। अपनी विवेक सम्मत इच्छा और अन्तःचेतना की आवाज के अनुरूप कार्य करने में व्यक्ति की स्वतंत्रता अन्तर्निहित है। गांधी के अनुसार यदि वैयक्तिक स्वतंत्रता चली जाती है, तो व्यक्ति मशीन की भांति हो जाता है, जिसके फलस्वरूप समाज भी धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है। कोई भी समाज सम्भवतः वैयक्तिक स्वतंत्रता को अस्वीकार कर नहीं बनाया जा सकता।

गांधी जिस स्वतंत्रता की बात करते हैं वह स्वच्छन्दता नहीं है, न ही यह तृष्णाओं के अबाध उपभोग की स्वतंत्रता है, यह तो अपने वास्तविक स्वरूप, अपने अन्तःकरण के अनुसार कार्य करने की स्वतंत्रता है। गांधी की दृष्टि में अप्रतिबन्धित व्यक्तिवाद जंगल के जानवरों का नियम है, हमें वैयक्तिक स्वतंत्रता और सामाजिक प्रतिबन्धों के मध्य रहना सीखना होगा। सम्पूर्ण समाज के लिए तथा उसके हित के लिए सामाजिक प्रतिबन्ध में स्वैच्छिक समर्पण व्यक्ति और उस समाज जिसका वह सदस्य है, दोनों को सम्पन्नता प्रदान करेगा।

गांधी की स्वतंत्रता संबंधी संकल्पना नैतिकता पर आधारित है। गांधी का मत था कि स्वतंत्रता सापेक्ष होती है अर्थात् व्यक्ति की स्वतंत्रता मर्यादित व नैतिक होनी चाहिए, जिससे समाज में नैतिकता एवं सद्भावपूर्ण सामाजिक व्यवस्था बनी रहे। गांधी ने यह स्थापित करने का प्रयास किया है कि, सृष्टि के विकास की संरचना में व्यक्ति के विकास के जो चरण होंगे वे विभिन्न प्रायोगिक स्तरों से गुजरते हुए सार्वभौमिक विकास की दशाओं के अनुरूप व्यक्तिगत विकास को सुनिश्चित करेंगे। इस प्रकार सभी का संतुलित व स्वतंत्र विकास हो पायेगा। गांधीजी ने व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता और पूर्णता के प्रयास की स्वतंत्रता पर बल दिया है। स्वतन्त्रता ऐसी नैतिक शक्ति व नैतिक अधिकार है, जिसके द्वारा समाज का नैतिक विकास सम्भव है। इसके द्वारा समाज के वर्तमान ढाँचे में सकारात्मक नैतिक परिवर्तन लाया जा सकता है। स्वतन्त्रता दबाव की अनुपस्थिति मात्र नहीं वरन् अन्तर्चेतना की पूर्ण अवस्था है। जब व्यक्ति की अन्तर्चेतना पूर्ण विकसित हो जाती है तब सद्कार्य के लिए पेरित करने के लिए किसी बाह्म शक्ति के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं होती।

गांधी के अनुसार व्यक्ति की स्वतन्त्रता सिर्फ व्यक्ति के विकास के लिए नहीं वरन् सम्पूर्ण समाज के विकास के लिए अपरिहार्य है, जिसमें व्यक्ति का विकास अन्तर्निहित है। वैयक्तिक व सामाजिक स्वतन्त्रता की उपर्युक्त गांधीवादी अवधारणा मानवाधिकारवादी चिंतन के उन आयामों के निकट है जिसमें

राज्य के न्यूनतम हस्तक्षेप और व्यक्ति के विकास के लिए अधिकतम अवसरों की उपलब्धता की बात की गयी है। गांधी के चिंतन में स्वतन्त्रता व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा नहीं वरन् एक सामाजिक आवश्यकता है।

महात्मा गांधी का सामाजिक समानता का दर्शन :

गांधी की दृष्टि में मानवाधिकार का सृजन सिर्फ कर्त्तव्य व स्वतन्त्रता की पृष्ठभूमि पर नहीं होता वरन् इसके लिए आधार समानता के लक्ष्य से सुनिश्चित होता है। गांधी मनुष्य की क्षमताओं के समग्र विकास के लिए स्वतन्त्रता की ही भांति समानता को भी अपरिहार्य मानते हैं। गांधी की स्वतन्त्रता की अवधारणा में समानता की धारणा अन्तर्निहित है। गांधी व्यक्ति के बीच सामाजिक-सांस्कृतिक भिन्नता को तो स्वीकार करते हैं, पर आध्यात्मिक स्तर पर मानव में समानता देखते हैं और इसलिए व्यक्तियों के बीच किसी प्रकार के भेदभाव को अस्वीकार करते हैं। गांधी समानता के उस आधारभूत तत्व के पक्षधर थे, जो आपसी पेम, सहयोग एवं दया आदि पर निर्भर करता हो। गांधी के अनुसार किसी व्यक्ति पर किसी अन्य का वर्चस्व नहीं होना चाहिए। एक व्यक्ति के रूप में प्रत्येक व्यक्ति दूसरों से समानता का अधिकार रखता है। गांधी के अनुसार प्रत्येक मनुष्य जन्म से समान होता है, यदि कोई दूसरे पर अपनी सर्वोच्चता स्थापित करने का प्रयास करता है, तो वह मनुष्यता के विपरीत है। इसका तात्पर्य यह है कि, प्रत्येक व्यक्ति को समानता का अधिकार प्राप्त है। गांधी प्रत्येक मनुष्य के प्रति आत्मिक प्रेम की आवश्यकता पर विशेष बल देते थे। गांधीजी का यह मानना था कि, आत्मिक पेम का मूल आधार जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र, लिंग एवं वर्ण के आधार पर व्यक्ति-व्यक्ति में भेदभाव को अस्वीकार करते हुए यह विचार स्थापित किया कि इस मानव समाज में जाति, प्रजाति या वर्ण में निहित असमानताओं को दूर किया जाना चाहिए। इस आधार पर किसी व्यक्ति को दूसरे की तुलना में असमान स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए।

इसी प्रकार आर्थिक समानता की वकालत करते हुए गांधी इसे अहिंसापूर्ण स्वराज्य की कुंजी मानते हैं। गांधी आर्थिक समानता को समानता नहीं मानते बल्कि उनका मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति से उसकी क्षमता के अनुरूप कार्य लिया जाये और उसकी आवश्यकतानुसार उसे वस्तुएँ दी जाए। गांधी का मानना था कि, समानता का तात्पर्य यह नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति के पास छः एकड़ भूमि होनी चाहिए, परन्तु इसका यह अर्थ जरूर है कि, प्रत्येक के पास रहने के लिए मकान, पहनने के लिए पर्याप्त वस्त्र और भोजन के लिए पर्याप्त अन्न होना चाहिए। गांधी स्वीकार किया कि वस्तुओं व सेवाओं का पूर्णतः समान वितरण शायद सम्भव नहीं हो, किन्तु इस दिशा में प्रयास किये जा सकते हैं। समाज में बौद्धिक स्तर पर और अवसरों की उपलब्धता के आधार पर असमानता स्वाभाविक है।

इस प्रकार गांधी समानता के माध्यम से सामाजिक न्याय की स्थापना करना चाहते थे। उनका मानवाधिकारवादी चिंतन एक ऐसे समाज की कल्पना करता है जहां समाज का सबसे अंतिम व्यक्ति भी एक सम्मानपूर्ण व प्रतिष्ठापरक जीवन व्यतीत कर सके। मेरियन यंग अपनी पुस्तक 'Justice and the Politics of Difference' में लिखती है कि, सामाजिक न्याय का अर्थ हाशिये पर अवस्थित लोगों के उत्थान का नाम है, जहां योजना अवसर, क्रियान्वयन एवं सभी स्तरों पर असमानता व्याप्त हो वहां

सामाजिक न्याय की परिकल्पना नहीं की जा सकती है। गांधी ऐसी सामाजिक असमानता का विरोध करते हैं और सामाजिक न्याय को भारतीय समाज की प्राथमिक आवश्यकता मानते हैं। ऐसा समाज जिसका कोई भी अंश मानवीय गरिमा व अस्मिता से वंचित हो वह अमानवीय है।

सामाजिक न्याय को गांधी प्राथमिक मूल्य तो स्वीकार करते हैं, पर उसे प्राप्त करने के लिए किसी भी साधन को अपनाये जाने की स्वीकृति नहीं देते उसे सिर्फ अहिंसा के माध्यम से प्राप्त करने की बात करते हैं। गांधीजी सत्याग्रह को एकमात्र साधन के रूप में स्वीकार किया और शक्ति के प्रयोग के प्रति असहमति व्यक्त की। उन्होंने कहा कि, "मैंने हमेशा यह विश्वास किया है कि सामाजिक न्याय सबसे नीचे और कमजोर वर्गों के लिए भी शक्ति के द्वारा प्राप्त करना असम्भव है। मैंने आगे यह विश्वास किया है कि, सबसे नीचे के व्यक्तियों के अपने प्रति अन्याय के निराकरण हेतु अहिंसात्मकपरक साधनों के प्रशिक्षण द्वारा अपने प्रति अन्याय को दूर करना सम्भव है और यह साधन अहिंसात्मक असहयोग है।" गांधी भौतिक आवश्यकताओं को सीमित कर न्यायपूर्ण समाज की स्थापना की बात करते हैं। उनके अनुसार नैतिक विकास भौतिक आवश्यकताओं को बढ़ाने में निहित नहीं है, बल्कि अपनी अनावश्यक इच्छाओं को समाप्त करने में एवं अपनी शक्ति को आध्यात्मिक गरिमा प्राप्त करने हेतु लगाने में निहित है। व्यक्ति द्वारा सीमित भौतिक आवश्यकताओं से गरिमापूर्ण जीवन व्यतीत किया जा सकता है, अतः जो कुछ आवश्यकता से अधिक है उसे समाज के कल्याण के लिए प्रयुक्त किया जाना चाहिए।

महात्मा गांधी का सर्वोदय दर्शन

गांधी का मानवाधिकारवादी दर्शन उस सर्वोदय की कामना करता है जहां मानवीय सम्बन्ध सत्य, अहिंसा व धर्म पर आधारित होंगे और सभी की क्षमताओं का पूर्ण विकास व सदुपयोग होगा। सर्वोदय बहुसंख्यक के कल्याण की नहीं वरन् सबके कल्याण की बात करता है। वे चाहते थे कि सबका सहविकास हो, सबका सब प्रकार से उत्थान हो। सर्वोदय सबके उदय की स्थिति है, यह अधिकतम लोगों के विकास या उन्नति की स्थिति नहीं है। गांधी का सर्वोदयी दर्शन अहिंसा पर आधारित ऐसी सामाजिक संरचना की बात करता है, जहां व्यक्ति और समाज दोनों एक-दूसरे के पूरक होंगे और दोनों समन्वित रूप से एक आदर्श राज्य की स्थापना करेंगे। गांधी का कहना है कि, नैतिक गुणों का विकास होने के बाद व्यक्ति आत्मनियंत्रित व स्वशासित हो जाता है और स्वतन्त्र प्राणी के रूप में उसे मानव गरिमा को बनाये रखने वाले कार्यों के सम्पादन का निरन्तर अवसर मिलता रहता है। गांधी पूर्ण स्वराज्य की अवधारणा की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि, "पूर्ण स्वराज्य कहने का आशय यह है कि, वह जितना किसी राजा के लिए होगा उतना ही किसानों के लिए, जितना धनवान जमींदार के लिए होगा, उतना ही खेतिहर मजदूर के लिए, उतना ही हिन्दुओं, मुसलमानों, जैन, बौद्ध, सिक्ख, यहूदी, इसाई एवं पारसियों के लिए होगा। उसमें जाति-पाति, धर्म, ऊँचे-नीचे दर्जे के भेदभाव के लिए कोई स्थान नहीं होगा।

गांधी के सर्वोदयी दर्शन का आधार मानव प्राणियों की आध्यात्मिक एकता है, वे कहते हैं कि, "सब उसी एक अग्नि के पुंज है, कोई भी व्यक्ति अस्पृश्य के रूप में पैदा नहीं हो सकता, अतः मानव प्राणियों को जन्म से ही अस्पृश्य मानना गलत है।" गांधी ने चरखे को अपने सर्वोदयी मानवाधिकारवादी दर्शन के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया और कहा कि, चरखे का सन्देश उसकी परिधि से कहीं ज्यादा व्यापक है।

उसका सन्देह सादगी, मानव सेवा, अहिंसामय जीवन तथा गरीब और अमीर, पूंजी और श्रम, राज्य और किसान के बीच अविभाज्य सम्बन्ध स्थापित करने का सन्देश है। इस प्रकार गांधी मानवाधिकार के वृहद् आयाम को अभिव्यक्त करते हैं। मानवाधिकार को व्यवहार में लागू करने के लिए गांधी ऐसी शासन व्यवस्था की कल्पना करते हैं, जहां सबल एवं निर्बल दोनों को समान अवसर सुलभ हो सके। समाज में शांति और सह-अस्तित्व के मूल्य समाहित हों तथा प्रगति के लिए आवश्यक नैतिक आयाम सुलभ हो सकें। गांधी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को संभव बनाने हेतु लोकतांत्रिक शासन पद्धति की विकेन्द्रित व्यवस्था पर बल देते हुए ग्रामीण गणतन्त्रों की संघीय शासन व्यवस्था की स्थापना पर जोर देते हैं। गांधी के लोकतन्त्र की अवधारणा में मानवीय हित प्रधान है। वे लोकतन्त्र में सभी व्यक्तियों के अधिकतम हित की अपेक्षा करते हुए कहते हैं कि, "अपने तात्विक अर्थ में प्रजातन्त्र वह कला और विज्ञान होना चाहिए जिसमें व्यक्तियों के विभिन्न वर्गों के सम्पूर्ण शारीरिक, आर्थिक व आध्यात्मिक स्त्रोतों का उपयोग सभी लोगों के सार्वजनिक कल्याण के लिए हो सके।"

गांधी ऐसे लोकतन्त्र की कामना करते हैं, जो त्याग, सेवा व समर्पण के मानवीय मूल्यों पर आधारित हो। उनके अनुसार जब लोकतान्त्रिक व्यवस्था में शासन करने वाला त्याग और सेवा की भावना से पूर्ण होगा, तभी वह मानवजाति का कल्याण करेगा और ऐसी व्यवस्था में ही लोगों को समान अधिकार तथा सुखमय जीवन का अवसर प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार गांधी का मानवाधिकारवादी दर्शन परम्परागत, जातीय, धार्मिक एवं असमान आर्थिक संरचना को समाप्त करके व्यक्ति स्वातंत्र्य, समानता, सर्वोदय, सामाजिक न्याय व जनसहभागी शासन व्यवस्था के द्वारा मानवाधिकारों को सर्वसुलभ बनाने का प्रयास है।

साररुप में कहा जा है कि गांधी का समग्र दर्शन एक मानवाधिकारवादी दर्शन है। यह अहंवादी व्यक्ति के अधिकार की वकालत नहीं करता वरन् कर्त्तव्यशील व्यक्ति की निष्ठा से उद्गमित दर्शन हैं। इस चिंतन में व्यक्ति तभी अधिकार का भागी है, जब वह कर्त्तव्यों एवं दायित्वों से पूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा हो। अधिकार की प्राप्ति अधिकार का दावा कर नहीं की जा सकती वरन् सद्जीवन व्यतीत करने से प्राप्त प्रामाणिकता के माध्यम से की जा सकती है। मानवाधिकार उस एकनिष्ठ अनुभूति से संबंधित है, जिससे सम्पूर्ण मानवजाति के अधिकार पोषित व सवंर्द्धित होते हैं। ये अधिकार प्रतिस्पर्द्धा एवं संघर्ष से प्राप्त नहीं किये जा सकते हैं। गांधी के चिंतन में किसी एक मानव का पतन एवं उत्थान सम्पूर्ण के अस्तित्व को प्रभावित करता है, एक व्यक्ति का उत्थान बहुतों के लिए अधिकारों का सृजन करता है, जबकि एक व्यक्ति का नैतिक पतन बहुतों को उनके अधिकारों से वंचित करता है। वास्तव में गांधी कर्त्तव्य पर बल देकर मानवाधिकार की प्राप्ति को संभव बनाते हैं। सिर्फ अधिकार पर बल देने की प्रवृति ने वर्तमान समाज में अनेक प्रकार के संघर्षों व प्रतिस्पर्द्धा को जन्म दिया है। अतः साररूप में यह कहा जा सकता है कि, "कर्मण्यता से ही कर्त्तव्यनिष्ठता की भावना का विकास होता है।"

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1.वूड, एलेन मिक्सिनः माइन्ड एण्ड पोलिटिक्स, बर्कले युनिवर्सिटी पेस, बर्कले, 1942, पृ.111

2.गेलिन, षेल्डन : पोलिटिक्स एण्ड विजन, बोस्टन लिटिल ब्राउन एण्ड कम्पनी, बोस्टन, 1960, पृ.341

3.इस संकल्पना का उल्लेख जो दिव्य ब्राउन द्वारा किया गया है।

4.यंग इंडिया, वोल्यूम 3, पृ.107, हरिजन 11 अगस्त, 1940, पृ.245, 29 अगस्त, 1936, पृ.226

5.तेन्दुलकर, आई.जी. : महात्मा : लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गांधीजी, वोल्यूम 5, बोम्बे, वी.के.झावेरी एण्ड डी.जी.तेन्दुलकर, 1951, , पृ.392-93

6.दि कलेक्टेड वर्कस ऑफ महात्मा गांधीजी, दि पब्लिकेशन डिविजन मिनिस्ट्री ऑफ इन्फोरमेशन एण्ड ब्रोडकास्टिंग, वी.25, 1964, पृ. 546

7.हरिजन, 13 अक्टूबर, 1940, पृ.320

8.सी डब्ल्यू एम जी, वो. 25, पृ.564

9.गांधी जी, मदन : "मेटोफिजिकल बेसिक ऑफ गांधीजीज थोट" इन वी टी पाटिल : न्यू डाइमेंशन एण्ड परस्पेक्टिव इन गांधीजी, इन्टर इंडिया पब्लिकेशन, 1988, पृ.191, 201, 213

10.गांधीजी, मदन : "मेटोफिजिकल बेसिक ऑफ गांधीजीज थोट" इन वी टी पाटिल : न्यू डाइमेंशन एण्ड परस्पेक्टिव इन गांधीजी, इन्टर इंडिया पब्लिकेशन, 1988, पृ.191, 201, 213

11.प्रसाद, नागेश्वर : गांधीजी का अराजकतावाद, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, 1990, पृ.24

12.हरिजन, 1 फरवरी, 1942

13.हरिजन, 27 मई, 1939

14.गांधीजी, एम.के. : ट्रूथ इज गोड, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1959, पृ.135

15.सर्वोदय, नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद 1963, पृ.61

16.यंग इंडिया, 5 मार्च, 1931

17.गांधीजी एम.के. : फ्रोम यरवदा मंदिर, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1935, पृ.55

18.यंग इंडिया, 8 दिसम्बर, 1920

19.गांधीजी : रचनात्मक कार्यक्रम, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1946, पृ.30

20.यंग इंडिया, 5 मार्च, 1931

21.हरिजन, सेवक, 17 अगस्त, 1940, पृ.225

22.यंग इंडिया, 26 मार्च, 1931

23.चतुर्वेदी, मधुकर श्याम, प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक, कॉलेज बुक हाउस, 2015, पृ. 331-334

24.गांधी, दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह का इतिहास, पृ. 47

25.हरिजन, 20 अप्रैल, 1940

26.शर्मा, बी.एस. : गांधीजी एज पोलिटिकल थिंकर, इंडियन पेस पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 1956, पृ.143

27.हरिजन, 03 जून, 1939

28.भावे, विनोबा : लोकनीति, सर्वसेवासंघ प्रकाशन, वाराणसी 1983, पृ.14

29.माथुर, पेमनारायण : (सम्पादित) गांधीजी ग्रन्थ, रामनारायण प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.37
30.गांधीजी विचार रत्न, खण्ड 2, सस्ता साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.37
31.यंग इंडिया, 5 मार्च, 1935
32.फ्रोम यरबदा मंदिर, पृ.34
33यंग इंडिया, 17 नवम्बर, 1925, पृ.321
34.गांधीजी : मेरे सपनों का भारत, पृ.23
35.सिंह, राममूर्ति : महात्मा गांधीजी और विश्वशांति, साहित्य विकुंज प्रकाशन, इलाहाबाद, 1946, पृ.97-98
36-हरिजन सेवक, 18 मई, 1940, यंग इंडिया, 7 मई 1931, हरिजन सेवक 12 नवम्बर, 1938

***

© भारत सरकार
प्रकाशन नियंत्रक

अंक 61 पी.सी.एस.टी.टी. 2 (जनवरी-मार्च) वर्ष 2019 (1-3)

Mobile App of Administrative Terms Glossary is now available in Google Play Store.

Step-1: Search CSTT • Step-2: Download • Step-3: Open to use

वैतश आयोग द्वारा प्रकाशित शब्दावलियाँ, परिभाषा-कोश मोबाईल ऐप तथा ई-पुस्तक के रूप में उपलब्ध हैं।

प्रोफेसर अवनीश कुमार
अध्यक्ष

Glossaries and Definitional Dictionaries published by CSTT are available in mobile apps and e-books format.

Professor Avanish Kumar
Chairman

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग)
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली - 110066.
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development
(Department of Higher Education)
West Block-7, R.K. Puram, New Delhi - 110066.
☎ 011-26105211 • Website: www.cstt.mhrd.gov.in
www.csttpublication.mhrd.gov.in
Mobile App: "CSTT Publication"

मुद्रण निदेशालय द्वारा, भारत सरकार मुद्रणालय में मुद्रित एवं
प्रकाशन नियंत्रक, सिविललाइन्स, दिल्ली-110054 द्वारा प्रकाशित, 2018